

# आधुनिक हिन्दी-काव्य में क्रांति की विचारधाराएं

[ १८५० - १९५० ]

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि  
के लिए प्रस्तुत  
शोध-प्रबन्ध-सार

निर्देशक  
पद्मभूषण डा० रामकुमार वर्मा

शोधकर्त्री  
उर्मिला जैन  
हिन्दी - विभाग  
प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

प्राक्कथन



### प्राक्कथन

आधुनिक हिन्दी-काव्य में मन्त्रिहित विभिन्न जीवन-दृष्टियों पर बहुत कुछ लिखा-कहा गया है । इसके विभिन्न पक्षों-- राष्ट्रीय, ऐतिहासिक, सामाजिक, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक -- आदि का अलग-अलग विवेचन-विश्लेषण हो चुका है, किन्तु आधुनिक हिन्दी-काव्य में मन्त्रिहित क्रान्तिपरक विचारधाराओं का अध्ययन अभी तक नहीं हुआ । इस प्रकार की आधुनिक हिन्दी-काव्य का एक महत्वपूर्ण पक्ष बहूता रहा ।

काव्य के इस अज्ञेय पक्ष की ओर डा० रामकुमार वर्मा की दृष्टि गई और उन्होंने मुझे 'आधुनिक हिन्दी-काव्य में क्रान्ति की विचारधाराएँ' विषय पर शोध-कार्य करने का आदेश दिया । प्रारम्भ में यह कार्य मुझे अत्यन्त जटिल लगा । कारण, एक तो 'क्रान्ति' शब्द हो अपने-आप में उलझा शब्द है । इस शब्द का विस्तार कई-कई विभिन्न अर्थों में है । दूसरे, विषय सर्वथा नवीन था, किन्तु डा० साहब के प्रोत्साहन और मार्ग दर्शन ने प्रेरणा पाकर मैंने इस विषय पर शोध-कार्य का निश्चय किया ।

शोध-कार्य में कई कठिनाइयाँ आईं । पहले तो 'क्रान्ति' की व्याख्या कठिन रही, क्योंकि इस विषय पर बहुत ही कम सामग्री उपलब्ध है । जो है, वह भी किसी कर्म-विशेष से प्रभावित होने के कारण पुर्वाग्रह सहित है । फिर, कई आलोचक भारतेन्दु-युगीन हिन्दी-काव्य में क्रान्ति नहीं पाते । उनके अनुसार भारतेन्दु और भारतेन्दु-युगीन अन्य कवि सुधारवादी थे । लेकिन जब हम तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में उनके काव्य का अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि वे क्रान्तिकारी थे । उदाहरणार्थ, १८५७ की क्रान्ति का अंग्रेजों ने बुरी तरह दमन किया था । ब्रिटिश राज्य का आतंक समस्त राष्ट्र पर व्याप्त था । ऐसी आतंकवादी परिस्थिति

में मारतेन्दु, प्रेमघन आदि ने कौशलों की तरह राजनैतिक, आर्थिक आदि नीतियों की आलोचना की। तत्कालीन परिस्थिति में सरकार की आलोचना करने का साहस किसी क्रान्तिकारी में ही हो सकता था। इसे स्पष्ट है कि मारतेन्दु युग का काव्य-बारा में भी क्रान्ति की विचारबाराएं प्रवाहित हो रही थीं। हमने इस प्रबन्ध के अन्तर्गत सन् १८५० से १९५० तक की अवधि विवेचन के लिए ली है। कारण, आधुनिक हिन्दी-काव्य का आरम्भ १८५० से माना गया है। अतः इस प्रबन्ध में भी मारतेन्दु-युग से ही विवेचना प्रारम्भ हुई है।

शोध-कार्य प्रारम्भ करने के पश्चात् विषय सम्बन्धी अनेक व्यावहारिक समस्याएं आती रहीं किन्तु डा० रामकुमार वर्मा ने विषय में दक्षता, प्रज्ञाद बोद्धुक्त्य एवं तत्परता के साथ वात्सल्य, सौह तथा अनवरत प्रोत्साहन सहित अपना अमूल्य समय देकर सदा मेरी समस्याओं का समाधान किया। वस्तुतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध उनके औदार्य स्वस्म ही प्रतिफलित हुआ है। प्रबन्ध पूर्ण हो जाने पर पूर्णरूप से उसकी पाण्डुलिपि पढ़ने का भी कष्ट उन्होंने किया। इस प्रकार विषय-निर्वाचन से लेकर कार्य समाप्त होने तक उनका अनवरत मार्ग-दर्शन मेरा सम्बन्ध रहा। उनके इस औदार्यपूर्ण सौह के लिए मुझसे बन्धुवाद की औपचारिकता भी नहीं बरती जाती। उनके वाञ्छीवाद की चिर वाक्यांती हूँ।

विषय-सामग्री की शोध के लिए मैंने विवेचनतः प्रयाग विश्वविद्यालय पुस्तकालय, प्रयाग, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन संग्रहालय, प्रयाग, भारतीय मदन पुस्तकालय, प्रयाग और काशी नागरी प्रचारिणों समा, बाराणसी से सहायता ली है। मैं इन सभी संस्थाओं के अधिकारियों की धामारी हूँ।

अंततः प्रबन्ध विद्वान मनीषियों के समक्ष प्रस्तुत है। विषय जटिल और विस्तृत होने के बावजूद मैंने अंतर्द्वारा विचारों के विविध आयामों के विश्लेषण का यथासम्भव साहसिक प्रयत्न किया है। यह प्रबन्ध आधुनिक हिन्दी-काव्य बारा के विश्लेषण और मूल्यांकन का एक नवीन चरण है। विश्वास है, साहित्य के अध्येताओं के लिए यह चिन्तन की एक नई दिशा प्रस्तुत करेगा।

उर्मिला जी.  
(उर्मिला केन)

**वाङ्मयिक हिन्दी-काव्य में क्रान्ति की विचारधाराएं**  
**~~~~~**

( १८५० - १९५० )

**विषय - सूची**  
**~~~~~**

# वाङ्मयिक हिन्दी-काव्य में ज्ञान्ति की विचारधाराएं

(१८५० - १९५०)

विषय - सूची

\*\*\*\*\*

## विषय

## पृष्ठ संख्या

अध्याय -- एक : ज्ञान्ति

१ - ३८

ज्ञान्ति : विस्लेषण -- ज्ञान्ति के आधार  
ज्ञान्ति के विभिन्न रूप  
राजनीतिक ज्ञान्ति  
धार्मिक ज्ञान्ति  
सामाजिक ज्ञान्ति  
वार्तिक ज्ञान्ति

ज्ञान्ति और सुधार  
प्रति ज्ञान्ति  
स्वाभिव्यक्ति  
निष्कर्ष

अध्याय-- दो : पृष्ठधार और अनुप्रास

३९ - १३६

राजनीतिक : पृष्ठधार

अनुप्रास -- भारतीय-अनु  
हिन्दी-अनु  
बाबाबाद-अनु  
प्रतिवाद-अनु

सामाजिक : पृष्ठधार

अनुप्रास -- भारतीय-अनु  
हिन्दी-अनु  
बाबाबाद-अनु  
प्रतिवाद-अनु

विषय

वार्षिक : पुष्ताचार

युगप्रवाह -- भारतेन्दु युग

ध्वेदी-युग

हायावाद-युग

प्रगतिवाद-युग

वार्षिक : पुष्ताचार

युगप्रवाह -- भारतेन्दु युग

ध्वेदी -युग

हायावाद-युग

प्रगतिवाद-युग

निष्कर्ष : बाह्य परिस्थितियों का क्रान्ति पर

सम्बन्ध प्रभाव

अध्याय -- तीन : राजनीतिक विचारधाराएं

१२७-१२४

राष्ट्रीय चेतना

भारतेन्दु-युग -- कठोरतान द्वारा क्रान्ति

वर्तमान चित्रण द्वारा क्रान्ति

ध्वेदी-युग -- कठोरतान द्वारा क्रान्ति

नाष्टुनि के वैकीकरण द्वारा क्रान्ति

वर्तमान चित्रण द्वारा क्रान्ति

हायावाद-युग -- कठोरतान द्वारा क्रान्ति

नाष्टुनि के वैकीकरण द्वारा क्रान्ति

वर्तमान चित्रण द्वारा क्रान्ति

प्रगतिवाद-युग-- कठोरतान द्वारा क्रान्ति

वर्तमान चित्रण द्वारा क्रान्ति

नाष्टुनि की चम्पना

विषयपृष्ठ संख्या

अध्याय -- चार : साप्ताहिक वार्षिक विचारधाराएं

१६५-२२६

नारसिन्धु-ग्रन्थ -- वर्तमान दशा  
नारी  
धर्म

शिवेदी-ग्रन्थ -- वर्तमान दशा  
नारी  
जाति-पांति  
धर्म

हायाबाद-ग्रन्थ-- वर्तमान दशा  
नारी  
जाति-पांति  
धर्म

प्रगतिवाद-ग्रन्थ-- जाति-पांति  
नारी  
धर्म

अध्याय -- पांच : वार्षिक विचारधाराएं

२३०-२६६

नारसिन्धु-ग्रन्थ -- वर्तमान विमर्श  
व्यापार  
टैक्स  
स्वदेशी

शिवेदी-ग्रन्थ -- वर्तमान विमर्श  
स्वदेशी  
पुंजीवाद

हायाबाद-ग्रन्थ-- स्वदेशी  
वर्तमान विमर्श

(घ)

विषय

पृष्ठ संख्या

प्रतिवाद-युग -- वर्तमान चित्रण  
मजदूर वीर किसान  
साम्प्रदाय

उपसंहार

२६७-२७५

प्रमुख सहायक ग्रन्थ-सूची

व - ४

अध्याय -- एक

--0--

अभिहित



## अध्याय — एक

-0-

### ज्ञान्ति

#### ज्ञान्ति : विश्लेषण

ज्ञान्ति मानव के विकास की कथा है। अनावधि जीवन के प्रत्येक क्षण में मानव का जितना भी विकास हुआ है, उसके पीछे ज्ञान्ति का बहुत बड़ा हाथ है। यह मानव के सर्वांगीण विकास की आधारशिला है। शायद ज्ञान्ति के अभाव में मानव वांछित सम्यक्ता से जाने नहीं बढ़ा होता और विकास की साम्प्रतिक ऊँचाई उसे प्राप्त नहीं होती। रुढ़ियों को तोड़ने, निरंकुश शासन को जन-कल्याण करने वाले शासन-तंत्र की ओर मोड़ने में और जीवन की नयी दिशाओं की खोज का भ्रम ज्ञान्ति को है।

ज्ञान्ति जीवन की स्वाभाविक गति है। स्वरूप जीवन जीते-जीते मनुष्य में बीबास्य, रक्तता और नीरसता आ जाती है। इसलिए यह जीवन की गति में परिवर्तन चाहता है। परिवर्तन ही जीवन है। परिवर्तन के अभाव में जीवन बढ़ ही जायगा। यह बढ़ता ही मृत्यु है। इसलिए कल्पित है कि पुरानेपन को छोड़कर जीवन नयी बार बँदे, नये हठों को नूने, नयी दिशाओं की ओर कसर हो। यही जीवन का परिवर्तन है, जो उसकी स्वाभाविकता है। परिवर्तन ज्ञान्ति का पर्याय है।

वाक्यान्तर्गत तथा अन्य हस्तकोशों में ज्ञान्ति का तात्पर्य ऐसा परिवर्तन बताया गया है कि वह अभाव में उत्कृष्ट-पुष्ट हो जाता है, सामाजिक-संठन बदल जाता है तथा नैतिक नवनिर्माण होता है।<sup>१</sup> मेथिनी के अनुसार 'इतिहास-पुरुष' के जीवन में होने

वाली सम्पूर्ण उच्छ-पुच्छ का नाम है क्रान्ति<sup>१</sup>। उपन्यासकार बिस्टरब्रूकी ने क्रान्ति की विवेचना करते हुए कहा है : 'क्रान्ति किन तत्वों की की होती है ? किसी तत्व की मो नहीं और सभी तत्वों की, ऐसी किसी जो स्कारक टूट पड़ती है, काँच जाती है, ऐसी चिनगारी कि जो स्कारक प्रज्वलित हो पड़ती है, ऐसी कुक्कड़ शक्ति और मत्स्य एक साँस की'। बिस्टर ब्रूकी के शब्दों में 'क्रान्ति और विकास दोनों में परिवर्तन का भाव है। प्रथम शब्द द्वितीय की अपेक्षा शीघ्रगामी परिवर्तन का कार्य देने वाला समझा जाता है'। श्री जवाहरलाल नेहरू ने 'विश्व इतिहास की कलक' में क्रान्ति के विश्लेषण में कहा है, 'दुश्हाली और क्रान्ति में भेद नहीं होता। क्रान्ति का कार्य है परिवर्तन। दादा कर्माधिकारी क्रान्ति का 'कार्य' 'पूँजीवादी मूल्यों का समूल निराकरण' मानते हैं<sup>२</sup>। महात्मा गांधी ने क्रान्ति की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए बताया, 'क्रान्ति स्थापित व्यवस्था की व्यवस्था का ही नाम है। व्यवस्था संघर्ष का प्रजनन करती है और विद्रोहियों का हस्त उस व्यवस्था का परिपोषण करता है। क्रान्ति यदि सफल होती है तो वर्तमान नष्ट होता है और उच्चस्त के आधार पर अविवाहित नव-व्यवस्था स्थापित होती है। सत्याग्रह भी ठीक वही क्रिया का समाधान है। वह व्यवस्था का पथ लेकर बढ़ता है और प्रचण्ड संघर्ष का उद्भव कर देता है'। विनोबा भावे ने कुमान क्रान्ति की व्याख्या में कहा है, 'जहाँ गाँवों के लोग अपने जीवन के व्यक्तिगत माणिक्य मिटा देते हैं वहीं मूल्य परिवर्तन होता है। वही मूल्य परिवर्तन ही शांतिमय क्रान्ति कहते हैं'।

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर यह साफ़ प्रकट हो जाता है कि क्रान्ति असन्तोष से उत्पन्न होती है। असन्तोष के कारण जनवर्ग वर्तमान शासन की व्यवस्था करता है और तब एक संघर्ष होता है। संघर्ष हिंसक या अहिंसक हो सकता है, किन्तु क्रान्ति की सफलता से पुरातन व्यवस्था समाप्त हो जाती है और उसकी जगह नयी व्यवस्था स्थापित होती है। अतः क्रान्ति का कार्य महान मौलिक परिवर्तन है, जो राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, धार्मिक, दुराद्यों, रुढ़ियों तथा कुप्रथाओं को मिटाकर सामाजिक मंगल के लिए नयी व्यवस्था का संघटन करता है।

१- भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम — विनायक दामोदर सावरकर, पृ० ३, सं० प्रथम

२- सामाजिक हिन्दुस्तान, १८ अगस्त १९५० के अंक में मुन्दाकलठाठ कर्मा का निबन्ध

३- क्रान्ति के मूल्य विवेचन — बिस्टर ब्रूकी, पृ० २४५, सं० १९५८

४- क्रान्ति का अर्थ क्या — दादा कर्माधिकारी, पृ० ५१, सं० १९५५

५- गाँव और गाँववासी — अठापति साहू, पृ० २००, सं० १९५५

६- क्रान्ति की राह पर — निर्मला देवपाण्डे, पृ० १२४, सं० १९५६

क्रान्ति एक मानवतावादी दृष्टि है। जब न्याय का मार्ग अवरोध हो जाता है, परम्परागत सामाजिक प्रथाएँ, रीतियाँ तथा नियम जब मानव-कल्याण का मार्ग अवरोध करने लगते हैं, समाज और राष्ट्र जब रुढ़ियों, दोषों और परम्पराओं के कारण बड़ हो जाते हैं, तब नयी शासन-प्रणाली, नयी नीति और समाज-व्यवस्था के संघटन के लिए क्रान्ति की अपेक्षा होती है। यह क्रान्ति मानव-मंगल की दृष्टि से उत्पन्न होती है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर एसम्बली जन कैम्प में सरदार फातसिंह ने न्यायालय में कहा था — 'विप्लव से हम लोगों का मतलब समाज की ऐसी व्यवस्था है, जिसमें ऐसे पतन का क्या न हो तथा जिसमें अधिकारों की राज्यसत्ता मान्य हो जाए और उसके फलस्वरूप विश्वव्यापी मानवता को पुँजीवाद, दुश्मन तथा युद्ध के संकट से सुरक्षित कर दे..... क्रान्तिमानव जाति का अधिकृत अधिकार है।'

सामान्यतः क्रान्ति को राज्यक्रान्ति के अर्थ में समझा जाता है। जब कोई जाति दासता के घुर को उतारने के लिए विदेशी शासन के विरोध में उठ खड़ी होती है, तो वह कार्य को क्रान्ति कहते हैं, क्योंकि दासता की जगह स्वतन्त्रता प्राप्त करने की जाकांफा से किया गया यह विरोध वर्तमान स्थिति में परिवर्तन चाहता है। वास्तव्य यह कि शासन-व्यवस्था में वायुल परिवर्तन के लिए क्रान्ति शब्द का प्रयोग होता है। किन्तु, क्रान्ति शब्द का विस्तार केवल राज्यक्रान्ति तक ही नहीं है। मानवजाति की प्रत्येक समस्या की जुलकान के लिए, दुरीतियों, रुढ़ियों आदि में परिवर्तन के लिए किया गया विरोध क्रान्ति है। साधारणतः 'किसी चीज या व्यवस्था में वायुल परिवर्तन करके कोई नई प्रणाली जारी करने को भी क्रान्तिकारी परिवर्तन कहते हैं।' किन्तु इसके पश्चात् राज्यक्रान्ति को ही क्रान्ति मानते हुए उन्होंने कहा, 'पर हम चिके राज्यक्रान्ति को क्रान्ति मानें। पर वहाँ राज्यक्रान्ति व्यापक अर्थ में प्रयुक्त—आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मसले भी इसके अन्तर का जाये।' फ्रांसिस मुंवर ने भी क्रान्ति को राजनीतिक प्रकृति का बताया है।

१- क्रान्तिवाद - विश्वनाथ राय, पृ० ११६-१७५०

२- क्रान्ति और संसुल मोर्चा - स्वामी सहजानन्द सरस्वती, पृ० १, सं० प्रथम

३- यही, पृ० १

४- विश्वसुल जन संघिया - फ्रांसिस मुंवर, पृ० १०, सन् १९४६

क्रान्ति परिवर्तन की प्राकृतिक स्थिति है। यह परिवर्तन केवल राजनीतिक समस्याओं तक ही सीमित नहीं है। मनुष्य केवल राजनीतिक समस्याओं तक ही सम्बद्ध नहीं है, बल्कि और भी ज़ैक समस्याओं के प्रति उसकी प्रतिक्रिया है। उन समस्याओं के अपने नियम हैं। जब कभी इन नियमों में कड़ोता, दुरीति, रुढ़ि आ जाती है, मनुष्य के विकास का मार्ग अवरोध हो जाता है। तब वह इन नियमों में परिवर्तन चाहता है। उसके लिए वह विरोध करता है। यह विरोध कभी हिंसक और कभी अहिंसक रहता है। परिस्थितियाँ ही हिंसा अथवा अहिंसा के लिए मनुष्य को बाध्य करती हैं। तात्पर्य कि कष्ट की मात्रा और परिस्थिति की गम्भीरता के आधार पर हिंसा अथवा अहिंसा का आलम्बन क्रान्ति में होता है रहता है।

राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक— सभी क्षेत्रों में परिस्थितिगत परिवर्तन की अपेक्षा होती है, क्योंकि उसके बिना जीवन की गति अवरोध हो जाती है। स्थिर परिवर्तन के चरण स्वाभाविकतया से उठते हैं और क्रान्तियाँ होती हैं। स्वयं और फ्रांस की राज्यक्रान्तियाँ मानव-कल्याण के लिए जिस हद तक आवश्यक हैं, औद्योगिक क्रान्ति का महत्त्व भी उसके कम नहीं है। भारत तथा योरोप में होने वाली आर्थिक और सांस्कृतिक क्रान्तियों की मूल दृष्टि भी मानव-मंगल ही रही है।

वाच क्रान्ति सत्य का प्रयोग प्रत्येक परिवर्तन के लिए होने लगा है। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में होने वाला परिवर्तन क्रान्ति है। स्थिर वाच के सम्बन्ध में क्रान्ति की राज्य तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। स्वयं में वैचारिक क्रान्ति की जहाँ भी होने लगी है। स्थिर मानव की प्रत्येक परिस्थिति, उसके प्रत्येक संकटन में होने वाला परिवर्तन क्रान्ति के वर्णन आता है।

क्रान्ति एक मनःस्थिति है। वर्तमान स्थिति के विरोध में जनता के मन में उठने वाला परिवर्तन का भाव क्रान्ति है। यों यह भाव क्रिया स्वयं में भी प्रकट होता है, किन्तु क्रान्ति-भाषना मौलिक रूप में मानसिक स्थिति है। जैक जातियाँ, रुढ़ियों, अंधविश्वासों, दुरीतियों और बुराचारों को फेंकती हैं, किन्तु उनके प्रति विरोध भाव उनके मन में नहीं आता। विरोध का भाव उत्पन्न होते ही वैचारिक क्रान्ति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और तब उस मनःस्थिति का क्रियात्मक प्रतिकारण वर्तमान स्थिति, बुराचार, परतन्त्रता, अंधविश्वास एवं रुढ़ि को नष्ट कर नये मूल्यों की स्थापना में

प्रकट होता है। यदि वैचारिक ज्ञान्ति न हो तो सामाजिक, राजनीतिक, वार्षिक ज्ञान्तियों की स्थिति ही उत्पन्न नहीं हो सकती। वैचारिक ज्ञान्ति ही मारो ज्ञान्तियों का मूल है। विचार मन की क्रिया है। इस प्रकार ज्ञान्ति की मूल प्रेरणा मानसिक स्थिति पर निर्भर करती है। विरोध की मनःस्थिति होने, पीड़ा, बर्त्याचार एवं बड़ता से ऊर्ध्व की नवीनता की ग्रहण करने की इच्छा होने पर ही परिवर्तन होता है। इस दृष्टि से ज्ञान्ति मन की इच्छा शक्ति है, जिसकी अभिव्यक्ति विरोधों, हिंसात्मक तथा अहिंसात्मक कार्रवायियों के माध्यम से होती है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में ज्ञान्ति शब्द का प्रयोग इसी व्यापक अर्थ में किया गया है। इस दृष्टि से वह राज्य-ज्ञान्ति, सामाजिक ज्ञान्ति, वार्षिक और वार्षिक ज्ञान्ति को भी अन्तर्भूत किए हुए है। दुःशासन और दुःस्थिति के मानसिक विरोध की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति ज्ञान्ति है, जो वर्तमान स्थिति में बाधित परिवर्तन कर नये मूल्यों के आचार पर नयी संस्थाओं तथा मनःस्थिति का निर्माण करती है। ज्ञान्ति बड़ता से क्षमता की ओर, रुढ़ि से नये मूल्यों की ओर और पीड़ा से मुक्त की ओर मानव को अग्रसर करती है। इसकी मूल प्रेरणा मानवीय है।

### ज्ञान्ति के आधार

मानव मूल रूप से अस्तित्ववादी है। वह अपना अस्तित्व कायम रखना चाहता है और इस कारण परिस्थितिकर उसमें अन्त इच्छाएँ और अनेक उच्चादर्श उभरते हैं। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह अनेक कार्य करता है। उन इच्छाओं के अपूर्ण रहने पर, उसमें मानसिक झुलझुल उत्पन्न हो जाती है। यही मानसिक झुलझुल विचारों में परिवर्तन कर ज्ञान्ति का सूत्रपात करती है। इसी प्रकार मनुष्य के जीवन में कुछ आवर्त होते हैं। इन आवर्तों का पालन वह जी-जान से करता है। जब भी ये आवर्त किसी चीट से टूटने लगते हैं, मनुष्य तिलमिल उठता है। उसका हृदय एक झुलझुल से आन्दोलित हो जाता है। इसी आन्दोलन के गर्भ में ज्ञान्ति का जन्म होता है। सामान्यतः अन्याय, अत्याचार और अमान के कारण ज्ञान्ति उत्पन्न होती है। जब कोई शासक शासित पर अत्याचार करता है, उसे उसका न्याय नहीं देता, पदे-पदे उसे अमानति करता है, तो उस अत्याचारी के प्रति घोर घृणा हो जाती है और यह घृणा विरोध, विद्रोह तथा ज्ञान्ति के रूप में फलक उठती है। जनता दुःशासन का सदा विरोध करती है और इस प्रकार ज्ञान्तियाँ जुन-जुन से होती आई हैं।

‘परतंत्र देशों में ज्ञान्ति का मुख्य कारण राजनीतिक और आर्थिक होता है’। अत्याचार और शोषण की शीघ्रता अखण्ड होने पर चलने वाला सन हो जाता है। यह सनता अत्याचार का विरोध करने में प्रकट होती है। इस विरोध से अत्याचारी में अधिक शीघ्रता प्रतिक्रिया होती है। प्रतिक्रियाएँ वह और मर्याद हो जाती हैं। सन मानकता की वह अखण्ड चलता है और वह शासन-तंत्र को कलाहल कर नयी व्यवस्था स्थापित करना चाहती है। मार्क्सवादी युद्ध या क्रांतिवाद पर विश्वास नहीं रखते। स्थिर से राज्यज्ञान्ति में शासन तंत्र को धूर-धूर कर नया शासन स्थापित करना चाहते हैं। मार्क्स ने मूलमान को कभी ठीका था कि जब तो ज्ञान्ति का काम है उस तंत्र को धूर-धूर कर देना।

विश्व में किसी राज्यज्ञान्तियों हुई हैं, सब के मूल में अत्याचार, अन्याय और अमान का विरोधभाव रहा है। यह विरोधभाव अपनी सज्जा में बहुत मर्याद होता है



और इस भयानकता को अत्याचारी सह नहीं पाता, वह टूट जाता है और उसके अस्तित्व को रात पर नयी शासन व्यवस्था उभती है। राज्यक्रान्ति को उत्पत्ति का बड़ा सुन्दर स्वरूप जवाहरलाल नेहरू ने 'विश्व इतिहास की कलक' में वर्णित किया है, 'लेकिन क्रान्तियाँ और ज्वालामुखी पहाड़ बिना कारण या बहुत दिनों की तैयारी के एकाएक नहीं फूट पड़ते। हम एकाएक होने वाले विस्फोट (बड़ाफे) को देखकर ताण्डुल करते हैं, लेकिन जमीन की सतह के नीचे दुर्गों तक बहुत-सी ताकतें वापस में टकराया करती हैं और आग में सुलझा करती हैं। वायोर में ऊपर की पपड़ी उसको ज्यादा दूर दबाकर नहीं रख सकती और ये ज्वालारं आकाश तक उठने वाली विस्फोट छपटों के साथ फूट पड़ती हैं और पिघलता हुआ पत्थर (छाया) पहाड़ पर से नीचे की तरफ बहने लगता है। ठीक उसी तरह ये ताकतें, जो आतिशबाजी, क्रान्ति की शक्ति में जाहिर होती हैं, समाज की सतह के नीचे बर्षों तक संचित करती हैं।' इस विवरण से प्रकट है कि क्रान्ति एकाएक नहीं फूटती। दुर्गों तक अत्याचार, अन्धाय सहन करने के बाद क्रान्ति फूटती है। क्रान्ति के लिए परिस्थिति विशेष की आवश्यकता होती है। अत्याचार और अन्धाय की विभिन्न परिस्थितियों को देखने के बाद जब सत्ता कठिन हो जाता है, तब जनता क्रान्ति करती है। वह अत्याचार के मुँह को मिटाने के लिए हिंसा अपना बहिष्कार दोनों साधनों का, परिस्थितिबद्ध आश्रय करती है।

किसी-किसी देश में स्वतन्त्रता के लिए राज्यक्रान्ति होती है। भारत उसका ज्वलन्त उदाहरण है। ब्रिटिश शासन के अत्याचार ने जनता में विरोध पैदा किया और विभिन्न आन्दोलनों की सिंहात्मक तथा बहिष्कात्मक क्रान्तियों ने भारत की स्वतन्त्र किया। क्रान्ति के फलीफूल होने में कई सहायिकाएँ लगी थीं। इस तरह क्रान्ति साधारण शक्ति या शक्ति के कठस्थ रूप उत्पन्न नहीं होती। दुर्गों के अत्याचार और उत्पीड़न को सबसे-सबसे छोटे-मोटे विरोध प्रकट करने के उपरान्त सबसे एक बार क्रान्ति उत्पन्न होती है।

विदेशी शासन की प्रतिहिंसा से उत्पन्न क्रान्ति अपनी चीट से विदेशी साम्राज्यिक शासन-व्यवस्था को धुर धर धरी है और उसके बगैरे एक नयी शासन-व्यवस्था स्थापित करती है। यह शासन-व्यवस्था जनता की इच्छा पर निर्भर करती है। जनता के लिए जनता के द्वारा स्थापित नयी शासन-व्यवस्था जनताधिकार हो जाती है। इसका

कारण यह है कि इस क्रान्ति में जनता का सहयोग होता है। इस कारण जो भी व्यवस्था स्थापित होती है, वह जनता के द्वारा संघालित होने लगती है। कठोर विरोधी शासन की प्रतिक्रिया का जनतांत्रिक शासन-व्यवस्था के रूप में प्रकट होना स्वाभाविक ही है।

क्रान्ति का मुख्य कारण एक ध्येय-विशेष होता है। जहाँ यह ध्येय नहीं होता, वहाँ क्रान्ति नहीं हो सकती। यह ध्येय ही क्रान्ति की प्रेरणा और उसकी उद्देशित करने वाला है। ध्येय की प्राप्ति के लिए जितनी ही अधिक तीव्र इच्छा होगी, क्रान्ति में भी कमीशत उसी सीमा तक उद्वेगना रहेगी। यह ध्येय कभी उच्च वापस की प्राप्ति, स्वतन्त्रता-प्राप्ति, उत्पादक, व्यापक व मुक्ति, सामाजिक तथा वार्षिक विकास, वार्षिक तथा सांस्कृतिक उत्कर्ष, कुछ भी हो सकता है। ये सभी क्रान्ति की प्रेरणायें हैं। यों तो मनुष्य की अनेक इच्छाएँ, अनेक ध्येय होते हैं किन्तु ऊपरी छिछित उदात्त की कोटि में आये। इसका मूल उद्देश्य मानव-कल्याण होता है, क्योंकि कोई एक व्यक्ति क्रान्ति नहीं कर सकता, इसलिए सार्वजनिक मानव-मंगल के उपर्युक्त ध्येय भण्ड हैं। ये उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही क्रान्तियाँ हुवा करती हैं। इस प्रकार क्रान्ति का उद्देश्य न्याय, समता, स्वाधीनता आदि की प्राप्ति है। जनता और समाज के सदस्यों के हित की रक्षा क्रान्ति के माध्यम से होती है।

विश्व में अधिकतर राजनीतिक तथा वार्षिक क्रान्तियाँ ही हुई हैं। राजनीतिक क्रान्ति का कारण स्वतन्त्रता की प्राप्ति अथवा व्यापकपूर्ण शासन-व्यवस्था के कठिने व्यापकपूर्ण मुख्यवस्था स्थापित करना होता है, किन्तु राजनीतिक क्रान्ति के साथ सामाजिक और वार्षिक क्रान्तियाँ भी समान रूप से साथ ही होती हैं, क्योंकि इन क्रान्तियों के मुक्ति की कामना भी राजनीतिक क्रान्ति में गुंथी हुई है।

इन कारणों के अतिरिक्त क्रान्ति के और भी कारण होते हैं। कड़वापी, व्यापकपूर्ण सामाजिक परिस्थितियाँ भी क्रान्ति उत्पन्न करती हैं। जिन देशों में सामाजिक शासन-व्यवस्था के बीच के कारण सामाजिक परिस्थितियाँ तथा सामाजिक सम्बन्ध विषम हो जाते हैं, वहाँ सामाजिक क्रान्ति होती है। सामाजिक क्रान्ति का मकसद भी कम नहीं है। समाज का विधि-निर्णय मनुष्य के वैयक्तिक जीवन की संघालित करता है, कम कभी ऐसे विधि-निर्णय में समता तथा न्याय नहीं रह जाये, मनुष्य सामाजिक क्रान्ति की ओर लुप्त होता है। इस क्रान्ति के द्वारा एक समाज में नये नुस्खों की स्थापना करता है। नये विधि-निर्णयों की समता की मुख्यवस्था पर लुप्त किया



जाता है। इस प्रकार की ज्ञान्ति शान्तिपूर्ण ढंग से चलती है। उसमें कभी भीषणता नहीं जाती। शायद ही कभी इस ज्ञान्ति के मध्य हिंसा को अपनाया गया हो।

सामाजिक ज्ञान्ति की तरह वार्षिक ज्ञान्ति भी महत्वपूर्ण है। जब कभी पुँजीवादी व्यवस्था में अस्मानता का कसाव खूब जाता है, तोषण भीषण रूप धारण कर लेता है, पुँजीवादी वर्ग-व्यवस्था को सत्त्व करने के लिए मजदूरों का बान्धोऊन उठ खड़ा होता है। मजदूर और किसान को शोषित तथा पीड़ित हैं, शोषण संस्था क्योंकि पुँजीवाद को मिटाने के लिए, ज्ञान्ति करते हैं। इस प्रकार की ज्ञान्ति स्व में हुई, वहाँ चार के बत्याचारी शासन को समाप्त कर, पुँजीपतियों के शोषण को मिटा कर नई राज्य तथा वर्ग-व्यवस्था तैयार का अभिमायवाद के रूप में स्थापित हुई है। पुँजीवाद को राजतंत्र में सम्मोचन मिळता है, इसलिए वहाँ भी वार्षिक ज्ञान्ति सम्मान्य है, वहाँ राज्यज्ञान्ति भी अवश्य ही होती है, क्योंकि राज्य-व्यवस्था को समाप्त किए बिना वर्ग-व्यवस्था को शोषणपूर्ण है, अस्मान है, हृत्प नहीं की जा सकती। वही कारण विश्व की राज्य तथा वर्गज्ञान्तियाँ अधिकारतः साम होती रहती हैं। वार्षिक ज्ञान्ति का कुछ उद्देश्य अस्मानता की स्थापना है। पुँजीवाद को हृत्प कर अस्मानता के आधार पर नवी वर्ग-व्यवस्था इस ज्ञान्ति के फलस्वरूप जाती है, जो प्रत्येक मानव को समान कार्य के लिए समान पारिवर्तिक के सिद्धान्त को मानती है। इस वर्ग-व्यवस्था का प्रत्येक मानव या, किसी अपने सिद्धान्तों के माध्यम से इन तथ्यों का सामीपान प्रतिपादन किया है। उसके सिद्धान्तों के आधार पर ज्ञान्ति के लिए संघटित कई साम्यवादी पक्ष के स्व में प्रत्यक्ष हुआ और अपने कार्य-संघर्ष और अखण्ड ज्ञान्ति के द्वारा स्व में नई राज्य और वर्ग-व्यवस्था स्थापित की। चीन वादि देशों में भी वही तरह की वर्ग-ज्ञान्तियाँ हुई हैं।

वार्षिक ज्ञान्ति भी अब महत्वपूर्ण नहीं है। जर्मनी के मार्टिन एवर नामक वार्षिक पुराण के रोमन कैथोलिक के विरुद्ध वार्षिक ज्ञान्ति करके प्रोटेस्टेंट पंथ खड़ा था। यह ज्ञान्ति ईसाई धर्म की स्तुतिवादिता वादि के कारण हुई। वही प्रकार की ज्ञान्तियाँ कभीकाल दूसरे देशों में भी हुई हैं। इस ज्ञान्ति का उद्देश्य वार्षिक स्तुतिवादिता और कठोरता को मिटा कर हृत्प और प्रतिहीत नीति-व्यवस्था कायम करना होता है। वार्षिक स्तुति और कठोरताएँ जब मानव के विकास में बाधक होने लगती हैं तो उन्हें नष्ट कर हृत्प हृत्प और प्रतिहीत कार्य-व्यवस्था कायम की जाती है। वार्षिक ज्ञान्ति प्रत्येक देश में वही उद्देश्य को लेकर होती रही है। वैश्व धर्म की कठोरता और स्तुति-

वादिता की प्रतिक्रिया में बौद्धिक उत्पन्न हुआ । ऐसे उदाहरण बति मुख्य होते ।

यद्यपि क्रांति के अनेक कारणों का उल्लेख किया गया है, फिर भी इतना स्पष्टात्र कारण सामाजिक कल्याण है । क्रांति इन्में से किसी एक भी कारण से उत्पन्न हो सकती है और इस प्रकार समाज के किसी एक क्षेत्र में किसी विशेष तरह का परिवर्तन कर सकती है, किन्तु ये सभी कारण एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़सुल हैं कि इन्हें अलग-अलग में रखकर किसी विशेष क्रांति के उदय की बात कहना उचित नहीं है । सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक कारण एक-दूसरे पर इस प्रकार आधारित हैं कि उनका है, ये सभी आधार क्रांति के अनिवार्य कारण हैं । अतः इन्हें अलग करके देखना सम्भव नहीं प्रतीत होता । रूस, चीन, फ्रांस, अमेरिका एवं भारत आदि देशों की क्रांतियों के पीछे ये सभी कारण अवश्य रहे हैं । धार्मिक कारण भी इन क्रांतियों में प्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रहे हैं, ऐसा कहना अशुचित न होगा । इस तरह परतंत्र और निरंकुश शासन में धार्मिक झुंझावे इतनी बढ़ जाती हैं कि यह सत्य ही अनुमेय है कि इन्हें अलग नहीं किया जा सकता । इस दृष्टि से राज्यक्रान्ति के मूल में ये सभी कारण रहे हैं । उनका है, इन्में से कोई भी कारण यदि व्यक्त नहीं हुआ होता तो क्रांति इतनी तीव्र और शक्तिपूर्ण नहीं हुई होती । इतना तो मानना ही पड़ेगा कि प्रत्येक क्रांति के पीछे सामाजिक कारण रहे हैं । किसी एक कारण की अभिव्यक्ति क्रांति के उद्भव का मूल कारण नहीं है ।

### ज्ञान्ति के विभिन्न रूप

ज्ञान्ति चार प्रकार की हो सकती है। राजनीतिक, सामाजिक, वार्षिक और वार्षिक। प्रत्येक ज्ञान्ति अपने आप में महत्वपूर्ण है। इसे कहा जाता है कि वार्षिक ज्ञान्ति उतनी महत्वपूर्ण नहीं होती, जितनी राजनीतिक और वार्षिक ज्ञान्तियां। पर ऐसा कहना उचित नहीं। वार्षिक ज्ञान्ति भी अन्य ज्ञान्तियों की तरह ही महत्वपूर्ण है। राजनीतिक और वार्षिक ज्ञान्ति का अनिवार्य फल सामाजिक ज्ञान्ति है। पर यह कहना अनुचित न होगा कि राजनीतिक ज्ञान्तियों में अन्य ज्ञान्तियों अनिवार्य रूप से छुड़ी हुई हैं।

### राजनीतिक ज्ञान्ति

राजनीतिक ज्ञान्ति विदेशी सत्ता एवं सामन्तशाही से मुक्ति पाने के लिए होती है। साथ ही राजनीतिक तथा वार्षिक मुक्तिवादी को पाने की कामना तो सम्मिलित रहती ही है।

किसी विदेशी सत्ता के शासन की समाप्ति के लिए साक्षित सत्ता द्वारा किया गया विरोध तथा विद्रोह को राष्ट्रीय ज्ञान्ति कहा गया है। राष्ट्रीय ज्ञान्ति के वाक्य में बहुत बड़े परिवर्तन होते हैं। विदेशी शासन के बीच-बचाव बर्खास्त है मुक्त सत्ता के स्वाभिमान को चर्करा ठेक पहुँचती है और वह ज्ञान्ति के लिए सम्मिलित हो जाती है। वह ज्ञान्ति के परिणामस्वरूप शासन के महत्वपूर्ण और लोचने पर अपने देश के ही प्रजासत्ताकी व्यक्ति प्रतिष्ठित हो जाते हैं। भारत की विदेशी शासन से मुक्ति पाने की आकांक्षा राष्ट्रीय-ज्ञान्ति ही थी।

राजनीतिक ज्ञान्ति का एक रूप यह भी होता है जब किसी विदेशी शासन का नहीं, बल्कि सामन्तशाही या किसी बर्खास्तकारी शासन का विरोध होता है। आक्रामक कभी तो उत्पन्न करता रहती है और कभी कोई एक गुट रहता है। यदि उत्पन्न करता ज्ञान्ति में हिस्सा लेती है और राजनीतिक स्वायत्तता प्राप्त करती है, जब समाजवादी प्रजासत्तात्मक ज्ञान्ति की स्थापना होती है। राजनीतिक ज्ञान्ति के एक रूप में शासन के साथ ही साथ सर्व-जन्यता भी होनी चाहिए के साथ में आ जाती है। वस्तुतः समाजवादी ज्ञान्ति प्रजासत्ता के विरुद्ध सर्वकार के विरोध की भी अभिव्यक्ति है। पर यदि सामन्तशाही के विरुद्ध या प्रजासत्ता के विरुद्ध ज्ञान्ति होकर सत्ता दूसरे गुट के हाथ में चली जाती है, तो वह प्रजासत्तात्मक ज्ञान्ति कह सकते हैं। वह ज्ञान्ति कि राज्याधिकार एक व्यक्ति

या मुट के हाथों से निकल कर दूसरे कल या कर्न के हाथों में कड़ी जाती है, किन्तु बाकि व्यवस्था में परिवर्तन न होने के कारण पूरे कर्न का कष्ट दूर नहीं हो पाता ।

इस प्रकार राजनीतिक क्रान्ति के उपर्युक्त प्रकार कहे जा सकते हैं । पर वे विवेचन की दृष्टि से ही उपर्युक्त हैं । अन्यथा सब के मुँह में राजनीतिक होषण के मुक्ति की कामना ही रहती है । राजनीतिक क्रान्ति ही महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली क्रान्ति है, ऐसा लोगों का विश्वास है । राजनीतिक क्रान्ति में संघर्ष की तीव्रता होने के कारण उसे सब ही महत्व मिठ जाता है । राजनीतिक क्रान्ति में सामाजिक बाकि और बाकि क्रान्तियाँ भी साफ-साफ उभरती रही हैं । इसलिए भी राजनीतिक क्रान्ति की इतनी महत्ता है, किन्तु विश्व में सामाजिक, बाकि और बाकि क्रान्तियाँ राजनीतिक क्रान्ति से कल भी हुई हैं ।

### बाकि क्रान्ति

स्वरणीय है कि जब कभी कर्न रुढ़ियों के कटघरे में धिर जाता है तो वह बड़ बन जाता है । उसका सारा सन्धन, उसकी सारी सप्राणता सब हो जाती है । रुढ़ियों की बड़ में बाकि कलाव छे जाने का भय बाकि पंथों को है । वे कर्न की बाकि कर्नकांडी बना देते हैं, जिसका उद्देश्य प्रकारान्तर से कर्न का होषण है । यह होषण और बत्थाचार, रुढ़िवादिता, परम्परा, बड़ता, कर्नकाण्ड बादि के विरोध में बाकि क्रान्तियाँ होती बाई हैं । कर्न के ठेकेदार पंथ पुरोहितों का कर्न, यह विरोध को सज्ज नहीं पाता । वह परम्परा को टूटने नहीं देना चाहता । वह परम्परित कर्न के विरोधियों के प्रति लोक प्रकार से बत्थाचारी हो उठता है । मंथूर, रंजामसीह तथा और न जाने कितने व्यक्ति बाकि क्रान्ति के फलस्वरूप कर्न के ठेकेदारों की कोपदृष्टि के कारण लड़कर दूर हैं, उन्हीं सत्य का मार्ग अन्य तक नष्ट है, सब कुछ खरा है, जो उचित समझा है, क्या है । प्रोटेस्ट और केवोचिक ईसाई यह के संघर्ष के फलस्वरूप दूर नरमेव और विनाश को भी पुठाना नहीं जा सकता, किन्तु जनता और जनता के अपने प्रतिनिधि इन विरोधों की परवा नहीं करते । लोक त्याग, उत्कर्ष और बत्थाचारों को खल कर वे जनता के लिए नये मार्ग की राह निकालते हैं । बड़ और परम्परा पर भ्रम और नवीन की विजय होती है । नये कर्न का प्रकीर्ण होता है, पुराना कर्न टूट जाता है ।

कर्न मानव जीवन का महत्वपूर्ण अंग रहा है । वह एक प्रकार से निरन्तर हो गया है । इसलिए परम्परा और रुढ़ि के विरोध में उभरने वाली बाकि क्रान्ति की

महत्वपूर्ण है। राजनीतिक क्रान्ति के साथ वार्षिक क्रान्तियाँ भी उभरती रही हैं, क्योंकि परतंत्र शासि में रुढ़ियाँ, परम्परायें, अवैश्वास ज्यादा होते हैं। उन्हें मिटाने के लिए नये कर्म का प्रवर्तन, सुधारों की नई दिशाएँ फूटती रही हैं। वार्य समाज, राक्षस मित्तल, क्रस्माज आदि ने भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति को नया मोड़ दिया है। ये क्रान्तियाँ भी राजनीतिक क्रान्ति के साथ-साथ होती रही हैं। वार्षिक सुधारों और परिवर्तनों ने जीवन को नई शक्ति, नई गति और आत्मविश्वास दिया है, जिसके कठ पर राष्ट्रीय और राजनीतिक क्रान्ति अधिक तीव्र, अधिक पूर्ण और अधिक जफ़्त हुई है।

### सामाजिक क्रान्ति

ऊपर बताया जा चुका है कि राज्यक्रान्ति की तरह सामाजिक और वार्षिक क्रान्ति भी बहुत महत्वपूर्ण है। जवाहरलाल नेहरू के अनुसार सामाजिक क्रान्ति में राजनीतिक क्रान्ति भी सम्मिलित है<sup>१</sup>। सामाजिक क्रान्ति समाज का ढांचा ही बदल देती है। इस परिवर्तन में राजनीतिक, वार्षिक और वार्षिक परिवर्तन भी सम्मिलित हो सकते हैं। श्री नेहरू ने फ्रांस और अंग्लैण्ड की राज्यक्रान्तियों को बहुत दूर तक सामाजिक कहा है<sup>२</sup>। उन्होंने जाने कहा है कि 'देशी सामाजिक क्रान्तियों के अंशम धिक्-धियाही झकझाव से कहीं ज्यादा गहरी और मुकुम्भ होती हैं और उनका सामाजिक हाजत से गहरा साहस होता है'<sup>३</sup>। विषम सामाजिक परिस्थितियाँ ही सामाजिक क्रान्ति की प्रेरणा देती हैं। जब सामाजिक जीवन बीक-कन जाता है और विषम स्थिति को बदलित करना कठिन हो जाता है, तब जनता सुधार का कोई अन्य रास्ता न देख, सामाजिक क्रान्ति का सहारा लेती है। इस क्रान्ति से समाज का ढांचा बदल जाता है, रुढ़ियाँ टूट जाती हैं और नये मूल्यों की स्थापना होती है। प्रत्येक देश में सामाजिक क्रान्तियाँ हुई हैं। इन क्रान्तियों से न केवल समाज का ढांचा ही बदला, बल्कि बड़े-बड़े साम्राज्य भी ज्वस्त हो गए। स्पष्ट है कि सामाजिक क्रान्ति राजनीतिक क्रान्ति से अधिक महत्वपूर्ण और ज्यादा है।

१- विषम स्थितियों की कठक- जवाहरलाल नेहरू, पृष्ठ २२, सं० प्रथम

२- वही

३- वही



किन्तु जिस क्षण में यहां सामाजिक परिस्थिति की कर्वा की गयी है, वह एक वर्ग कच्चा जाति विशेष को मान्यताओं, नीतियों और स्थापनाओं से सम्बन्धित है। वह इतनी विस्तृत नहीं है कि राजनैतिक क्रान्ति की उसमें अन्तर्भूत हो सके। पर इतना तो मानना ही होगा कि सामाजिक मनःस्थिति में परिवर्तन होने पर ही राजनैतिक कच्चा कोई भी क्रान्ति सम्भव है। इस प्रकार सामाजिक क्रान्ति से अन्य क्रान्तियों के सम्बन्ध बहुत हद तक सीधा और गहरा है।

### वार्षिक क्रान्ति

वार्षिक क्रान्ति शोचण के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। जहाँ समाज की वर्ग-व्यवस्था में समानता नहीं होती और समाज ऊपर और नीचे में बंटा होता है, नीचे की स्थिति अस्मानता और शोचण के कारण अत्यन्त कष्टग्रस्त है और कठिन हो जाती है। शोचण की एक सीमा होती है। जब कठिन मन के बावजूद मनुष्य को अनिवार्य आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं होतीं, तब शोचित वर्ग शोचकों के विरुद्ध क्रान्ति के छिर उड़ा होता है। स्मरणीय है कि ऐसी क्रान्ति पुँजीवादी वर्गव्यवस्था में ही होती है। तात्पर्य कि पुँजीवादो शोचण को समाप्त करने के छिर वार्षिक क्रान्तियाँ जन्म लेती हैं। इन क्रान्तियों का परिणाम समाज वर्ग-व्यवस्था में क्रान्त होता है, जहाँ काम के अनुसार रोटि मिलती है। इस क्रान्ति की कर्वा सामाजिक जनतंत्रात्मक क्रान्ति के अन्तर्गत की जा चुकी है।

भारतवर्ष में राष्ट्रीय क्रान्ति के संदर्भ में वार्षिक क्रान्ति भी हुई। विदेशी शासन के अन्तर्गत भारत की वर्ग-व्यवस्था जीवन के उपयुक्त नहीं रह गयी थी। देश, विदेशी बस्तुओं के आयात तथा विदेशी पुँजी के बहाव के कारण राष्ट्रीय उद्योगधन्यों का विनाश विदेशी वर्ग-व्यवस्था के परिणाम थे, इसलिए राष्ट्रीय क्रान्ति के अन्तर्गत जहाँ वार्षिक क्रान्ति की ओर भी रुख हुआ। उन्हें देश बाँटि का विरोध किया। विदेशी बस्तुओं के उपयोग और विदेशी बस्तुओं के बहिष्कार के माध्यम से भारतीय उद्योगधन्यों को विकसित करने की उच्चा प्रकृति की तथा विदेशी बस्तुओं के आयात का विरोध किया।

विदेशी शासन में न केवल राजनीतिक, सामाजिक और वार्षिक संस्थाओं पर भी शासन का प्रभाव होता है। अर्थात् तो पूरी तरह शासकों के अधिकार में होता है, क्योंकि वर्ग राज्य-व्यवस्था का अनिवार्य अंग है। जहाँ भी विदेशी शासन साम्य वर्गों के प्रभुत्व पर है, वर्ग-व्यवस्था में भी क्रान्ति की गयी है। कारण यह है कि वर्ग-व्यवस्था में समानता है और बिना राजनीतिक समानता वर्ग ही नहीं है। इसलिए

राष्ट्रीय क्रान्ति के अन्तर्गत होने वाली राजनीतिक क्रान्ति के साथ आर्थिक क्रान्ति भी अनिवार्य रूप से चलती है ।

### ज्ञान्ति और सुधार

कभी-कभी ज्ञान्ति विषयक परिवर्तन को सुधार के अन्तर्गत ही मिला जाता है । जिस प्रकार ज्ञान्ति समाज में व्याप्त किसी दोष के निराकरण के लिए की जाती है, उसी प्रकार वर्तमान दोषों को दूर करने के लिए सुधार की भी अपेक्षा होती है । जहाँ तक परिवर्तन का सम्बन्ध है, ज्ञान्ति और सुधार में मात्रागत अन्तर ही पाया जाता है । जैसे परिवर्तन और सुधार के लिए जो नीतियाँ अपनायी जाती हैं, उनमें भी अन्तर है, किन्तु उदय एवं ज्ञान्ति परवर्ती परिवर्तन की दृष्टि से दोनों समान लगते हैं । सुधारवाधियों की विकासवादी भी कहा जा सकता है, जबकि ज्ञान्तिवादी स्वयं भिन्न हैं । विकासवादी और सुधारवादी दोनों की गणना एक ही वर्ग के अन्तर्गत की जा सकती है । सुधारवादी व्यवस्था में बार-बार दोषों में सुधार कर पूर्वस्थिति की, जबकि सुत-सुदि की, पुनः स्थापना करना चाहते हैं ।

सुधार के लिए सुधारवादी कई विधियाँ अपनाते हैं । निवेदन, प्रार्थना, वाक्ताकारिता, वाक्त्र और वाच्योद्यमात्मक कार्यवाहियों के माध्यम से वे सुधार की चेष्टा करते हैं और इस काम में सफल भी होते हैं । इस प्रकार सुधारवाद जननीते की नीति है । ज्ञान्ति इस दृष्टि से भिन्न है । यह दोषपूर्ण व्यवस्था को बान्धु बन्ध देती है । जननीते पर उसका विश्वास नहीं, इसलिए पुरानी व्यवस्था को भिटाकर नयी व्यवस्था ज्ञान्ति के बाद आती है । पुरानी व्यवस्था का कुछ नहीं, वह तो ख़रब व्यवस्था थी, जिसे भिटाना था । इस प्रकार ज्ञान्ति और सुधार में अन्तर है । दोनों को एक नहीं माना जा सकता ।

विकासवादी वर्तमान दुन की सभी अच्छी व्यवस्थाओं को मानते हैं और उनके माध्यम से जाने बढ़ते जाने का सिद्धान्त अपनाते हैं । इस प्रकार ज्ञान्तिपूर्वक विकास करते-करते सुधारों के माध्यम से वे वर्तमान व्यवस्था को उत्तम जाने के सिद्धान्त को मानते हैं । सुधारवादी और विकासवादी सिद्धान्तों में उदयज्ञान्ति की दृष्टि से कोई <sup>अंतर</sup> अन्तर नहीं । दोनों का उदय वर्तमान व्यवस्था में सुधार करना है । यह सुधार ज्ञान्तिपूर्ण अंतर से ही होता है । इसलिए उन्हें काफी समय लेना, क्योंकि सुधार का रास्ता निवेदन का रास्ता है, वाक्त्र का रास्ता है । दोनों समाज-व्यवस्था में कमीनता चाहते हैं, दोष दूर करना चाहते हैं किन्तु उन्हीं के लिए अपनाए जाने वाले साधन ज्ञान्ति से भिन्न हैं ।



ज्ञान्तिकारी को ज्ञाना वैयं नहीं कि वह बीच काठ तक प्रतोषा कर और उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो । वह लक्ष्य की प्राप्ति में शीघ्रता चाहता है, क्योंकि उसमें असन्तोष, घृणा और क्रोध की भावना इतनी तीव्र होती है कि वह ठहर नहीं सकता, शीघ्रातिशीघ्र व्याप्यपूर्ण व्यवस्था में, वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए वह जून और ज्ञान्ति टूटने की विन्ता नहीं करता । इसलिए वह हिंसा को भी माध्यम रूप में ग्रहण करने के लिए तैयार रहता है ।

प्रश्न उठता है कि ज्ञान्ति में कितना उतावलापन और इतनी कबीरता क्यों जाती है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य के सामने जो सुन्दर सपना होता है, उसे वह यथा-शीघ्र साकार करना चाहता है । उसे वर्तमान दुरवस्था से असन्तोष है । इसलिए उसके प्रति उसके मन में बाझोह है, क्रोध है । क्रोधभाष के कारण ही ज्ञान्ति उत्पन्न होती है । छास्की ने 'मय को ज्ञान्ति का जनक बताया है' । छास्की का मय शासन-व्यवस्थापक के पदा में है, जो ज्ञान्तिकारियों द्वारा अपने शासन के दिन जाने के मय से अधिक क्लेश करने वाला, अधिक बत्याचारी भी हो सकता है । इस प्रकार छास्की ने मय की स्थिति सत्याचारी पर आरोपित किया है । परिवर्तन का मय ही बत्याचार और क्लेश की वृद्धि का कारण बनता है और सभी ज्ञान्ति उत्पन्न होती है । हमारी दृष्टि है कि शासक को अपना जैसा छास्की ने माना है, शासित में व्याप्त मय ज्ञान्ति के उत्पन्न होने का महत्वपूर्ण कारण होता है । ज्ञान्तिकारी को अपने मविष्य के स्वप्न के साकार होने में सन्देह होता है । इस संका के कारण ही उसमें मय उत्पन्न होता है । इसलिए अपनी योजित नवीन व्यवस्था की स्थापना के लिए वह उतावला रहता है और कबीरता की स्थिति में सुवार और ज्ञान्ति का जून बिटाकर ज्ञान्ति के माध्यम से पूरी शासन-व्यवस्था को ही कलक होता है । ज्ञान्ति का यह रूप मयानक और रुद्र होता है । इस तीव्र रूप में क्लेशानुविधता और झुलसा भी जा जाती है, क्योंकि उसके बिना नवी व्यवस्था शीघ्रता से नहीं हो सकती ।

ज्ञान्ति के इस तीव्र रूप के अतिरिक्त उसका एक रूप शीघ्र क्लेशा अधिपति भी है । शीघ्र ज्ञान्ति में भी संघर्ष का विधान है । वह भी शीघ्र अपने लक्ष्य की प्राप्ति

बाह्य होती है। उसका उद्देश्य है— मानव-मंगल। कुछ लोग यह मानते हैं कि क्रान्ति बहिष्कारत्मक अथवा सौम्य नहीं होती। वह सदा हिंसात्मक होती है, किन्तु संत विनोबा ने इस क्रान्ति का सफ़ा किया है। मुदान क्रान्ति की व्याख्या करते हुए उन्होंने निम्न शब्दों में क्रान्ति की भावना का बहिष्करण प्रस्तुत किया है— 'इस यज्ञ से अच्छी क्रान्ति सत्य होगी, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। रक्तपात बिना अच्छी क्रान्ति कैसे हो ही नहीं सकती। रक्तपात से केवल उफ़ल-पुफ़ल होती है, उफ़ल-पुफ़ल कोई क्रान्ति नहीं। क्रान्ति याने समाज की प्रचलित मान्यताओं की तेजी से आलोचना करना। यह रदोक्कल विचार-प्रचार से ही होता है, तलवार से नहीं।' दादा कर्माधिकारी ने सत्सत् क्रान्ति को 'हीना कपटी का, जोर जबरदस्ती का, हठकों का रास्ता' कहा है। वे वास्तव्य प्रकट करते हुए कहते हैं, 'वास्तव्य है कि बड़े-बड़े व्यक्तित्व लोग इस क्रान्ति का तरीका कहते हैं।' उनके अनुसार यह तरीका अपमान पर अत्याचार की बड़ ही कट जाती है। स्पष्ट है कि बहिष्कृत क्रान्ति के समर्थक सत्सत् क्रान्ति में न तो विश्वास करते हैं और न उसे मानव कल्याण के लिए उपयुक्त ही समझते हैं।

शासन-व्यवस्था में परिवर्तन कानून के माध्यम से भी लाया जा सकता है। मनुष्य का कुछ हीनमेवर्ग, उसके अधिकारों को खत्म करने वाले कानून की वजह मानव कुछ और जन-कल्याण के आधार पर नवी शासन-विधि की स्थापना इस क्रान्ति के अंगत कहियत है। बहिष्कृत क्रान्तिकारी यह मानते हैं कि जब तक जनता में बड़ संस्था का महत्त्व रहना, कानून के द्वारा क्रान्ति करना क्रान्ति करना सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि संस्था और जाकार को महत्त्व देने के कारण जनता में महत्त्वपूर्ण मानवीय गुणों की उपेक्षा हो जाती है। ऐसे गुण गौण पड़ जाते हैं। ऐसा जनता के जीवन पर ही क्रान्ति उत्पन्न हो सकती है अन्यथा बड़ और निर्भीक जनता क्रान्ति का माध्यम नहीं हो सकता। 'जनता की मार्फत क्रान्ति के लिए कानून जरूरी है लेकिन कानून के लिए एक सामाजिक संघर्ष और अधिष्ठान की जरूरत होती है।'।

१- क्रान्ति की पुनार- आह्वान का, पृ० २६-२७, सन् १९५४

२- क्रान्ति का कला कला- दादा कर्माधिकारी, पृ० २०-२१, सन् १९५५

३- वही, पृ० २१ सन् १९५५

सौम्य ज्ञान्ति अधिस्तात्मक ज्ञान्ति भी कही जा सकती है। इसके प्रवर्तक महात्मा गांधी थे <sup>वे सही ज्ञान्तिवादी थे।</sup> संसार व्यापी संस्कृति और जीवन के किसी भी अंग की कर्मरता के विरुद्ध गांधी प्रस्तुत विरोध पड़े। उन्होंने माना कि मनुष्य के हृदय में सत्-वस्तु सजियों का संबंध होता रहता है। यदि मनुष्य असत्य की ओर मुक्तता है तो वह सत्य की ओर भी मुक्त सकता है। इस स्वल्प को पा देने पर मनुष्य वात्सल्य हो सकता है। तभी उसके द्वारा निर्मित संसार सुन्दर हो सकता है। गांधी की ज्ञान्ति का मूल आधार यही है।

गांधी द्वारा प्रवर्तित अधिस्तक ज्ञान्ति में सत्य की अपेक्षा नहीं होती। अपने विरुद्ध उत्कर्ष आवश्यक है। प्रसन्नतापूर्वक अपने को बलिदान कर देना उनकी ज्ञान्ति-पद्धति है। आत्म, सक्ति, दमन, वस्त्र-सत्य किसी की परवाह अधिस्तक ज्ञान्तिकारों की नहीं होती। 'युद्ध और संघर्ष तथा ज्ञान्ति की कल्पना की ही नहीं, प्रत्युत व्यावहारिक रूप से उन सब की रक्तपात, हिंसा और द्वेष के नैतिक तथा पाश्चात्तिक स्तर से ऊंचा उठाकर पुनित और मानवीय नैतिक द्वार पर ले जाना अधिस्तक ज्ञान्ति-पद्धति की विशेषता है जो संकट: विश्व के इतिहास में देखा है।'

महात्मा गांधी ज्ञान्ति का सुनपात मनुष्य के अन्तर में मानते हैं। वे यह नहीं मानते कि ज्ञान्ति केवल बाह्य कारणों से होती है और उसकी क्रिया बाह्य जगत में ही घटित होती है। ज्ञान्ति न तो केवल नैतिक है और न ही विरुद्ध नैतिक घटना-मात्र। उनकी मान्यता है कि बाह्य बाह्य परिस्थितियों के बिना अतृप्त और अदृश्य कारणों के फलस्वरूप भी ज्ञान्तियाँ होती हैं। मानसिक क्षेत्र में ज्ञान्ति-भावना उचित होकर मनुष्य की कल्पना और उसके विचारों को प्रभावित करती है। यही भावना कालान्तर में व्यावहारिक रूप ग्रहण कर महान् सक्रियता और प्रबल परिपक्वता में पूर्ण होती है।

नैतिक परिस्थिति बाह्य न होने पर भी कालान्तर से जीवन विचलन कल्पना में परिवर्तन आते रहते हैं। स्थिर प्रवृत्ति चारणाओं, मान्यताओं और परम्पराओं के बोधित्व की दृष्टि से भी कलक जाती है। इस कलक दूर दृष्टिकोण के कारण नये मूल्य उत्पन्न होते हैं। नये मूल्य जीवन की वह नयी दिशा मनुष्य को अभिमुख कर देती है। परंपरिक मान्यताओं और चारणाओं से इसका सामंजस्य न हो सकने के कारण तथा नयी मान्यता का परम्परा द्वारा विरोध होने के कारण मनुष्य का मूल्य विचलित हो सकता है। उसी वस्तुविक्रम काफ़ी उदय होता है। विपरीत स्थितियों के फलस्वरूप मनुष्य के  
१- पापु और मानवता-कलापति शास्त्री, प्रकाशक, १९७२

मन में विद्रोह की पृष्ठभूमि पर ज्ञान्ति उत्पन्न होती है। इसमें तनिक भी शंका नहीं कि ज्ञान्ति-भावना मानसिक होती है, क्योंकि तत्त्वबन्धी विचार मन में हो उपजाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'जीवन के मूल्य का ज्ञान करने वाले प्रचलित नैतिक वाक्यों का परिवर्तन और नये वाक्यों की हृदय में स्थापना से ही ज्ञान्तियाँ होती हैं'।<sup>१</sup>

गांधी ने ज्ञान्ति के उदय की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। उनके अनुसार त्रस्त, पददलित, प्रताड़ित मनुष्यों के हृदय को ज्ञान्तिकारी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके मानसिक क्षेत्र में ज्ञान्ति उत्पन्न की जाय। जीवन के नये मूल्यों और वाक्यों की कल्पना जाग्रत होने से ही मानसिक ज्ञान्ति की जा सकती है। इसके लिए उन्होंने मनुष्य के नैतिक मूल्यों को जानना आवश्यक माना है। नैतिक मूल्य उत्पन्न होने पर ही प्रचलित अन्याय और कनीति को अंतिक समझने का माग उत्पन्न होगा। अन्याय के विरोध में जन मानस को उद्वुद्ध करना आवश्यक है, क्योंकि अन्याय और कनीति सहना उचित नहीं। उनके अनुसार 'अन्याय करने वाले की पुनर्वसन अपेक्षा यह अधिक पापी और पतित है जो पुनराप अन्याय के सम्मुख सिर झुका देता है वन्ना अन्यायी की सहयोग प्रदान करता है। अन्याय के अस्तित्व का उत्तरदायित्व जितना वास्तवावी पर है, उससे अधिक उन पर है जो उसे सहन कर लेते हैं और जिना प्रतिरोध के उस चारा को बचाव प्रमादित होने देते हैं'।<sup>२</sup>

मानसिक ज्ञान्ति के लिए मनुष्य के चरित्र का विकास आवश्यक है। गांधी यही करना चाहते हैं। वे चरित्र विकास से मनुष्य को इतना ऊँचा वाक्यमय, त्यागमय और उत्कर्ष करने वाला बनाना चाहते हैं कि अपनी सहिष्णुता, सत्य की प्रवृत्ति, त्याग, ज्ञान्ति आदि के माध्यम से वह वास्तवावी के हृदय का परिवर्तन कर दे। इस प्रकार त्याग, उत्कर्ष और सत्य की भूमि पर खड़ा होकर गांधी ने अन्याय, अत्याचार और प्रसारणा का विरोध किया और अहिंसक ज्ञान्ति के माध्यम से नवी व्यवस्था की स्थापना की। कुछ ठीक गांधी की अहिंसक ज्ञान्ति को पुनार के अंतर्गत शासन रखना चाहिए, लेकिन ऐसा करना असुलभ दृष्टि से न्यायमूलक नहीं होना, क्योंकि गांधी का उद्देश्य पुनार नहीं था और न छोटे मोटे पुनारों के कारण उन्होंने कभी अन्यायी वन्ना अत्याचारी से समझौता ही किया। उनका उद्देश्य था— परिवर्तन। वास्तवावी के पुनक

१- वापु और मानवता- कलापति शास्त्री, पृ० २६२, खंड १६४५

२- वही, पृ० २६३

परिवर्तन के द्वारा जीवन-व्यवस्था, राज्य-व्यवस्था, वर्ग-व्यवस्था-- सब में उन्होंने परिवर्तन किया। इसलिए उनकी वहिंसक ज्ञान्ति को सुधार नहीं कहा जा सकता। उन्होंने ज्ञान्ति के क्षेत्र में नया प्रयोग किया। ज्ञान्ति के इतिहास में उनका यह प्रयोग अपनी सफलता के कारण अद्वितीय माना जायगा।

गांधी की ज्ञान्ति सत्याग्रह और असहयोग के रूप में प्रकट हुई है। उन्होंने इस वाक्य पर ज्ञान्ति कर ली, 'मृत और अश्वि संवेदनशील समाज-व्यवस्था की स्थापना की'। रचनात्मक कार्यक्रमाँ के माध्यम से उन्होंने नया समाज-व्यवस्था कायम की। गांधी ने सत्याग्रह और रचनात्मक कार्यक्रमाँ को साथ-साथ चलाया। इस प्रकार संघर्ष और विनाश के साथ संघटन और निर्माण की प्रक्रिया भी होने के कारण उनकी ज्ञान्ति मानना विशिष्ट हो गयी। किन्तु, संसार का अन्य किसी ज्ञान्ति में यह प्रक्रिया नहीं अपनायी गयी। वहाँ विनाश और तीव्र-कोड़ के उपरान्त निर्माण किया हुआ है। स्व की वैयक्तिक ज्ञान्ति फ्रांस तथा अमेरिका की ज्ञान्तियों में यही प्रक्रिया दिखाई पड़ती है। लेकिन, गांधी ने इस दृष्टि से ज्ञान्ति के क्षेत्र में अमिनव प्रयोग किया। उन्होंने वहिंसा के माध्यम से विचारों में परिवर्तन कर संघर्ष और निर्माण को साथ-साथ चलाया और उसमें वे पूर्णतः सफल हुए। हिंसक ज्ञान्ति अधिकार सत्ता और अधिकार अधिकारी साधन साधक रचनात्मक कार्य करती है। गांधी ने अधिकार प्राप्ति तक प्रतीक्षा नहीं की। रचनात्मक कार्यों के माध्यम से उन्होंने निर्माण की झुलझ पृष्ठभूमि ज्ञान्ति की पूर्णता के पहले ही स्थापित कर ली थी। इसीलिए उनकी वहिंसक ज्ञान्ति के उपरान्त अधिकार सत्ता प्राप्त होने पर व्यवस्था की नयी पिछा में प्रगति हो लगी।

गांधी की ज्ञान्ति का रास्ता ज्ञान्ति का है। वे हृदय-परिवर्तन पर विश्वास करते हैं। एक ओर वे ज्ञान्तिकारी के हृदय में नये और पुराने मूल्यों के संघर्ष का भाव वैयक्तिक पृष्ठभूमि पर उत्पन्न करते हैं, तो दूसरी ओर साधक वर्ग का हृदय अपने त्वाग, सहिष्णुता वादि से भर देना चाहते हैं। ज्ञान्ति के लिए हृदय की कुछ भावना बदलने की जरूरत होती है। ऐसी ज्ञान्ति की सफलता के बाद साधक सत्ता इस्तान्तरित कर देता है। अक्सर ज्ञान्ति में इस तरह के इस्तान्तरण का प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि वे अपनी उक्ति से सत्ता ले लेना चाहते हैं। मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन इस्तान्तरण हृदय का प्रयोग नहीं करते। वे 'कैम्बर्ज' और 'सीपुर' हृदयों का प्रयोग ऐसे कक्ष पर करते हैं। साधक के लोक विरोधों के बावजूद, साधक वर्ग सत्तारूढ़ वर्ग अधिकार में कर देता ही 'सीपुर' या 'कैम्बर्ज' है। वहाँ ज्ञान्ति की भाव साधक वर्ग सत्तारूढ़ है वहाँ



हस्तान्तरण की स्थिति नहीं वा समीची । वहाँ कठ प्रयोग से ही नया हस्तगत को जा सकता है । जो ज्ञान्ति धीरे-धीरे होगी, उसी में सत्ता का हस्तान्तरण होगा ।

किन्तु समाजवादी ज्ञान्तिकारों ऐसी ज्ञान्ति को ज्ञान्ति नहीं कहते । उनके अनुसार 'जुबार' की तरह किस्त किस्त करके ज्ञान्ति नहीं होती<sup>१</sup> । वे खासक पुरानी व्यवस्था को उलट कर स्कदम नयी व्यवस्था कायम कर देते हैं । उनके अनुसार जुबार से ज्ञान्ति नहीं हो सकती और न ही जुबार ज्ञान्ति है । सत्तस्त्र ज्ञान्तिवादी एक फटके में ज्ञान्ति करके कठ प्रयोग से पुरानी व्यवस्था मिटा देना चाहते हैं । यह फटका जैसा सफल ही होगा , ऐसा नहीं कहा जा सकता । स्थिर विश्व को अधिकतम सत्तस्त्र क्रान्तिय ज्ञान्तियां सफल ही हुई हों, ऐसी बात नहीं है । जब भी पुरानी व्यवस्था से ज्ञान्तिकारियों की सक्ति कम पड़ी है, वे हार गये हैं और उनकी ज्ञान्ति असफल हुई है । स्थिर फटका की पद्धति बहुत गुराणित और सही पद्धति ही, ऐसी बात नहीं है, किन्तु ज्ञान्तिपूर्वक ठोस आधार पर रचनात्मक कार्यों को पृष्ठभूमि पर होने वाली अधिक ज्ञान्ति असफल होनी, उस पर विश्वास नहीं होता, क्योंकि नांभी ने उसका व्यावहारिक रूप भारत की राष्ट्रीय ज्ञान्ति में प्रस्तुत किया और वह सफल भी हुई । ज्ञान्ति निश्चित है कि कठप्रयोग द्वारा होने वाली सत्तस्त्र ज्ञान्ति की जैसा अधिक ज्ञान्ति में सक्ति और सहिष्णुता की जैसा अधिक होती है, क्योंकि अधिक ज्ञान्तिकारी का वस्त्र सत्याग्रह और असहयोग है । वह मन के कठ में पिछता है । जैक प्रकार से पीड़ित और प्रताड़ित होता है, किन्तु उसके होठों पर बाह नहीं जाती । वह अन्य तक मन को फेले हुए अन्याय का विरोध करता है । स्थिर उसमें तारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के कठ की अधिक जैसा होती है ।

जुबार ज्ञान्ति नहीं है, किन्तु महात्मा नांभी की अधिक ज्ञान्ति जुबार नहीं है । वह ज्ञान्ति है । सत्याग्रह और असहयोग उसकी प्रक्रियाएँ हैं, जिनके माध्यम से वे अपने उद्देश्य तक पहुँचे । उन्होंने जुबार के कारण अन्याय से कभी समझौता नहीं किया । स्थिर अधिक ज्ञान्ति को जुबार के अन्तर्गत नहीं रखा जाना चाहिए । परन्तु अन्यायों में राजनीतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत महात्मा नांभी की अधिक ज्ञान्ति का स्वयं प्रस्तुत किया गया है, जिनके आधार पर उनके ज्ञान्ति-विषयक प्रयोग और उनकी

सफलता का विश्लेषण किया है जा सकेगा । उस विश्लेषण से यह निष्कर्ष उठा  
वसंत अथवा कठिन नहीं होगा कि विश्वज्ञान्ति के इतिहास में महात्मा गांधी ने एक  
अभिनव और सफल प्रयोग किया है ।

सहस्र ज्ञान्ति की सफलता की सम्भावनाओं पर कनायास ही लोगों का  
ध्यान कहा जाता है और यह मानते हैं कि ज्ञान्ति में कुछ प्रयोग अपेक्षित है, किन्तु  
अहिंसक ज्ञान्ति ने विचारकों और मनस्वियों के समक्ष यह उदाहरण प्रस्तुत किया कि  
पुरानी सत्ता के स्थान पर नयी सत्ता की स्थापना में न केवल हस्त्र बल्कि सत्याग्रह भी  
सफल हो सकता है । हम यह मान कर ज्ञान्ति को विचारधारा का विश्लेषण करेंगे  
कि अहिंसक ज्ञान्ति सफल और सच्ची ज्ञान्ति है ।

### प्रतिक्रान्ति

प्रतिक्रान्ति ज्ञान्ति के विपरीत अर्थ में व्यवहृत शब्द है। सामान्यतः प्रतिक्रान्ति ज्ञान्ति के विरोध में उत्पन्न ज्ञान्ति है। इसी यह अनुमान होता है कि प्रतिक्रान्ति पुरातन व्यवस्था के प्रति व्यामोह है। इस सम्बन्ध में छास्की ने अपनी पुस्तक "रिक्ते-क्लन्स वान द रिक्ते-क्लन्स बाफ बायर टास्म" में लिखा है कि प्रतिक्रान्तिकारी इस तथ्य से कम अवगत नहीं हैं कि अधिजात्य वर्ग के पुनर्वन्ध की सम्भावना नहीं है। प्रतिक्रान्ति अनुसार भावना का नाम नहीं है। प्रतिक्रान्ति करने वाले पुरातन प्रेमी स्वछिन्न नहीं होते कि वह पुराना है, बल्कि वे आधुनिक विज्ञान की सभी विधियों और सम्पादित संस्थाओं का अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए उपयोग करते हैं। प्रतिक्रान्ति का उद्देश्य किसी वर्ग के लाभ के लिए अपने क्षेत्र की सीमाओं का विस्तार करना नहीं होता। प्रतिक्रान्ति राज्य की स्थापना के पूर्व के अधिकारियों तक ही सुविधाओं को सीमित रखना चाहती है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मार्ग के अवरोधों को बचाने की वाध्यता है।

प्रतिक्रान्ति गणतंत्र विरोधी होती है। गणतंत्र के अन्तर्गत उपलब्ध सुख - सुविधाओं को सर्वजन सुलभ बनाया जाता है। गणतंत्र ज्ञान्ति चाहता है, क्योंकि समानता और न्याय के आधार पर वह सारे काम करता है। उसके सारे कार्य सैवधानिक और विवेकपूर्ण होते हैं। इसीलिए समानता के सम्बन्ध में स्वतन्त्रता उसका उद्देश्य है, किन्तु प्रतिक्रान्ति दुष्टबुद्धि होती है। विधान और विवेक का पालन उसके अन्तर्गत नहीं होता।

असह्य प्रतिक्रान्ति के सिद्धान्त के सामने नहीं मुक्ता। हर युग में ऐसे मनुष्य हुए हैं, जिन्होंने प्रतिक्रान्ति के सामने मुक्तों के पहले अपने को सत्प कर दिया है। जब ऐतिहासिक परिस्थितियाँ जनता को अपने अधिकार में कर लेती हैं, तब प्रतिक्रान्ति जाती है। जब बाह्यर दृष्टि, उनकी असफलता की अनुपति बहुत बढ़ती होने और परम्परागत राजनीतिक संस्थाओं के प्रति बाधर की भावना संयुक्त रूप से होने पर प्रतिक्रान्ति पैदा होती है।

जहाँ ज्ञान्ति के वाक्य है कि नये परिवर्तन के वास्तविक प्रतिक्रियात्मक कारियाँ पैदा रह जाती हैं, वहाँ प्रतिक्रान्ति की सम्भावना होती है। प्रतिक्रियात्मक



शक्तियाँ ज्ञान्ति का प्रभाव तथा उसके फलस्वरूप स्थापित नयी व्यवस्था का प्रभाव कम होते ही सिर उठाने लगती हैं। यथावसर ये ज्ञान्ति द्वारा स्थापित व्यवस्था के विरोध में प्रतिक्रान्ति करती हैं तथा पुनः ज्ञान्ति के पूर्व स्थापित व्यवस्था की तरफ कोई व्यवस्था कायम करती हैं। यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिक्रान्ति के द्वारा मात्र परम्परा की ही स्थापना हो। इसलिए प्रतिक्रान्ति के फलस्वरूप पूर्व व्यवस्था वैसी ही कोई अन्य व्यवस्था कायम हो सकती है।

ज्ञान्ति मानवतावादी तथा जनतांत्रिक चेतना तथा क्रिया है। प्रतिक्रान्ति में सम्पूर्ण मानवता के हित का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। एक वर्ग-वैशेष का हित ही प्रतिक्रान्ति का मूल उद्देश्य होता है। इसलिए प्रतिक्रान्ति जनतांत्रिक लोक-शासन में विश्वास नहीं करती।

प्रतिक्रान्ति की एक हद तक प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति कहा जा सकता है, क्योंकि प्रतिक्रान्ति के द्वारा जो व्यवस्था स्थापित होती है, उसमें सर्वजन मंगल का उद्देश्य नहीं होता। सम्पूर्ण मानवता की सुख-सुविधा की बीर रुचि न होने के कारण उस चेतना का प्रतिक्रियावाद से निकट सम्पर्क स्वाभाविक है।

विनीता माये तथा महात्मागांधी ने अहिंसक ज्ञान्ति पर जो दिया तथा उसके माध्यम से समाज, वर्ग तथा राज-व्यवस्था में उन्होंने परिवर्तन किये हैं। अहिंसा के समर्थक ये ज्ञान्तिवादी मानते हैं कि जब ज्ञान्ति को वह नयी प्रणाली अपनायी जानी चाहिए, जिसके फलस्वरूप ज्ञान्ति द्वारा हुए परिवर्तन स्थायी हों। तात्पर्य कि प्रतिक्रान्ति की सम्पादनाओं को ये अहिंसक ज्ञान्तिवादी उत्पन्न कर देना चाहते हैं। उनके लिए ये अहिंसक ज्ञान्ति का समाधान प्रस्तुत करते हैं, जो तत्काल पर नहीं, त्याग पर, कठ पर नहीं, वात्सल्य पर अधिक जोर देती है। उनका कहना है कि उत्पन्न द्वारा की जाने वाली ज्ञान्ति की प्रतिक्रिया प्रतिक्रान्ति में अवश्य घनी। इसलिए ये विचारक अहिंसक ज्ञान्ति के माध्यम से स्थायी परिवर्तन कर प्रतिक्रान्ति की सम्पादनाओं को समाप्त कर देना चाहते हैं।

### स्थापनाएं

ज्ञान्ति प्रयोग की एक दिशा है। वर्तमान व्यवस्था, जो मानव का कल्याण नहीं कर सकती, के स्थान पर मनुष्य के सुख के लिए नयी व्यवस्था की स्थापना अपने-बाप में एक प्रयोग है। पुरानी व्यवस्था के बड़, कुंठित, वन्यायपूर्ण हो जाने के कारण मनुष्य दुखी है, ऐसा मानकर अधिक सुख, सुविधा तथा कल्याण के लिए नयी व्यवस्था की स्थापना ज्ञान्ति के माध्यम से की जाती है, किन्तु नयी व्यवस्था, मनुष्य के अनागत पुष्ट की सम्भावनाओं की जानकारी किसी की नहीं होती। कल्याण की वांछा ही नवीन की स्थापना की, उसके प्रयोग की प्रेरणा देती है। कभी क्रांतिकारियों की वांछा पर ध्यान फिर जाता है। उन्हें उतना सुख, उतनी सुविधा नहीं मिल पाती, कितनी पाने की वांछा उन्हें थी। ऐसी कक्षा में नयी व्यवस्था की स्थापना के लिए ज्ञान्ति करने का प्रयत्न प्रयोग मूलक ही कही जायें। स्प, अमेरिका, चीन, भारत जैसे ज्ञान्ति के उपरान्त नयी व्यवस्था का प्रयोग आरम्भ हुआ है।

ज्ञान्ति और ज्ञान्ति के प्रयोग की वास्तविक दुन का महत्वपूर्ण अर्थान माना जायगा, क्योंकि मध्ययुग में ऐसे प्रयोग नहीं हुए। वस्तुतः मध्ययुगीन प्रवृत्ति में ज्ञान्ति, परिवर्तन वादि का स्थान नहीं था, क्योंकि नवीनता के प्रति उनमें वाग्रह नहीं किसी। इस युग में यह कक्षा थी रही कि नवीन वर्तमान व्यवस्था से उत्पन्न नहीं हो सकती है। इस कारण परिवर्तन के प्रति रुकान इस काल में प्रकट नहीं हुआ। परिवर्तन या ज्ञान्ति के प्रति यह उदासीनता प्रयोग के प्रति उदासीनता है। यों वैचारिक या धार्मिक क्रांतिकार मध्ययुग या उसके पहले हुई हैं, किन्तु इसके यह नहीं कहा जा सकता कि मध्ययुग की प्रवृत्ति में प्रयोग का नाश है। यह नाश १८ वीं सताब्दी की उपज है। इसके नाश ही विलंब में लोक राज्याज्ञान्तिर्या हुई और उनके माध्यम से हासन व्यवस्था या समाज-व्यवस्था की नया व्यावहारिक रूप मिला।

मानव-रीन विज्ञान हास्य के अनुसार ज्ञान्ति एक चर है, जिसके उत्पन्न पक्षाने हुए हैं। यह एक संकट का काल है। नवीनविज्ञान की दृष्टि से ज्ञान्ति सार्वजनिक जीवन, धार्मिक मान्यता, अद्विष्टता, धर्मों का पक्ष और वैयक्तिक-समाजीक प्रकट करती है

राजनीतिक हत्याकाण्डों में ज्ञान्ति बाधाओं का एक समूह है। बाधाओं के फलस्वरूप ज्ञाननसत्ता दक्षिणपंथी से बाधपंथी, बड़े पक्ष से छोटे पक्ष, जो अधिक जाग्रही है, के हाथ में चली जाती है<sup>१</sup>।

प्रत्येक युग की कुछ आवश्यकताएँ, बाधाएँ तथा कल्पनाएँ होती हैं। ये कल्पनाएँ ये हत्याएँ वर्तमान व्यवस्था में जब पूर्ण नहीं होतीं, तब उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया होती है। मनुष्य अपनी कल्पनाओं की पूर्ति के लिए बने प्रयत्न करता है, किन्तु शासक वर्ग वर्तमान में जीता है। उसके मविष्य के सुनहले सपने प्रिय नहीं होते। इसलिए वह सपनों का विरोध करता है। इस विरोध की प्रतिक्रिया ज्ञान्ति के माध्यम से प्रकट होती है। पतित, पीड़ित तथा दमित जाति के उद्धार, विकास तथा प्राप्ति का मार्ग ज्ञान्ति है। इस माध्यम से ही यह वर्ग उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है।

संत ब्रह्म ने कहा,— प्रत्येक मनुष्य की प्रसन्नता किसी दूसरे स्तर में नहीं, बल्कि यहीं और अभी इसी धरती पर प्राप्य है। यदि सामान्य जनता की प्रसन्नता के मार्ग में प्राचीन वादों, विश्वास और संस्कारों बाधक होंगी तो उन्हें दूर करना ही होगा<sup>२</sup>। प्रकट है कि ज्ञान्ति का मूल उद्देश्य मानवता का कल्याण है। वर्तमान युग मानवतावादी है। संसार के सभी कार्यों में मानव-हित का ध्यान रखा जाता है। ज्ञान्ति का मूल उद्देश्य भी मनुष्य ही है। जहाँ मनुष्य पीड़ित है, स हीनचित है, दमित है, जहाँ मानवता के हित के लिए ज्ञान्ति फुटती है। नवी व्यवस्था, जिसमें मनुष्य के युग की असंख्य कल्पनाएँ और बाधाएँ होती हैं, को स्थापना ज्ञान्ति का ध्येय है।

ज्ञान्ति मनुष्य की प्रकृति है। वह एक साव स्थिति में बहुत दिनों तक नहीं जी सकता। जनत और जीवन परिवर्तनशील है। इसलिए जनत और जीवन से सम्बद्ध मनुष्य भी परिवर्तन में रुचि लेता है।

कौन सी व्यवस्था, चाहे वह कितनी भी अच्छी हो, अपने युगों को स्थायित्व नहीं दे पाती। काळक्रम से अच्छी से अच्छी व्यवस्था भी बहुत दूर हो-भूषण हो जाती है। व्यवस्था के सुधार व्यक्तिगत स्वार्थ, रुचि तथा अधिकार-मोह के कारण भ्रष्टाचारों

१- ए डिफिड वाक रिपोर्ट्स- डेन प्रिंटन, पृष्ठ २, पृष्ठ ११३४

२- ए वाक्योपीडिया वाक सोलर सार्वभौम, पृष्ठ १, पृष्ठ १२५ एवं अतिरिक्त

और सुतों को जब अपने तक सीमित करने लगते हैं, सामान्य जनता के अधिकार और कुछ कम होने लगते हैं। बोरे-बोरे रुढ़ियों की व्यवस्थाओं में व्यापती हैं, उसे बहुत तथा निष्प्राण करने लगती हैं। ऐसी व्यवस्था में सामान्य जनता के मन में नवीन व्यवस्था की कल्पना स्वाभाविक रूप से जाती है। ज्यों-ज्यों सुत-सुविधाओं के लिए जनता की ओर से मांग होती है, व्यवस्था के कर्णधार मांग का विरोध करते हैं। वे जनता के अधिकारों को सत्प कर स्वयं सब कुछ को रखना चाहते हैं और सारे सुतों को अपने तक सीमित रखने की दिशा में जाने बढ़ते जाते हैं। इसी स्थिति में जन और तेज होने लगता है। जन की तीव्रता कुछ काठ के लिए विरोध को फेंक देना दे, क्रान्ति के विस्फोट को वह सदा के लिए नहीं देना पाती, क्योंकि जन से क्रान्ति की संभालना तथा संभलना अधिक निष्कट तथा तीव्र हो जाती है। इस प्रकार क्रान्ति जीवन की अनिवार्यता है, मनुष्य तथा उसके द्वारा निर्मित संस्थाओं के सम्बन्ध की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

स्पष्ट है कि क्रान्ति के माध्यम से वर्तमान के स्थान पर नवीन की स्थापना के द्वारा परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन में एक ओर पुरातन के विनाश का व्यापक भाव रहता है, तो दूसरी ओर नवीन के निर्माण की योजना के तथा संरक्षण की निश्चित होता है। नये की स्थापना के बिना क्रान्ति खूरी है। पुरातन के विनाश की भावना उसके प्रति बाधोक्त के कारण उत्पन्न होती है, जो उस स्थिति में स्वाभाविक है। किन्तु पुरातन के विनाश का दूसरा पक्ष नवीन का निर्माण है। यदि नवीन का निर्माण न किया जाय तो क्रान्ति का उद्देश्य ही खूरा रह जायगा। ऐसी क्रान्ति विध्वंसात्मक होगी, जो कांठ में विश्वास करती है, कांठ में नहीं। हर क्रान्ति का उद्देश्य मानव-हित होता है, क्योंकि क्रान्ति की मूल प्रेरणा मानवीय छेदना है। क्रान्ति का प्रवर्तन विनाश के लिए नहीं, निर्माण के लिए होता है। पुरानी व्यवस्था क्रान्ति के द्वारा खूबि नहीं भिटाई जाती कि महत्व म्याम की व्यवस्था जनता को त्रिप्त है और जब किसी व्यवस्था की संरक्षा नहीं है, बल्कि खूबि की जाती है कि सामान्य जनता के अधिक कुछ, अधिक दुखिता के लिए नवी व्यवस्था की भाव। इसी दृष्टि से क्रान्ति का परिवर्तन घटित होता है।

क्रान्ति की मूल दृष्टि मानवीय होती है। क्रान्ति का उद्देश्य ही मानव-कल्याण है। मानव-कल्याण क्रान्ति का निमित्त है। यदि वह उद्देश्य की पूर्ति न की तो क्रान्ति निष्कट ही जायगी। लक्ष्यप्राप्त न होने के कारण ही क्रान्ति-मय मानवता नये संघर्षों के मार्ग में फिर जाती है, क्रान्ति दुखी है। मनुष्य को कुछ, अधिकार

तथा उसकी जाकांदाओं को पूर्ति के लिए नवीन व्यवस्था पुरानी व्यवस्था के सङ्घर्ष पर लड़ी की जाती है ।

ज्ञान्ति का प्रारम्भिक उद्गम मन में होता है । मन में ज्ञान्ति के बीच सबसे पहले उगते हैं । मन को वर्तमान रुढ़िवादिता, अन्याय, अत्याचार, अपमान के प्रति प्रतिक्रियात्मक हो उठता है । जब तक मन में परिवर्तन का भाव पैदा नहीं होगा, ज्ञान्ति नहीं होगी । सामान्य जनता बहुत दिनों तक अत्याचार, अन्याय सहती रहती है । जब तक उनमें वर्तमान के प्रति असंतोष का भाव नहीं जगता तब तक उसके प्रति विरोध भाव भी नहीं जाता । इसलिए ज्ञान्ति को असंतोष और तत्पश्चात् विरोध भाव की क्रिया प्रतिक्रिया कहा जा सकता है । असंतोष और विरोध के अभाव में जोक जातियाँ अपमान, अन्याय और विरोध रह सकती रही हैं । असंतोष और विरोध यावत्त है, इसलिए मानसिक है । मन ही अस्तुष्ट तथा विरोधी होता है । कहा जा सकता है कि ज्ञान्ति वैचारिक पैदा है, क्योंकि मन की स्थिति का उद्बोध विचारों से होता है । मनुष्य अपने विचारों को व्यक्त करना चाहता है । वह उसकी ज़रूरी है । इस कारण वह अपने असंतोष तथा विरोध जोक विचारों को वाच्यता के साथ प्रकट कर देता है । बाहिर है कि मानसिक ज्ञान्ति कालक्रम से वैचारिक ज्ञान्ति में परिवर्तित हो जाती है ।

वैचारिक ज्ञान्ति को दूसरी दृष्टि से भी देखा जा सकता है । कभी-कभी रुढ़ियों, अन्धविश्वासों और परम्पराओं से विचार की प्रक्रिया झुंठिल हो जाती है । झुंठिल विचारधारा से मनुष्य भ्रमहीन हो जाता है । इस कारण समाज में विभिन्न प्रकार के दोष उत्पन्न हैं, जिनके कारण जनता इस बात को सोचने के लिए बाध्य हो जाता है कि परम्परा अनिवार्य है । दुवार की प्रेरणा भी भर जाती है । ऐसी परिस्थिति में ज्ञान्ति और दुवार को पर्दा नहीं होती और अत्याचार, अन्याय और अपमान सहन करने की सामता मनुष्य में स्वाभाविक रूप से आ जाती है । यह स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब समाज में वैचारिक ज्ञान्ति हो । विचारों में परिवर्तन की मायना जाने पर और उच्च सक्रिय ज्ञान्ति में प्रतिक्रिया होने पर ही जन, उत्पीड़न, अमानना समाप्त होती है । इस दृष्टि से भी यह स्पष्ट है कि ज्ञान्ति का उद्गम मानसिक मन है । मन ही वैचारिक स्थिति में जब तक परिवर्तन नहीं होता, ज्ञान्ति-मायना का जन्म नहीं हो पाता । इसलिए ज्ञान्ति के लिए मानसिक स्थिति में परिवर्तन आवश्यक है ।

ज्ञान्ति का मूल उद्देश्य जनता का अन्धत्व है । इस कारण ज्ञान्ति के



निर्माणात्मक पहलू के अन्तर्गत ऐसे कार्यों की पूर्ति आवश्यक है, जिनसे जनता का हित हो। क्रान्ति जनता के लिए होती है। इस कारण यह आवश्यक है कि जनता के अधिकाधिक कल्याण की दृष्टि से ही शासन-व्यवस्था में भी परिवर्तन किया जाय। परिवर्तन इस प्रकार का हो कि जनता स्वयं शासन करे और अपने लिए शासन करे। इस दृष्टि से जहाँ भी शासन-व्यवस्था में क्रान्ति द्वारा परिवर्तन होता है, जनतांत्रिक शासन स्थापित होता है। जहाँ सैनिकों की क्रान्ति होती है, वहाँ सैनिक शासन छाड़ हो सकता है, किन्तु जहाँ जनता के द्वारा क्रान्ति होती है, वहाँ जनतंत्र में ही जनता का कल्याण होने से जनतंत्र ही स्थापित किया जाता है। अधिनायकवाद भी सैनिक क्रान्ति के बाद जाता है।

क्रान्ति देश-काल सापेक्ष है। सम्पूर्ण विश्व में एक ही साथ क्रान्ति होना सम्भव नहीं है। साथ ही यह भी निश्चित है कि सदा-सर्वदा की क्रान्ति की स्थिति केही नहीं जा सकती। मनुष्य की विविध मायनाओं का विकास क्रान्तिकाल में होता है। क्रान्ति का ध्वंसात्मक पक्ष अक्रान्ति और संक्रमण का काल है, जिसमें मूल्य एवं मान अनिश्चित होते हैं। अनिश्चय की इस स्थिति में मानवता फूट फूट नहीं सकती। इसलिए ध्वंस की संक्रान्ति के बाद निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है कि अधिक कुछ, अधिक सुविधाओं के द्वारा मानवता की विविध पैतृताओं का सम्यक् विकास हो। मानवता देश की सीमाओं में बँधी होती है।

इस दृष्टि से क्रान्ति-मायना को मूलतः राष्ट्रीय मायना कही जा सकती है। सामाजिक, राजनीतिक, वार्षिक एवं वार्षिक की भी क्रान्ति हो, राष्ट्रीय स्तर पर प्रारम्भ होती है। उसका उद्भव ही जातीय तथा राष्ट्रीय मायना के कारण होता है। राष्ट्र तथा राष्ट्र के निवासियों के हित को ध्यान में रखकर ही वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न होती है। इसका पर्यवसान अन्य प्रकार की क्रान्तियों में होता है किन्तु सामाजिक परिधि, वार्षिक मायनाओं, पैतृक परिस्थितियों आदि का प्रभाव क्रान्ति तथा राष्ट्रीय क्रान्ति पर पड़ता है। इसलिए क्रान्ति मूल रूप में सार्वदेशिक पैतृता नहीं कही जा सकती। विशेषतः राजनीतिक, राष्ट्रीय और सामाजिक क्रान्तियों एक देश तथा जाति से सम्बन्धित होती हैं।

प्रश्न हो सकता है कि इसका क्या कारण है। कारण यह है कि एक जाति अपना देश की सीमा में कबो-धिरी मानवता की समस्याएँ ही एक प्रकार की हो सकती हैं। इसलिए उनमें पुरानी व्यवस्था के परिवर्तन की मावना जाती है। समस्याएँ निराकरण माँगती हैं। एक जाति जिसे समस्या कहती है, दूसरी उसे सामान्य स्थिति मान सकती है और सामान्य स्थिति में उसमें असंतोष तथा उसके विरोध का भाव नहीं उत्पन्न होता। इसलिए संस्कार, परम्परा तथा समस्याएँ एक होने के कारण क्रान्ति की मावना एक ही जाति, वर्ग अपना देश में उदित होती है। सम्भव है, परवर्तीकाल में समस्याएँ एक होने से एक जाति तथा देश की क्रान्ति की प्रेरणा से दूसरी जाति तथा दूसरे देश में भी क्रान्ति हो जाय लेकिन एक ही काल में ऐसा हुआ, यह सही नहीं है। कोई भी क्रान्ति प्रेरणाग्रस्त हो सकती है। इसलिए उसकी प्रेरणा से दूसरे काल में दूसरे देश तथा जाति में क्रान्ति का उद्भव अति स्वाभाविक है। फ्रांसीसी क्रान्ति ने कनेक देशों में राज्यक्रान्ति की प्रेरणा दी। बौधोगिक क्रान्ति ने सामन्ती प्रथा मिटाकर पूँजीवाद की स्थापना की। इस की क्रान्ति ने जारशाही के स्थान पर साम्यवादी पृष्ठभूमि पर मण्डुरों का अधिनायकवाद स्थापित किया है। ये सभी क्रान्तियाँ राष्ट्रीय सीमा के अन्तर्गत एक विशेष राष्ट्र की मानवता के विकास के लिए की गयीं हैं जहाँ वैयक्तिक शासन के माध्यम से राजशक्ति बढ़ती है, उसमें स्वदेशीयता का वाधान होता है। इस कारण क्रान्ति में राष्ट्रीय चेतना का महत्वपूर्ण स्थान है।

हराल्ड डे० छास्की ने मय को क्रान्ति की जन्मी मानकर क्रान्ति का विश्लेषण किया है। मयसीत मनुष्य की तर्क शक्ति सत्य हो जाती है। जब जनता झूर, अधिक जनकारी हो जाता है। उसमें यह मय वा जाता है कि यदि क्रान्तिकारियों को कड़ने किया गया तो उसके अधिकार सत्य ह ह हो जायेंगे। इसलिए वह तर्कहीन तथा अ बविवेकी होकर झुठार डंन से कम करता है। किन्तु यह कम क्रान्ति को रोक नहीं पाता। कम ज्यों-ज्यों बढ़ता है, क्रान्ति भी अधिक तीव्र होती जाती है। यदि शासन में अपने झुठों, अधिकारों या राज्य ह के सत्य हो जाने का मय न जो तो क्रान्ति की स्थिति ही उत्पन्न नहीं होगी, क्योंकि ऐसी दशा में जनता द्वारा माँगे की अधिकतर



उसे मिल जाते हैं, क्योंकि कुछ ऐसे सुधार होते हैं कि ज्ञान्ति का प्रश्न पैदा नहीं होता, क्योंकि ज्ञान्तिमूलक विरोध भावना ही समाप्त हो जाती है। इस दृष्टि से ज्ञान्ति की भावना शासकवर्ग में उत्पन्न मय के कारण पैदा होती है।

ज्ञान्ति का अग्रदूत मध्यवर्ग होता है। यों मध्यवर्ग की कुछ सीमायें होती हैं। यह वर्ग परम्पराओं में विश्वास करता है। इसलिए नवीनता का वाग्रह उसमें नहीं रहता। नवीनता से वह डरता है। पूर्वजों के वाद्यों उसे माते हैं और उन्हीं वाद्यों के झुनहले जाल में वह उलझा रहता है। जब भी उन वाद्यों पर कुठाराघात होता है, मध्यवर्ग विद्रोह कर देता है।

मध्यवर्ग यह महसूस करता है कि व्यवस्था में कुछ दोष है, जिसे दूर करना चाहिए, लेकिन वाग्य पर अधिक विश्वास करने के कारण वह विषम स्थितियों से सम्पर्कता कर लेता है। जिस तरह की व्यवस्था उनकी कल्पना में है, उसे स्थापित करने का साहस मध्यवर्ग में नहीं है। वह सुधारों से प्रसन्न होता है, किन्तु जन निर्दुःख शासक के द्वारा सुधार नहीं किये जाते, क्योंकि सुधारों से सामाजिक व्यवस्था नहीं सुधरती, मध्यवर्ग सहस्र ज्ञान्ति के लिए भी प्रस्तुत होता है। इस तथा चीन को होड़कर जैन ज्ञान्तियों के अगुवा मध्यवर्गीय व्यक्ति रहे हैं। उन्होंने व्यवस्था के दोषों का विश्लेषण किया और परिस्थिति के अनुसार जन-जीवन को तैयार कर पुरानी जर्जर व्यवस्था को तोड़ दिया और उसकी जगह नयी व्यवस्था कायम की। स्त्री ज्ञान्ति में भी मध्यवर्ग का कितना हाथ रहा है, यह लौच और गवेषणा का विषय हो सकता है। उच्चवर्ग अपने अधिवात्य को कायम रखना चाहता है। उसके हाथ में ही वास्तविक सत्ता होती है। उसे सारी सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं। स्त्री दशा में उसके विद्रोह करने का स्वातंत्र्य ही पैदा नहीं होता। मजदूर वर्ग न तो बौद्धिक होता है न उसे ज्ञान्ति संबंधी सक्रियता के लिए फुर्लत ही होती है। वह अपनी वैयक्तिक समस्याओं में खूना उलझा रहता है कि उससे यह वादा करना कि वह ज्ञान्ति का अग्रदूत बनेगा, इराफ़ा पैदा करता है। जैसे निम्नवर्ग अब इतना बौद्धिक, संवेत, चाग्रत, कर्म-केतना से अभिज्ञ हो उठा है कि वह मान्यता किसी भी पाण संज्ञित हो सकती है।

जहाँ तक भारत की राष्ट्रीय ज्ञान्ति का प्रश्न है, यह स्पष्ट ही उचित होता है कि मध्यवर्ग की ज्ञान्ति का प्रणेता होता है। इस वर्ग के सदस्यों से ही भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रियता, तीव्रता तथा शक्ति आई। इसका तात्पर्य यह नहीं कि निम्नवर्ग का अपने स्वयं के सदस्यों में ही या, किन्तु मध्यवर्ग के विद्रोह में ही

निम्नवर्ग ने क्रान्ति के आन्दोलनात्मक कार्यक्रमों को गति दी । भारतीय उच्चवर्ग, विशेष राजाओं, सामंतों तथा बड़े पूँजीपतियों की गणना की जायगी, क्रान्ति से डरता रहा । सभी साधनों से सम्पन्न इस वर्ग के सामने कोई समस्या नहीं थी । इसलिए अस्तौन की स्थिति भी उनके जीवन में नहीं आयी । फ्रांसीसी क्रान्ति की तरह भारतीय राष्ट्रीय क्रान्ति के उपरान्त मध्यवर्ग का शासन स्थापित हुआ । कहा जा सकता है कि कबो भारत में निम्नवर्ग अथवा मजदूर-किसान-वर्ग का शासन नहीं है । इसी प्रकार पूँजीपति वर्ग का प्रभाव प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से शासन तथा अन्य व्यवस्थाओं पर हो सकता है, किन्तु सामन्तों और पूँजीपतियों की शासन-व्यवस्था में निर्णायक भूमिका नहीं है ।

क्रान्ति का उद्देश्य सार्वजनिक हित होने के कारण सम्पत्ति और उसके साधनों पर जनता का अधिकार होना चाहिए, किन्तु ऐसा हो नहीं पाता । साम्यवादी देशों के अतिरिक्त जनता सम्पत्ति की अधिकारिणी नहीं हो पाती । तब भी इतना निश्चित है कि क्रान्ति जन-जीवन के वार्षिक ढाँचे में महत्वपूर्ण परिवर्तन उपस्थित करती है । इसके फलस्वरूप जनता की वार्षिक दशा सुधर जाती है । जिन देशों में पूँजीवाद क्रान्ति के द्वारा नहीं मिटाया गया, वहाँ वही तरह की स्थिति पैदा हो जाती है । ऐसे देशों में वार्षिक ढाँचे में परिवर्तन के लिए वार्षिक क्रान्ति की ज़रूरत होती है और कालक्रमेण उसकी संघटना से जन-जीवन में व्याप्त असमानता दूर हो जायगी ।

भारत में वार्षिक क्रान्ति का सफ़ल प्रयोग महात्मा गांधी के निर्देश में हुआ है । सहिष्णुता, त्याग, बलिदान की शक्ति से उन्होंने भारत से विदेशी शासन-यंत्र को उन्मूलित किया । विदेशी शासन से मुक्ति पाने के बाद स्वतन्त्रभारत के निवासियों ने जनतांत्रिक विधि से शासन-यंत्र संचालित किया है । महात्मा गांधी ने यह वार्षिक क्रान्ति सत्याग्रह और अहिंसा के माध्यम से किया । यही विदेशी शासन के विरोध और प्रतिरोध का वापार था । उन्होंने हुंवार की कामना नहीं की और न ही उसके होने की सम्भावना से विदेशी शासन-व्यवस्था से समर्पित हो किया । इस प्रकार की क्रान्ति विश्व के इतिहास में नवीन है । राज्य-परिवर्तन के लिए अब तक सशस्त्र और रूसी क्रान्तियाँ ही हुई हैं । महात्मा गांधी ने क्रान्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन उपस्थित किया । उन्होंने वार्षिक क्रान्ति का प्रयोग किया और उसे सफ़ल बनाया । इसलिए सशस्त्र क्रान्ति ही सच्ची क्रान्ति है, ऐसा कहना उचित नहीं है ।

महात्मा गांधी के शिष्य विनीता भावे ने वार्षिक क्रान्ति की दशा में हुंवार यह नामक वार्षिक क्रान्ति का प्रवर्तन किया है । विनीता सशस्त्र क्रान्ति की

ज्ञान्ति नहीं मानते । उनके अनुसार विचारों में ज्ञान्ति करने से ही ज्ञान्ति स्थायी होगी । बहुत हद तक यह मान्यता उचित लगती है, क्योंकि तलवार की शक्ति से वहाँ ज्ञान्ति होगी, वहाँ प्रतिज्ञान्ति की सम्भावना भी रहेगी । ज्ञान्तिकारी वल की शक्ति क्षीण पड़े ही विरोधी शक्ति सत्ता अपने हाथ में कर लेती है । इस दृष्टि से ज्ञान्ति का एकमात्र रास्ता अहिंसक ज्ञान्ति ही उठरती है । किन्तु इस तरह ज्ञान्ति के विस्तृत अर्थ-विन्यास को संकोच दे देना अच्छा नहीं होगा । सशस्त्र और अहिंसक दोनों प्रकार की ज्ञान्तियाँ युगबोध की दृष्टि से उचित और महत्वपूर्ण हो सकती हैं । परिवर्तन ही ज्ञान्ति है । वर्तमान व्यवस्था में हुए प्रत्येक परिवर्तन को ज्ञान्ति की संज्ञा दी जा सकती है । इस परिवर्तन के लिए अस्त्र और बान्धोलन दोनों साधन अपनाये जा सकते हैं ।

### निष्कर्ष

क्रान्ति पुरातन के स्थान पर नवीन को स्थापित करने की स्वाभाविक चेताना है। मनुष्य स्वरस जिन्दगी जीने का वादी नहीं है। वह परिवर्तन चाहता है। जब वर्तमान जीवन में बड़ता, झुंठा तथा बीर्णता के कारण मनुष्य के मुख झुक जाते हैं, वह नयी जिन्दगी चाहता है। इसके लिए उसे क्रान्ति करनी होती है। सशस्त्र कच्चा बन्ध प्रकार की क्रिमेजों क्रान्तियों के सहारे नया जीवन उत्पन्न किया जाता है। मनुष्य नवीनता का बाग्रही है। नवीनता का बाग्रह ही उसे क्रान्ति की ओर ठे जाता है, क्योंकि क्रान्ति में नया जीवन बोया जाता है।

क्रान्ति राष्ट्रीय पुच्छभूमि पर होती है। एक राष्ट्र या जाति की समस्याएँ ही क्रान्ति की प्रेरणा देती हैं। समस्याएँ सार्वभौमिक होने पर भी एक साथ सभी देशों में क्रान्ति होना सम्भव नहीं है। अपने राष्ट्र तथा उसमें कल्ले वाले जन के प्रति प्रेमाव के कारण उनकी समस्याओं के निदान के लिए क्रान्ति होती है। राष्ट्रीय क्रान्ति का ही मूलाधार ही राष्ट्रीय मानना है, किन्तु अन्य क्रान्तियों के मूल में भी राष्ट्रीय चेताना वर्तमान रहती है।

मानवतावादी दृष्टि क्रान्ति की मूल मानना कही जा सकती है। मानवता जब कल्ले प्रकार के शोषण उत्पीड़न से पीड़ित हो जाती है, उसके उधार के लिए क्रान्ति फुलती है। क्रान्ति का उच्च मानवता का कल्याण है। एक व्यक्ति के दुःख, दुविधा तथा अधिकार के लिए क्रान्ति नहीं होती। सार्वजनिक हित के लिए सार्वजनिक उद्योग से क्रान्तियाँ होती हैं। एक कल्ले की शक्ति सत्ताधारी वर्ग का विनाश दिखाने में लगे नहीं हैं। जब जनता की, सम्पूर्ण पीड़ित मानवता की ताकत एक होकर बन्धन और बन्धनकार का विरोध करती है, तभी क्रान्ति होती है। क्रान्ति की संजग्ग स्थिति के उपरान्त निर्माण की अवस्था में होने वाले कार्यों की मुख्य प्रेरणा भूमि मानवीय है। मानवीय आधार पर क्रान्ति का सुत्रपात होता है तथा उसको चरम परिणति की मानवता के हित में पर्यवहित होती है।

क्रान्ति, बलवर्ती, बलमानवा, उत्पीड़न, बन्धनकार, झुंठा काम के कल्ले के उत्पन्न होती है। इन सब के अधिकृत केवल वर्गीय की भी क्रान्ति की मूल प्रेरणा

माना जा सकता है, क्योंकि कामानता, उत्पीड़न, बर्त्यावार, कुंठा आदि भी मनुष्य के मन में वर्तमान व्यवस्था के प्रति असन्तोष उत्पन्न करते हैं। जहाँ असन्तोष नहीं है, वहाँ क्रान्ति नहीं हो सकती।

मानवीय दृष्टिकोण होने के फलस्वरूप क्रान्ति की परिणति जनकल्याण के कार्यों में होती है। सम्पूर्ण सम्पत्ति, सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु जनता बनता ब्रह्मा मनुष्य हो जाता है। उसके कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि जनता को अपनी संस्थाओं के नियमन, संवालन तथा संयोजन का अधिकार दिया जाय। जनता स्वयं सबसे अधिक जानती है कि उसका हित किसे है। इस दृष्टि से शासन-व्यवस्था में जनतांत्रिक विधि अपनायी जाती है। भारत, अमेरिका सभी देशों में क्रान्ति के उपरान्त जनतांत्रिक सरकारें ही कायम की गयी हैं। जनतांत्रिक शासन-व्यवस्था में जनता के हित के लिए सारे कार्य होते हैं। इस दृष्टि से क्रान्ति के फलस्वरूप को जनतांत्रिक कहा जायगा। धर्म, समाज तथा अन्य व्यवस्थाएँ भी जनतांत्रिक आधार पर होती हैं।

क्रान्ति कल्पनावादी है। एक ओर जहाँ हमें वर्तमान होबण, उत्पीड़न, क्लम का विरोध है, वहीं जहाँ नयी व्यवस्था की सुन्दर कल्पना भी निहित है। इसी कल्पना-प्रसूत नये संसार, नयी व्यवस्था की स्थापना के लिए क्रान्ति घटित होती है। यदि कल्याणपूर्ण उज्ज्वल भविष्य क्रान्ति के अग्रदूतों के समक्ष न रहे, तो क्रान्ति होना सम्भव नहीं है।

यह आवश्यक नहीं है कि मात्र तलवार की शक्ति ही क्रान्ति हो। क्रान्ति बान्दोलनात्मक भी हो सकती है। बान्दोलनात्मक बहिष्कृत क्रान्ति सहस्र क्रान्ति से कम तेज और प्रभावशाली नहीं है। उसके परिणाम भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। भारतीय दृष्टि पर बहिष्कृत क्रान्ति ही अधिक सफल हुई है। औद्योगिक, सामाजिक, कर्मिक तथा वैचारिक क्रान्तियों में भी सत्य की आवश्यकता नहीं ही पड़ती है। बहिष्कृत क्रान्तिवादी वैचारिक परिवर्तन, बाइबल, बान्दोलन, सहिष्णुता, त्याग आदि के कठ पर अपने लक्ष्य की क्रान्ति में समर्थ होते हैं। सहस्र क्रान्ति मात्र बाह्य परिवर्तन कर पाती है, जब कि बहिष्कृत क्रान्ति के द्वारा बाह्य और बान्दोलन दोनों क्षेत्रों में परिवर्तन होते हैं। बहिष्कृत क्रान्ति का प्रभाव, विस्तार तथा कबधि अधिक है।

कुमार को भी क्रान्ति के अन्तर्गत लिया जाता है, किन्तु ऐसा करना उचित प्रतीत नहीं होता। कुमार के द्वारा जनता की मार्गों की पूर्णतः पूर्ति नहीं होती, बल्कि कुमार, विद्रोह करने एक बात हीमा एक ही मार्ग में मार्ग कर जनता को अधिकतर

प्रदान करता है। क्रान्ति सुधारवादी वांछित परिवर्तन नहीं है। वह ऐसा परिवर्तन है, जो पुरानी व्यवस्था को सत्त्व कर नयी व्यवस्था स्थापित करता है। इस दृष्टि से सुधार को क्रान्ति नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सुधार पुराने के स्थान पर नये की स्थापना नहीं कर सकता। हाँ, सुधार के द्वारा उभरती हुई क्रान्ति मानवता को बचाया जा सकता है। उदार और चतुर शासक इसी माध्यम से लोक वर्णों तक शोचण, विलासिता तथा उत्पाचार आदि को कायम रख पाते हैं।

क्रान्ति शाश्वत मानसिक चेतना है जो सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक है। नयी व्यवस्थाएँ स्थापित होने पर मानवता के हित-साधन में संलग्न होती हैं, किन्तु कालक्रमेण उनकी प्रक्रिया तथा कार्य-व्यवस्था में स्फुरता आ जाती है। जहंवादी मनुष्य बीरे-बीरे व्यक्तिगत स्वार्थों की ओर मुड़ने लगता है। जिस दुस्ती के साथ नयी व्यवस्था प्रारम्भ होती है, वह कालान्तर में डीठी हो जाती है और उसमें विकाराव आ जाता है। कालक्रम से नयी व्यवस्था के मानक वादर्थ तथा क्रियाएँ रुद्ध तथा परम्परागत होकर जीवन को कुंठित कर देती हैं। इस स्थिति में पुनः क्रान्ति की आवश्यकता होती है। क्रान्ति जीवन-व्यापी, काल-व्यापी और विश्व-व्यापी मानसिक चेतना है, जो शाश्वत है।



वध्याय -- दो

-0-

पृष्ठावार और युगप्रवाह



अध्याय -- दो

-0-

### पृष्ठाधार और युगप्रवाह

जीवन अनेक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का समुच्चय है। मनुष्य अधिक संवेग, संकेत और सक्रिय प्राणी है। इसलिए उसके जीवन में विभिन्न घटनाएँ आती हैं। इन घटनाओं से संघर्ष करता हुआ वह जीवित रहता है और अपनी अदम्य जिजीविषा का परिचय देता है। जीने की प्रेरणा ही उसे अनेक घटनाओं की प्रतिक्रिया के लिए बाध्य करती है। प्रतिक्रिया परिस्थितियों से, जो घटनाओं के रूप में आती हैं, उत्पन्न होती है। इस प्रकार परिस्थितियों ने जन-मानस को बान्धोलित किया और अनेक दौरों में नये सिरे से सोचने-समझने की प्रेरणा दी। युग-बोध की अभिव्यक्ति इसलिए साहित्य में विशेषरूप से होती आई है। परिस्थितियों की प्रतिक्रिया ने साहित्य को परम्परा से टूट कर प्रयोग करने की चेतना दी है। इसलिए यह अवशिष्ट है कि ज्ञान्ति-भावना की अभिव्यक्ति करनेवाली परिस्थितियों का विश्लेषण किया जाय कि साहित्य में उसकी प्रतिक्रिया का सम्यक् और सामीप्य किसे हो सके।

साहित्य प्रत्यक्षतः युग-बोध से कटा प्रतीत होने पर भी अप्रत्यक्षतः उससे प्रतिबद्ध होता है। प्राचीन और मध्यकाळीन साहित्य पर भी युग-बोध की छाया स्पष्ट ही देखी जा सकती है। आधुनिक साहित्य युग-बोध से उद्भूत है। उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य का विश्लेषण करते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है,—  
युग-बोध का प्रत्यक्षीकरण उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य में यद-यद पर होता है।

और साहित्य किसी भावतो नदी का ऐसा तट बन जाता है जिससे विषम परिस्थितियों की तरंगें साँ-साँ में आकर बड़े वेग से टकराती हैं।

क्रान्ति भावना परिस्थितियों की प्रतिक्रिया है : अध्याय एक में बताया जा चुका है कि परम्परा रुढ़ि, अत्याचार, अपमान आदि की प्रतिक्रिया क्रान्ति के ज्वालामुखी रूप में फूटती है। इसलिए आधुनिक हिन्दी-काव्य में अभिव्यक्त क्रान्ति-चेतना का मूल्यांकन प्रस्तुत करने के पूर्व उसकी प्रेरक परिस्थितियों पर विचार कर लेना उचित होगा, क्योंकि इन परिस्थितियों ने ही क्रान्ति-भावना की प्रेरणा दी। इस प्रेरणा से जीवन, जगत और साहित्य भी बान्दोलित हुआ है।

### राजनीतिक

#### पृष्ठाधार

क्रान्ति की अनेक प्रेरक परिस्थितियों में राजनीतिक परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। राजनीति जीवन की एक महत्वपूर्ण दिशा है, जिससे समाज व्यर्थ, व्यर्थ सभी प्रभावित हुए हैं। हिन्दी काव्य-क्षेत्र में घटित जिस क्रान्ति-भाव की कवां यहाँ प्रस्तुत होगी, वह मूल रूप से विरोधपूर्ण है। विदेशी शासन के कान, अत्याचार, अपमान आदि ने जीवन को ककणोर दिया। शासनतंत्र के विभिन्न राजनीतिक कार्यों ने जीवन के हर क्षेत्र में नये सिरे से सोचने के लिए परम्परा के प्रति विद्रोह प्रकट करने के लिए मानसिक प्रेरणा दी। इसलिए इन राजनीतिक परिस्थितियों का विवेकन अपेक्षित है।

औरंगी शासन के पूर्व भारतवर्ष के शासक मुगल थे। बाबर से शाहजहाँ के शासन-काल तक क्रान्ति को उद्बुत करने वाली कोई विशेष राजनीतिक घटना नहीं हुई। हाँ, राणा प्रताप ने मैवाड़ की स्वतन्त्रता तथा हिन्दु धर्म की रक्षा के लिए अकबर से लड़ा लड़ा, किन्तु अकबर की समन्वयवादी और शान्तिपूर्ण नीति के कारण क्रान्ति-भावना को प्रग्न नहीं मिल पाया। राणा प्रताप की विरोध-

१- उन्नीसवीं शताब्दी की पृष्ठभूमि- रायकुमार वर्मा

भावना एक तीव्र विशेष की स्वतन्त्रता से पूर्ण है, किन्तु उसमें जन जीवन का सहयोग कितना था, यह कहना कठिन है। यह निश्चित है कि अकबर की विस्तारवादी नीति को राजा प्रताप की स्वतन्त्रतापरक राष्ट्रीय झान्ति भावना अवश्य एक बक्का देती है। व्यापक रूप से अत्याचार और अपमान की परिस्थिति न होने के कारण व्यापक तथा तीव्र झान्ति भावना उस काल में नहीं जा सकी।

औरंगजेब की निरंकुशता ने भारतीय जीवन को झान्ति मुलक बनाया। औरंगजेब ने हिन्दुओं के नैतिक और धार्मिक विश्वासों को कुचलने की चेष्टा की। इस कारण, उसका राज्यकाल मुगल साम्राज्य के इतिहास का अज्ञान्तकाल माना जाता है। उस काल में प्रायः कमींदारों, राजाओं तथा हिन्दुओं के धार्मिक उपद्रव हुए। औरंगजेब का अधिक समय और नम इस विद्रोहों को दबाने में बीत गया। सबसे बिकट उपद्रव बागरा, बख्त और कलाहाबाद के सुबों में हुए। बागरा प्रान्त में गोबुल के नेतृत्व में जाटों ने, बख्त में बख्त राजपूतों ने और कलाहाबाद में इरदौ तथा अन्य कमींदारों ने शासन की अन्यायपूर्ण नीति के विरुद्ध विद्रोह किया। मथुरा में केशवदास तथा काशी में विश्वनाथ के मन्दिर तोड़ने तथा हिन्दुओं का विरोध करने वाले औरंगजेब के अत्याचार और अन्याय से हिन्दु बौखला उठे। मुन्देरसण्ड के नम्यतराय और उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र हजरात ने जीवन के अन्त तक औरंगजेब का विरोध किया। महाराज जसवंत सिंह के मरने के बाद उनके राज्य को हड़पने के कारण मेवाड़ और मारवाड़ उनके विरुद्ध हो गए। गुरु तेगबहादुर की हत्या और गुरुगोविन्द सिंह के पुत्रों पर किए गए अत्याचार से औरंगजेब के विरोध में सिखों में धैर्यिक शक्ति संवर्धित हुई। उनकी धार्मिक असहिष्णुता के कारण दक्षिण में शिवाजी के नेतृत्व में मराठे शासन के प्रति विद्रोही हो गए।

औरंगजेब की हिन्दू राजपूत विरोधी नीति, राजधानी में शासनकाय का अत्यधिक केन्द्रीकरण और राजकीय आय का बाढीशान क्कारतें बनाने में अंवाहुंन अन्व, उद्भर स्थित सुबेदारों और बागिनों या विजित राजाओं और नवाबों पर नियंत्रण का अभाव, यातायात के साधनों की और ध्यान न देना, रईसों तथा कुलीनों

और धर्म की अवोगति, पुलिस एवं निष्पक्ष तथा शक्तिशाली न्यायाधीशों का अभाव, असहिष्णुता, अविश्वास, इधरे का राज्य हड़प लेने की प्रवृत्ति और फलतः निरर्थक युद्धों में राजकीय आय का विनाश और तज्जनित सैनिक तथा वार्षिक - शक्ति का ह्रास आदि कुछ बातें ऐसी थीं, जिन्हें औरंगजेब अपने उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ गया था और जिनके फलस्वरूप साम्राज्य हिन्न-मिन्न हो गया था ।<sup>1</sup> इन कारणों से औरंगजेब की मृत्यु के बाद अव्यवस्था और अराजकता फैल गई । औरंगजेब के उत्तराधिकारी राजनीतिक दृष्टि से कमजोर थे । मुहम्मदशाह के राज्यकाल में निजाम, रुहेलों, सिक्कों, मराठों, नादिरशाह और उसके उत्तराधिकारी अहमदशाह बम्बाली ने मयंक उत्पात मचाये । इस कारण अत्याचार और अस्तौष्य बढ़ गया । मुगल शासन की कमजोरी के कारण ही भारतमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभाव और शासन बीरे-बीरे बढ़ने लगा ।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना सन १५९६ में हुई थी । उसे २२ दिसम्बर १६००ई० में रानी एलिजबेथ से अधिकार-पत्र मिला । इस अधिकार-पत्र के द्वारा व्यापारियों की इस कम्पनी को मुझूर पूर्व में व्यापार करने का एकाधिकार मिला । उसी सम्बन्ध में मुगल सम्राटों के राजत्वकाल में अनेक व्यापारी भारत में आते रहे । क्रेडों के साथ इधरे योरोपीय देशों के व्यापारी भी भारत में आए और उन्होंने क्रेडों की प्रतियोगिता में अपने व्यापार को बाने बढ़ाना चाहा । व्यापारिक प्रतियोगिता के पन फलस्वरूप क्रेडों को भारतीय राजनीति में भी सक्रिय भाग लेना पड़ा । कम्पनी की व्यापारिक और राजनीतिक स्थिति में समय-समय पर उतार-चढ़ाव आए ।

एक काल में राजनीतिक उफ़र-पुफ़र का केन्द्र बंगाल था । अठोबर्दीशों के मरने पर बंगाल का शासक बिराजुदौला ज्योंही हुआ, उसे क्रेडों से हटारना पड़ा, जिसके फलस्वरूप बौद्ध बौद्ध की कल्पित घटना का होना बताया जाता है ।

१७५७ में क्लाइव ने बिराजुदौला को हटाकर बंगाल पर अधिकार जमाया । उसी वर्ष भारत में क्रेडों राज्य की नींव पड़ी । बीरे-बीरे क्रेडों ने राजनीतिक बीरे

१- बाह्यनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका- ठप्पीशानर वार्षिक, पृ० २३-२४, सन् १९५३

वार्षिक बड़यंत्रों के माध्यम से बिहार और काल के कई नवाबों को अपने अधिकार में कर लिया। इस काल में सम्पूर्ण हिन्दी प्रदेश अवसरवादिता, वतिव्यय, गृह-बलह, रक्तपान, लूट-मार आदि से पीड़ित था। जन-जीवन में किसी सम्मान्य राजनीतिक चेतना का अभाव था। धीरे-धीरे जेजों ने भारत के अन्य पश्चिमी भागों को भी अपने कब्जे में करना प्रारम्भ किया। अनेक लड़ाइयों में उन्होंने टूटे हुए सामंतों और नवाबों को पराजित किया।

१७६५ ई० में क्लाइव जब दुबारा काल का गवर्नर नियुक्त हुआ, ईस्ट इण्डिया कम्पनी व्यापारिक संस्था से राजनीतिक शक्तों के रूप में देश के सामने आई। क्लाइव की नेष्टा से काल, बिहार और उड़ीसा को दीवानी ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मिली। इसके फलस्वरूप वार्षिक व्यवस्था जेजों के हाथ और राजनीतिक व्यवस्था नवाब के हाथ में थी। इस तरह इस क्षेत्र में द्वैत शासन की कष्टपूर्ण स्थिति बनी। १२ अगस्त १७६५ को शाह बालम ने फ़ारुखान द्वारा जेजों को काल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी सौंपी थी और वस्तुतः उसी दिन से व्यावहारिक दृष्टि से कोई मुग़ल सम्राट नहीं रह गया था, क्योंकि सेनाओं की संस्था और मंत्रियों को नियुक्ति तक में उसे जेजों की स्वीकृति लेनी पड़ी थी।

अधिकार जेजों के हाथ में जाने से उन्होंने मनमानी आरम्भ कर दी थी। भूमिकर बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। १७७० में काल के पर्यंकर काल के बावजूद भी भूमिकर में पुनः वृद्धि हुई। कृषि उन्नति की भी उपेक्षा हुई। १८५७ ई० के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी मौलाना फ़जलुल्लाह हैराबादी ने क्रान्ति का दूसरा मुख्य कारण वार्षिक संकट बताया है<sup>१</sup>।

वेधे इस बीच शाह बालम दिल्ली जाने की कोशिश करता रहा। जेज तो किसी प्रकार भी सहायता देने के लिए तैयार नहीं थे वतः सम्राट को मराठों का वासरा था। ७ फरवरी को उन्होंने शाहबालम को सम्राट घोषित किया। शाहबालम दिल्ली में आया। पर वास्तविक शक्ति मराठों के हाथ में थी। १७८८ में नाथिब साँ के पौत्र मुलायम फ़ादिर साँ ने दिल्ली पर आक्रमण कर शाहबालम को कैद कर ली

१- स्वतंत्र दिल्ली-- डा० देवदत्त अहिर बम्बई रिजर्वी, पृ० १२, प्रथम सं०, सन् १९३७



जैसे फोड़ दीं। पर बाद में मराठों ने उसे भी निकाल बाहर कर अपना राज्य स्थापित किया। १८०३ तक महादा जी सिंधिया दिल्ली पर राज्य करता रहा। तत्पश्चात् १८०३ में लार्ड ऐल द्वारा पराजित होकर दिल्ली मराठों के हाथ से जेठों के हाथ में गई।

शाहजालम की मृत्यु १६ नवम्बर १८०६ ई० को हुई। उसका उत्तराधिकार उसके पुत्र अकबर शाह द्वितीय को जेठों के संरक्षण में मिला। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र बहादुर शाह उत्तराधिकारी हुआ। १८५७ के विद्रोह के फलस्वरूप वह कैद कर रंगून भेजा गया, जहां उसकी मृत्यु हुई। वस्तुतः अंतिम दोनों सम्राट नाममात्र के सम्राट थे। वस्तुतः वे जेठों के बन्दी थे।

इस प्रकार १७५७ से १८५७ तक मुगल साम्राज्य का दुःस्मरण अन्त हुआ। छपर जाटों, मराठों और सिक्खों के पतन से भारत की रही-सही स्वतन्त्रता का अवशिष्ट भी समाप्त हो गया।

जेठ गवर्नर जनरलों ने अपने राज्य को बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के अमानुषिक कार्य किए। काल-बिहार तो प्रारम्भ में ही जेठों के अधिकार में जा गये थे। बाद में उन्होंने बाकी हिन्दी प्रदेश को भी अपने कब्जे में कर लिया। जेठों की विस्तारवादी नीति का विरोध सबसे अधिक मराठों ने किया। बनेक छोटे मोटे महाराजे और जमींदार मराठों के बर्ताव के कारण जेठों राज्य के अन्तर्गत जा चुके थे। जेठों ने अपने राज्य के विस्तार के लिए मुगल सम्राट तथा कन्नौर अवसरवादी राजाओं और जमींदारों को साधन बनाया। हुआ उदौला उनका सबसे बड़ा मित्र था। हुआउदौला के पुत्र वासिफुद्दौला से उन्होंने गाजीपुर, फारस, बीनपुर और भिर्वापुर जिलों को अपने अधिकार में कर लिया।

जेठों के बर्ताव और अहंता के माध्यम से भारत में जेठों राज्य का विस्तार किया। जेठों सेना को वार्षिक सहायता न देने और विद्रोह उपाड़ने के अपराध में फारस के राजा जेतसिंह को और जेतसिंह की सहायता करने के अपराध में उन्होंने कैलों को दंडित किया। वासिफुद्दौला के उत्तराधिकारी सबादतखी सां को १८०१ में छत्तनगर की संधि के अनुसार गोरखपुर, बस्ती, बाबमगढ़, सहाबाबाद, फतेहपुर, कानपुर, सतावा, मेनपुरी, सटा, फर्रुखाबाद जिले और लखनऊ का अधिकांश भाग जेठों को देना पड़ा। वही अपने अवय के नवाब ने अपना सारा राज्य जेठों को

सौंप कर पन्शन स्वीकार कर ली । १८०२ में होल्कर से पराजित पेशवा से मेरठ, मथुरा और आगरा को अपने कब्जे में कर लिया । इसके परिणामस्वरूप तीसरा मराठा युद्ध हुआ ।

अंग्रेजों की विस्तारवादी और अन्यायपूर्ण नीति के विरोध में अन्तिम मराठा व युद्ध १८१७-१८ में हुआ, जिसके परिणामस्वरूप मराठों को पूरी तरह आत्म-समर्पण करना पड़ा । इसी प्रकार १८४८-४९ के द्वितीय सिक्ख युद्ध के फलस्वरूप पंजाब भी अंग्रेजों के अधिकार में आ गया । १८५३ में डल्हौजी ने कांसो के राजा का राज्य ब्रिटिश इंडोलैंड में मिला लिया । १८५६ में अवध भी ब्रिटिशराज्य में मिला लिया गया । इस प्रकार भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना पूर्ण हुई ।

अंग्रेजों को इस राजनीतिक नीति के कारण जन-व्योवन में असंतोष और आशंका ने घर कर लिया । इसको अभिव्यक्ति १८५७ की क्रान्ति में लक्षित हुई ।



## युग-प्रवाह

### भारतेन्दु युग

बालोच्च-काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना १८५७ की क्रान्ति है। १८५७ के भारतीय विद्रोह का मुख्य कारण था शासकों और शासितों के बीच सम्पर्क का अभाव। सर सैयद अहमद ने ठीक ही स्केत किया कि परिवर्तनों में भारतीयों का निषेध करने की नीति ने सरकार को जनमत जानने के अवसर से वंचित कर दिया। साथ ही उक्त नीति के कारण ऐसी कोई भी सम्पर्क ऐसा न थी, जहाँ से दृष्टिकोण और उद्देश्य के सम्बन्ध में सरकार और जनता के पारस्परिक क्रम दूर किए जा सकें।

भारतीय जनता की स्वतंत्र होने की इच्छा १८५७ की क्रान्ति में प्रकट हुई। सन् १८५७ की महान् राज्यक्रान्ति के ज्वालामुखी का विस्फोट जिसमें हृदय की विगलित भावनायें तरल अग्नि की धारा की भांति मेरु से दिल्ली की ओर प्रवाहित हुईं। नाना साहब, तांतिया टोपे और रानी लक्ष्मीबाई ने अपने अप्रतिम शौर्य से इस जनक्रान्ति को भारत के इतिहास में एक भिर स्मरणीय पर्व बना दिया।<sup>१</sup> इस प्रकार भारतीय जनता ने उत्पातकारी औपवी शासन को समाप्त कर देने का प्रयत्न इस माध्यम से किया, किन्तु अनेक कारणों से भारतीय जनता विजयी न हुई और वह सुदीर्घ काल के लिए गुलाम हो गई। निस्सन्देह १८५७ की क्रान्ति राष्ट्रीय क्रान्ति है, जिसके माध्यम से जनता की अस्तीत्य भावना प्रकट हुई थी।

इस क्रान्ति की विफलता का परिणाम यह हुआ कि भारत का शासन ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ से निकल कर इंग्लैंड के मंत्रिमंडल के हाथ में चला गया। कम्पनी के शासन से जनता दुखी थी, क्योंकि उसने सभी स्तरों में अनेक प्रकार के उत्पातार किए थे। इसलिए यह परिवर्तन भारतीय जन-जीवन को उत्कृष्ट कर गया।

- १- भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास- गुरुमुख निहाल सिंह, पृ० ८५, सन् १९५२
- २- इन्द्रोदयन दू द हिन्दी वाफ नक्कमेंट इन इण्डिया- सी० एल० बानर्जी
- ३- उन्नीसवीं शताब्दी की प्रमुखता- रामकुमार वर्मा

१८५८ ई० में महारानी विक्टोरिया का घोषणा पत्र पढ़ा गया जिसमें भारतीय जनता के दुल दूर करने के आश्वासन दिए गए । 'शिक्षित भारतीय जनता ने इस घोषणा-पत्र को अपने अधिकारों का 'मेग्नाकार्टी' समझा ।' इस घोषणा से भारतवासियों के मन में अंग्रेजी राज्य के प्रति अच्छी धारणाओं का विकास हुआ ।

इस आश्वासन और इससे उत्पन्न जनता की प्रसन्नता के बावजूद उस क्रान्ति के बाद से भारतवासियों और अंग्रेजी शासन के सम्बन्ध बहुत सीमा तक बदल गए । 'अंग्रेजों के हृदय में भारतवासियों के प्रति अविश्वास भर गया और जनता के प्रति सरकार की सारी नीति बदल गई' । भारतीयों के प्रति अविश्वास के फलस्वरूप सेना, पुलिस, विदेश और राजनैतिक विभाग से भारतीय जनता का बहिष्कार हो गया । सारे देश की निःशस्त्रता के लिए हथियारों को जादूता से कार्यान्वित किया गया । इसके परिणामस्वरूप जनता में घृणा, क्रुता और अवज्ञा की भावना का विकास हुआ । अंग्रेज और भारतीय के बीच आदर, मित्रता और सहृदयता की भावना समाप्त हो गई । इस प्रकार दोनों जातियों के बीच दुराव की भावना बढ़ती गई ।

दोनों जातियों के बीच बढ़ने वाली साहं के फलस्वरूप एक ओर अंग्रेज अधिक कठोर और बर्थाचारी हुए तो दूसरी ओर भारतीय अधिक असन्तुष्ट हो उठे । इस असन्तुष्ट के कारण भारतीय जनता में राजनीतिक चेतना का विकास प्रारम्भ हुआ । सन् १८६६ ई० में दादाभाई नौरोजी ने लंदन में ईस्ट इण्डिया सोसियलिटी की स्थापना की । इसका उद्देश्य इंग्लैण्ड की जनता का ध्यान भारतीय समस्याओं की ओर आकर्षित करना था । १६ वीं शताब्दी के ७ वें दशक के आस पास रानाडे ने धार्मिक समा का संघटन किया था ।

इन संस्थाओं की स्थापना के पीछे भारतीय जीवन की असन्तुष्ट तथा विरोध भावना स्पष्ट ही उभरती होती है । महारानी विक्टोरिया के आश्वासन के फलस्वरूप भारतवासियों को यह आशा थी कि उन्हें सरकारी नौकरियों में उचित स्थान दिया जायगा । जब १८७१ ई० में गुरन्नाथ कर्जी की वांछी-०२२० में लिखा

१-सामाजिक शिक्षा वाफ इण्डिया इन द विक्टोरियन-समय-आवृत्ति, पृ० ३१२

२-भारत का धार्मिक एवं राष्ट्रीय विकास- गुरुमुख विहाड सिंह , पृ० १३

गया, इस आज्ञा की पुष्टि हुई, किन्तु १८७३ में उन पर कुठे आरोप लगाकर उन्हें नौकरी से हटा दिया गया। उनका अपराध था कि वे भारतीय थे। इस प्रकार उन्हें नौकरी से हटा कर सरकार ने भारतवासियों को अपमानित किया। श्री कर्जी १८७६ में इंग्लैण्ड से बैरिस्टरी पास कर लौटे और उसी वर्ष उन्होंने इंडियन एसोसिएशन की स्थापना की। इसका उद्देश्य पढ़े-लिखे मध्यवर्ग का संघटन करना था।

१८७७ ई० में इस सन्दर्भ में सरकार ने एक और कदम उठाया, जो भारतीय जनता के लोभ के प्रतिबल था। सरकार ने आई०सी०एस० के लिए अपेक्षित अवस्था घटाकर १६ वर्ष कर दी। इसका उद्देश्य था कि भारतवासियों का इस सेवा में प्रवेश असम्भव बना दिया जाय। सुरेन्द्रनाथ कर्जी ने सरकार के इस रुख का विरोध किया, उन्होंने देश में घूम-घूम कर भारतीय जनता को इस तथ्य से अवगत कराया। इंडियन एसोसिएशन के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं का संघटन उन्होंने देश में किया। परिणाम-स्वरूप देश भर में ऐसी संस्थाओं का जाल फैल गया, जो सरकारी नीति के विरोध में थी और जिसका उद्देश्य भारतीय हित की रक्षा करना था। कहना न होगा कि इसके फलस्वरूप देशभर में अपने हित और अधिकारों के लिए संघर्ष करने की भावना व्याप्त हो गई।

उसी वर्ष महारानी विक्टोरिया का दिल्ली दरबार हुआ। इस दरबार में प्रतिष्ठित भारतीय तथा रावे-महारावे आमंत्रित हुए, जिन्होंने विक्टोरिया को अपनी महारानी सम्मान माना। उसी वर्ष देश में भीषण अकाल पड़ा। सरकारी सहायता के अभाव में लोक प्राणी काल-कवलित हुए।

भारतीय जनता में अंग्रेजी शासन के प्रति ज्यों-ज्यों असंतोष बढ़ता गया, सरकार की जन-नीति भी कठोर होती गई। भारत के हिन्दी पत्रों ने इस असंतोष को उजागर कर राष्ट्र में जागृति के जाग के महत्वपूर्ण कार्य किया। सरकार की दृष्टि से हिन्दी पत्रों का यह कार्य राज-विरोधी था। इस विरोध को रोकने के लिए १८७८ ई० में काराकुल प्रेस ऐक्ट नियम पास किया गया। इंडियन एसोसिएशन ने देश भर में व्याप्त अपनी शाखाओं के माध्यम से इसका विरोध किया जिसके कारण चार वर्षों के बाद इस अधिनियम को रद्द कर दिया गया।

१८७८ ई० में ही शस्त्रास्त्र अधिनियम पारित हुआ। उस नियम के अनुसार किता कुमति के किसी तरह का हथियार रखना, छेड़ना या व्यापार करने का प्रतिबन्ध था। इस प्रतिबन्ध से रेंगते-रुझते और हूब-हूब सरकारी अफसर हुकूमत थे।

इस विमर्श से भी जनता में चोम था ।

१८८३ ई० में इलवर्ट बिल प्रस्तुत हुआ । इस बिल में भारतीय मजिस्ट्रेटों को यूरोपियन अधिकारियों के मुकामें चुनने का अधिकार मिलता । अंग्रेजों ने इसे नहीं स्वीकार किया और इस बिल का उन्होंने घोर प्रतिरोध किया । फलस्वरूप बिल वापस ले लिया गया । इसी वर्ष इण्डियन सोसिएशन के तत्वावधान में एक राष्ट्रीय सम्मेलन सम्पन्न हुआ । इसमें श्री कर्नल ने भारतवासियों से संगठित होकर देश-सेवा करने का अनुरोध किया । १८८४ में भी इण्डियन सोसिएशन का प्रान्तीय सम्मेलन हुआ । १८८५ में बम्बई में बाम्बे प्रेसिडेंसी सोसिएशन की स्थापना हुई तथा १८८५ में ही कांग्रेस की स्थापना बम्बई में हुई ।

इस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटनाओं में, कांग्रेस की स्थापना है । अंग्रेजी राज्य से दुःख होकर जनता कुछ करना चाहती थी । कांग्रेस के जन्म के पूर्व लोगों में अंग्रेजी राज्य से घोर निराशा हो गयी और इसके फलस्वरूप वे कुछ न कुछ कर गुबरना चाहते थे । मि० ह्यूम उस राजनीतिक अज्ञानि की पहचानने लगे थे । उनके हाथ ऐसे रिपोर्टों की ७ जिल्दें लगीं जिनमें भिन्न जिलों में अज्ञान फैलने की बात का उल्लेख था । बम्बई इलाके के दक्षिण प्रान्त में किसानों के दोष हो चुके थे । "यह देखकर ह्यूम साहब ने इस अज्ञानि की प्रकट करने का एक सरल उपाय ढूँढ़ निकाला । वह उपाय था — कांग्रेस<sup>३</sup> ।"

१ मार्च, १८८३ ई० को ह्यूम साहब ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों के नाम एक पत्र लिखा, उसमें उन्होंने ५० ऐसे व्यक्तियों को नाम की जो मठ, सन्धे, निःस्वार्थ, आत्मसंयमी एवं नैतिक साहस रखने वाले और दूसरों को मलाई करने की सीख पावना सक्षम हों । उन्होंने स्पष्ट कहा कि "यदि आप अपना कुत-पन नहीं छोड़ सकते तो किछकाठ स्वामी प्रणति की सारी वांछा व्यर्थ है और यह कबना होगा कि हिन्दुस्तान सम्पूर्ण मोक्षदा सरकार से बेहतर शासन न तो चाहता है और न उसके योग्य हो है ।" उन्होंने यह भी कहा कि यदि वे मान नहीं पाते तो अंग्रेजी वांछा का

१- कांग्रेस का इतिहास - पट्टाभि सीतासेन्या, पृ० ६

२- वही, पृ० ७

३- डॉ० इंडिया- लाजपतराय, पृ० १४१, १४२ ।

242687

जुवा उनके कंधों पर रहेगा ।

ह्यूम मानते थे कि भारतीयों की वार्षिक समस्याओं को सुलझाने में अंग्रेजी सरकार असफल रही है और लोग अकाल तथा निराशा से पीड़ित हैं । तत्कालीन भारतीय सरकार जनता से अलग सी है, इसलिए लोग अज्ञात हैं । उसे व्यक्त करने का माध्यम उन्होंने कांग्रेस को बनाया । यह उक्ति ठीक ही है कि कांग्रेस का गठन क्रान्तिकारी अस्तोष की मुरझा के कारण किया गया था ।<sup>१</sup>

लाला लाजपत राय के अनुसार कांग्रेस की स्थापना का मुख्य कारण था— प्रवर्तकों का साम्राज्य को बिन्न होने से रोकने के लिए तीव्र इच्छा । पर मि० ह्यूम का जो भी उद्देश्य रहा हो । इतना निश्चित है कि अन्य भारतीय नेता, जिन्होंने कांग्रेस की स्थापना में सहायता दी, वे अन्य उच्चतर उद्देश्यों से प्रेरित थे । वे थे— दादा भाई नौरोजी, हबस्फु० सी० बनर्जी, फीरोजशाह मेहता, तैयब जी, रानाडे, तेलंग और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि । लाला लाजपत राय ने भी स्वीकार किया है कि स्वयं मि० ह्यूम भी अन्य एवं उच्चतर उद्देश्यों से विशेष रूप से प्रेरित थे 'ह्यूम को स्वतन्त्रता का ---व्यसन था । दुःख और दरिद्रता के दृश्य से उनका हृदय कराह उठता था ।

10 भारतवासियों के प्रति अपने देशवासियों के 'कायरता-पूर्ण' व्यवहार से उन्हें बड़ा शोक होता था । .. इतिहास के गम्भीर अध्ययन से उन्हें यह बात मही मांति ज्ञात थी 5 कि कोई भी सरकार, चाहे वह राष्ट्रीय हो क्या विदेशी हो, सार्वजनिक भावों को केवल नीचे से बचाव पट्टे पर ही स्वीकार करती है ।... कतः वह यह चाहते थे कि भारतवासी अपनी स्वतन्त्रता के लिए 'प्रयत्न' करें । ..... प्रयत्नारम्भ या संगठन । फलतः उन्होंने संगठन के लिए मंत्रणा की ।<sup>२</sup>

जिस प्रकार कांग्रेस की स्थापना में मात्र ब्रिटिश साम्राज्य को बचाने की इच्छा ही नहीं थी । वस्तुतः बहुत दिनों से कितनी शक्तियाँ काम कर रही थीं, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन का उदय हुआ ।

कांग्रेस की स्थापना मुख्यतः सामाजिक उद्देश्यों को ठेकर हुई थी, पर अन्तः अपना रूप राजनीतिक होता गया और धीरे-धीरे यह पूर्णतः राजनीतिक संस्था हो गई । कांग्रेस की नीति पहले अनन्य-विनय की थी, पर धीरे-धीरे देशवासियों के सर्वोप

१- कांग्रेस का इतिहास--पेट्रानि सीतारामैया, पृ० ७

२- इंग्लिश मैजल्ट सूक्रेण्ट रेण्ड पाट- डा० बी०बी०एस० खुर्शी, पृ० ७



के साथ वह वात्सावल्मीकी बनती गई। वह वर्ग, वर्ग, जाति, लिंग, पद आदि के भेद से परे थी। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में मधुरवाणी को अपनाया, यहां तक कि लोगों की प्रशंसा तथा राजमक्ति की भावना भी प्रकट की। लोकमान्य तिलक ने विदेशियों के प्रति उग्र विचार पैदा किया और कांग्रेस ग़रिबी की जगह उग्रता अपनाती गई। उसमें शांति आन्ति की जगह उग्र आन्ति—भावना का प्रवेश होता गया। इस भावना की वृद्धि के साथ ही साथ सरकार भी उस पर सदेह करने लगी। दिसम्बर सन् १८९७ ई० में तिलक को १८ मास की कड़ी सजा मिली। वे एक वर्ष बाद मैक्समूलर, हंटर आदि के आदेदन पर मुक्त हुए।

१८९४ में सरकार ने विदेशी वस्तुओं पर लगाने वाला कर घटा दिया। इसका उद्देश्य भारत में विदेशी वस्तुओं का मुविनापूर्वक आयात करना था। साथ ही भारतीय गृह उद्योग को समाप्त कर देने की भावना भी इसमें वर्तमान थी। १८९६ में मोचण प्लेन फैला, जिसमें लोक व्यक्ति मरे। उसी साल दक्षिण भारत में मोचण अकाल आया जिसके फलस्वरूप २ करोड़ आत्मी कालकवलित हुए।...

१८९७ से १९०० ई० तक कांग्रेसी शासन की राजनीतिक नीतियों के प्रति जो असंतोष प्रकट हुआ वह क्रमशः उग्र होता गया। इस उग्रता को कम कराने के उद्देश्य से ए०बी०एच० ने कांग्रेस की स्थापना की। कांग्रेस में शिक्षित वर्ग का प्रवेश होने लगा। बीरे-बीरे आंतवर्ती भारतीय बौद्धिक कांग्रेस के माध्यम से अपना असंतोष, अधिकार और हितरक्षा की भावना प्रकट करने लगे। इस तरह भारतीय आन्ति-वेतना की अभिव्यक्ति का एक सशक्त मंच कांग्रेस बनती गई।

### द्वितीय युग

भारतभू-युग की कालावधि में ही कांग्रेस में महाद आन्ति के उदय की शुरुआत हुई, किन्तु आन्ति का विस्फोट (प्रत्यक्षीकरण) द्वितीय युग में ही प्रकट हुआ। १९ वीं शताब्दी तक कांग्रेस का उद्देश्य शासन-सुधार में भाग लेना था किन्तु द्वितीय युग में वह स्वातंत्र्य के अधिकार मांगने लगी। भारतभू युग में कांग्रेस मात्र शिक्षितों की संस्था थी, किन्तु द्वितीय युग में उसका सम्बन्ध मध्यम और ग़रिबी के लोगों से हुआ। बीरे-बीरे कांग्रेस जनप्रिय संस्था बनती गई और इस मंच से जनता की आन्ति-भावना उभरने लगी। कांग्रेस की इस कड़ी हुई स्थिति के कारण सरकार ने उसे सहयोग देना बन्द कर दिया। इसी कांग्रेस के माध्यम से प्रकट होने वाली आन्ति-

चेतना की प्रतिक्रिया से कमन की नीति ग्रहण की। इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्र में क्रान्ति-चेतना बढ़ने लगी और द्वितीय युग की समाप्ति तक समूचे देश में क्रान्ति की लहर व्याप्त<sup>१</sup> गई।

इस युग की सबसे महत्वपूर्ण घटना का-मंडा है। १९०५ ई० में लार्ड कर्जन ने बंगाली भाषा-भाषी क्षेत्र को दो हिस्सों में बांट दिया। का-मंडा को इस घटना से समूचा राष्ट्र आन्दोलित हो उठा। इस आन्दोलन में जनता का सहयोग भी पूरी तरह रहा। कुलूस, लप्ता, प्रदर्शन आदि के माध्यम से जनता की विरोध-भावना तथा क्रान्ति-चेतना प्रकट हुई। इसकी प्रतिक्रिया से सरकार ने कमन नीति का आलम्बन किया। ज्यों-ज्यों कमन नीति को उग्रता और नग्नता बढ़ती गई, राष्ट्रीय जाति भी तीव्र होती गई। डा० सीतालैया के कथन से इस स्थिति की पुष्टि होती है कि -- "कमन नीति ही पोषण पाकर राष्ट्रीय उत्थान उछटा बढ़ने लगा।" यह घटना राष्ट्रीय क्रान्ति के इतिहास में अत्यन्त महत्व की है क्योंकि उससे पूरा देश क्रान्ति-चेतना से जाग्रत हो गया। राष्ट्रीय क्रान्ति के विकास में लार्ड कर्जन की इस नीति की अनुसंधान करते हुए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा है -- "उन्होंने राष्ट्रीय जीवन की नींव बिस्तृत एवं गहरी डाली, उन्होंने उन शक्तियों को उत्प्रेक्षित किया, जो राष्ट्रों के निर्माण में सहायक होती हैं, उन्होंने एवं एक राष्ट्र बनाया।"

इसी पृष्ठभूमि में १९०६ ई० के कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी ने स्वतन्त्रता के इतिहास में पहली बार खराब का प्रस्ताव उपस्थित किया। उसी वर्ष (१९०६ ई० के) अक्टूबर में भारतीय मुसलमानों के एक प्रतिनिधि मण्डल ने वायसराय से मिलकर बंगाली शासन-कुमारों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की मांग की। इसी वर्ष ३० दिसम्बर को डाका के कमाव लीमुल्हाह हाँ ने मुस्लिम लीग की स्थापना की। लार्ड कर्जन ने उन्हें कम भूद पर रुपया कर्ज दिया था। सम्भव है, लार्ड कर्जन के निर्देश से ही मुस्लिम लीग की स्थापना हुई हो। कांग्रेस का ध्यान इस वर्ष स्वदेशी आन्दोलन की ओर था। उसने सक्रिय रूप से यह आन्दोलन देश भर में फैलाया।

१- कांग्रेस का इतिहास— पट्टाभि सीतालैया, पृ० ६५

२- इंडिया-र मैगज़ीन — एनी बीसेंट, पृ० १६३



इस थोड़ी अवधि में ही भारतीय जन-जीवन में क्रान्ति लावना इतनी तीव्र हो गई कि सरकार को उसे दमन करने के लिए सरकार ने भारत के हासन में सुधार करना वसूलात समझा । फलतः १९०६ ई० में माली मिष्टो सुधार योजना का परीक्षण प्रारम्भ हुआ । इस सुधार के द्वारा मुस्लिमों को पुष्क निर्वान का अधिकार दिया गया । उन दिनों कांग्रेस उदारवादियों (नरम दल) के प्रभाव में थी , इसलिए इस सुधार से नरम दल बाधित संतुष्ट हुए ।

१९१० ई० में पंचम जार्ज ब्रिटन के सिंहासन पर बैठे । उस इस उपलक्ष्य में १९११ ई० में दिल्ली में दरबार का आयोजन हुआ । उसमें देश के कोने-कोने से राजा-महाराजा स्वतंत्र हुए, जिन्होंने सम्राट का स्वागत कर उनके प्रति अपनी राजवर्षि प्रकट की । सम्राट ने इस दरबार में काल को वसुधैव कुटुम्बक इत्यादि की घोषणा की । इस घोषणा से जनता को प्रसन्नता हुई । इस जनता के बान्धुत्व की विषय के रूप में स्वीकार किया गया । १९१३ ई० में मुस्लिम लीग का लक्ष्य स्वशासन घोषित हुआ और इस प्रकार वह कांग्रेस के निकट जाने लगी ।

प्रथम महायुद्ध का प्रारम्भ १९१४ ई० में हुआ । इसमें विश्व के प्रायः सभी राष्ट्रों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित होना पड़ा । महायुद्ध को परिस्थितियों ने भारत की राजनीति को भी प्रभावित किया । भारत का सम्बन्ध किसी भी रूप में महायुद्ध से नहीं था, किन्तु ब्रिटिश अधिकार में होने के कारण उसे युद्ध में सम्मिलित होने को बाध्य होना पड़ा ।

इसी वर्ष लंदन में श्रीमती एनी बेसेन्ट ने होमरूल लीग की स्थापना की । लीग का उद्देश्य भारतीय जीवन में उभरती हुई क्रान्ति का संकेत जनता को देना था । अपने उद्देश्य की घोषणा करते हुए उन्होंने कहा --, " मैं होने वाले कानून वाला भारतीय समझ हूँ जिससे मैं को और अपनी मातृभूमि के लिए काम करूँ ।"

राजनीतिक घटनाओं की दृष्टि से १९१६ ई० अत्यन्त महत्वपूर्ण है । मोरले और फिरोजशाह मेहता का निधन १९१६ ई० में हुआ । उनके बाद नरम दल

का प्रभाव सीधे होता गया और कांग्रेस पर नरम दल वालों का प्रभाव होता गया । १९१६ ई० में कांग्रेस पर नरम दल का अधिकार था । १९१६ ई० में ही श्रीमती एनी बेसेण्ट ने होमरूल लीग को स्थापना घुना में की । मुस्लिम लीग के पूर्ण प्रतिनिधित्व के अधिकारों को कांग्रेस ने स्वीकारा । परिणामस्वरूप १९१६ ई० में दोनों संस्थाओं का सम्मिलित अधिवेशन लखनऊ में हुआ, जिससे मुस्लिम-हिन्दू सौहार्द की भावना बढ़ी ।

होमरूल लीग की जिन्ना, ठाठा ठाजपतराय तथा तिलक जैसे नेताओं का सहयोग भी मिलने लगा और देश में सर्वत्र उसका प्रचार हुआ और शासक हुंले लगीं । मद्रास में लीग की स्थापना १९१७ ई० में हुई । भारत में बढ़ती हुई बेतना की हुकूम के लिए सरकार धन-नीति को प्रभाव देने लगी । लीग की संस्थापिका श्रीमती बेसेण्ट के पत्रों से ज्ञानते मांगी गयीं ।

भारत में बढ़ती इस जागस्क बेतना के जन के लिए शासन में सुधार की आवश्यकता महसूस हुई और नवम्बर १९१७ में मोटेग्यू साहब पदारे । सन् १९ में गांधी की कियी सेनानी के रूप में अफ्रीका से भारत वाप । पहले वे कांग्रेस से अलग रहे । लेकिन १९१६ ई० के अन्त में उन्होंने फीजी की "निरपिड प्रवा" को बन्द करने के लिए व्यक्तिगत सत्याग्रह का वस्त्र संभाला । १९१७ई० में वायसराय ने इस प्रवा को बन्द करने की घोषणा की ।

१९१८ ई० में मोट फोर्ड योजना के प्रकाशन से कांग्रेस के नरम और नरम दल में मतभेद और बढ़ा । नरम दल वाले इस सुधार से प्रसन्न थे जब कि नरम दल वाले उन सुधारों को अपर्याप्त मानते थे । इसलिए वे सरकार के साथ सहयोग की भावना नहीं रखते थे । अंग्रेजों ने इसके अनुसार यह मान ली लिया था कि भारत को उच्चरावी शासन प्राप्त करना है, लेकिन उसे योग्य मानि के लिए यह जरूरी था कि उन्हें शासन-सुत्र संभाल की शिक्षा की जाय । इसलिए शासन-व्यवस्था में उनके प्रतिनिधित्व की योजना की गई ।

१९१६ ई० की ६ फरवरी को विभिन्न विधेय में रौलट विधेयों की कौंसिल में उपस्थित किया । प्रश्न फिर स्वीकृत हुआ, लेकिन सुधार की वापस से लिया गया । गांधीजी ने घोषणा की कि वे अन्तर्गत रौलट कानून का विरोध करेंगे,

यदि उसकी सिफारिशें कानून का रूप ग्रहण करेंगी । १९१६ ई० की ३० मार्च हड़ताल के लिए निर्धारित हुआ । पर किन्हीं कारणों से यह तिथि ३० मार्च की जगह ६ अप्रैल हो गई । पर तिथि-परिवर्तन की सूचना समय पर दिल्ली नहीं पहुंची, फलतः वहां उसी दिन हड़ताल हो गई । सरकार कमन के लिए कटिब ड पी ओर जनता में उत्पन्ना बढ़ती गई । परिणामस्वरूप कई स्थानों पर गोळियां चलीं ।

इन बान्धोलन के फलस्वरूप पंजाब के इतिहास में एक महान दुर्घटना हुई जो राष्ट्रीयता के इतिहास में ऊपर है । बोडायर, पंजाब का निरंकुश शासक नहीं चाहता था कि उसके प्रान्त में भी बान्धोलन हो । अतः उसने निर्व्यस्ता से कमन प्रारम्भ दिया । उसी क्रम में १० अप्रैल १९१६ को डा० किन्टू और सत्यपाल केद कर वृत्तांत स्थान में भेज दिए गए । प्रान्त पर भी जनता इस घटना से दुःख ही उठी और उसके प्रतिरोध में १३ अप्रैल, १९१६ ई० को कनूतपुर के बलियांवाला बाग में जनता की एक महासभा हुई । इस सभा में २० हजार स्त्री-पुरुष और बच्चे शामिल हुए । बोडायर की सरकार इस जन-जागृति को सहन न कर सकी और उसने कमन का निरन्तर किया । कनरठ डायर पीड़ को तितर-बितर करने के लिए भेजा गया । पर डायर ने पहुंचते ही गौड़ी कठाने की बाज्रा दे दी । फलतः जैक स्त्री-पुरुष और बच्चे नृजंघता के साथ गोड़ी के शिकार हुए । मृत और घायल सारी रात बाग में पड़े रहे । उसी समय भैंस छाने, घेहूँ के कट रेंग कर कलने, पानी और किछी बन्द कलने, चुकना कलाने आदि के कार्य कमन-नीति के अन्तर्गत हुए । कनरठ डायर के इस कार्य की गवर्नर बोडायर ने प्रशंसा की । अन्य स्थानों जैसे गुजराब बाबा क्लर और जैतपुरा में भी इसी तरह के अमानुषिक व्यवहार हुए ।

इन घटनाओं से दुःख होकर, अपनी गलत स्वीकार करते हुए सत्याग्रह की वापस लिया और शान्ति स्थापना के लिए सरकार की सहायता देने के लिए उत्तर हुए । १९ सितम्बर १९१६ ई० में नाहराया ने इन्टर-मीडल की नियुक्ति की घोषणा की, कि वह पंजाब के उपद्रवों की जांच करेंगे । परन्तु इसके साथ ही १२ सितम्बर को कनेडमिटी बिल लाया, जो कि आमतौर पर कानूनी कानून के साथ लाया करता है ।

१- कांग्रेस का इतिहास — पट्टाभि सीतासेन, पृष्ठ ७७

श्रीमती क्लेण्ट भी इन घटनाओं से दुःखित हुई और बोलीं कि 'रीड' कि में कोई भी ऐसी बात नहीं है जिसपर कि किसी ईमानदार नागरिक को स्तराब हो सके ।<sup>१</sup> जब लोगों की भीड़ सिपाहियों पर रोड़े बरसाये तब सिपाहियों को गोली के झुक फेंक करने की आज्ञा दे देना अधिक दयापूर्ण है ।<sup>२</sup> श्रीमती क्लेण्ट के इस कृत से उनकी लोकप्रियता भारतीय जनता के हृदय से समाप्तप्रायः हो गई । कांग्रेस की ओर से मालवीय जी तथा मौलीलाल नेहरू पंजाब काण्ड की जांच के लिए नियुक्त हुए ।

२६ अप्रैल १९१६ को भारत का एक शिष्ट मण्डल इंग्लैण्ड गया । वहां मजदूर-दल ने उसका स्वागत किया । वहां शिष्ट मण्डल द्वारा यह मांग की गयी कि मित्र और वायरलेण्ड के समान भारत को भी वात्स निर्णय का अधिकार मिले ।

उसी समय प्रथम महायुद्ध सुरू हुआ । भारत जेष्ठों की सहायता करने के पुरस्कार स्वस्म, इस आज्ञा में था कि उसे वात्स निर्णय का अधिकार मिल जाय । पर यह नहीं हुआ । सुवार मात्र से ही भारतीयों को संतुष्ट करने का प्रयत्न किया गया ।

इस युग में इन विभिन्न राजनीतिक परिस्थितियों के कारण जातकवादी कार्यो तथा साम्प्रदायिक भावना का जो उदय हुआ । जातकवादी कार्यो की उत्पत्ति के सम्बन्ध में फेल्न्टाइन शिरोठ का मत है कि वह कट्टर हिन्दुत्व की भावना से प्रेरित हुआ था और विशेषतः यह पश्चिम के प्रति ब्रह्मणवादी प्रतिक्रिया थी ।

"Though there have been and still are many admirable exceptions, Brahmanism remained the stronghold of reaction against the Western invasion."<sup>3</sup>

उनके अनुसार ब्राह्मणवाद दक्षिण में मोचनरूप से सैनिक भाव छिरे हुए था और तिलक उनके प्रियी नेता थे ।

इस भावना को उत्प्रेरित करते हुए मेरेट कहते हैं कि वह कट्टर हिन्दुत्व का प्रिटिश राज्य उलटने का चहुयन्त्र नहीं था, क्योंकि उसके नेता ब्राह्मणतर भी थे ।

१- कांग्रेस का इतिहास— पट्टाभि सीतासेया, पृ० १७८, १७९, नवम्बर १९३५ ई०

२- शण्डयन कांरस्ट— फेल्न्टाइन शिरोठ, पृ० ३७, १९१० ई०

३- शण्डयन मैकालिस्ट डुकलेण्ट रण्ड वाट— डा० बी० बी० रस० खुरंशी, पृ० १२

ठाठा ठाकुरदास की दृष्टि में आतंकवादी आन्दोलन के सूत्रपात का कारण स्वतंत्रता की प्रेरणा है। भारतीय राष्ट्रीय जीवन में आतंकवाद का जन्म कांग्रेस की अक्षमता का परिणाम था। उन दिनों कांग्रेस, नवयुवकों की दृष्टि में उग्र राजनीति और क्रांति-विरोधी संस्था प्रतीत हो रही थी; क्योंकि वह बहिस्तात्मक ढंग से बहिष्कार आन्दोलन का नेतृत्व करने की भी तैयार नहीं थी। ठाठा ठाकुरदास की यह मान्यता आतंकवाद की उत्पत्ति के बारे में उचित प्रतीत होती है। मैरट के कथन से शिरड के मत का सण्डन हो जाता है। पर इतना स्पष्ट है कि उसमें धार्मिक भावना अवश्य थी और हिन्दुत्व की यह भावना पुनरुत्थानवादी थी।

भारतीय राष्ट्रीयता की एक बलवन्त विशेषता, उसकी राजनीति के साथ धर्म का सहयोग और देशभक्ति के साथ साम्प्रदायिकता का मिश्रण, रही है। २०वीं शताब्दी के शुरू में राष्ट्रीयता के इतिहास में जो उन्नता और आतंकवाद है, वह धार्मिक क्रांति की भावना से भी प्रेरित रहो है। ठाठा ठाकुरदास, बाळ गंगाधर तिलक और बिपिन चन्द्र पाण्डे तथा बरबिन्द देश-भक्त की भावना से उद्बुद्ध थे। उन्हें स्वदेश और स्वदेशी प्यारा था। उनकी राष्ट्रीयता हिन्दू धर्म से प्रेरित थी। बरबिन्द ने कहा कि हमारे सभी आन्दोलनों में स्वतन्त्रता ही जीवन का उद्देश्य है और हिन्दुत्व हमारी सब अभिलाषा की पूर्ति कर लेगा। उनके अनुसार राष्ट्रीयता एक धर्म है जो ईश्वर से अवतरित है।

बाळोच्यकाल में आतंकवादी कार्यों की अत्यन्त तीव्र प्रगति हो रही थी। वेले स्त्री विवेक ने 'हाउ इण्डिया राट फार प्रीज' में कहा कि 'यह उन बन्धों का पानथ प्रयत्न है, जो कुछ बेकार अपराधों के द्वारा अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता पाने का सपना देख रहे हैं।' पर तत्कालीन आतंकवादी प्रगति की तीव्रता देखते हुए यह कथन ठीक नहीं माना जा सकता।

ऐसा राष्ट्र जो व्यापारी हाथ के छतारों पर नाकाम तथा व्यापारियों एवं व्यापारियों को झुक जाता रहता है, अनीनधियों या मरणाङ्गों का राष्ट्र है।

१- पोलिटिकल फिठासकी बाक बरबिन्दो— डा० बी०बी० कर्मा, पृ० १०९

२- इण्डियन नैशनलिस्ट मुवमेण्ट एण्ड पाट— डा०बी०बी०एस० खुर्शी, पृ० १२१



भारत में ऐसी स्थिति नहीं थी, इसलिए उसने आंतिकारी कार्यों द्वारा बत्याचारों तथा दासता का प्रचल विरोध किया। निःसन्देह इससे कोरेडी सत्ता बौखला उठी। सरकार के विरोध में आतंकवादियों ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया।

आतंकवादियों का प्रमुख कार्यस्थल कानून, महाराष्ट्र और पंजाब बना। कानूनी आतंकवादियों की गीता 'मुक्ति कौन पथ' नामक पुस्तक थी। ये महा सम्प्रदाय या वेदान्त के आराधक थे। वेदान्तियों का प्रेरणा स्रोत महात्मा बुद्ध द्वारा गीता में प्रचारित अहिंस और विक्रानन्द के छेद और वक्तव्य थे। मातृभूमि की मुक्ति दिलाने के लिए उनके एक हाथ में कल और दूसरे में गीता रखा करती थी।

तिलक महाराष्ट्र के आतंकवादियों के और ठोठा हृदयात् पंजाबियों के नेता थे। ये सरकारी खाने, सम्पत्तियां छुटने को प्रेरित करते थे। राजनीतिक छैतियों तथा बत्याचारी शासकों की हत्या में उनका विश्वास था। पंजाब के आंतिकारी छैतियों और हत्या के अतिरिक्त सेना को स्वयंसेवक में करके विद्रोह करना चाहते थे और गुरिल्ला युद्ध छेड़ने के विनायकी थे।

इस प्रकार नवयुवक वर्ग में सर्वत्र उद्भूत आंतिकारी भावना व्याप्त थी। कलकत्ता तथा स्वदेशी बान्दीलन की छहर ने 'नवयुवकों' में और जागृति काढ़ी, किन्तु नवयुवक आतंकवादी तथा हिंसात्मक कार्यों के वाक्य थे मातृभूमि की मुक्ति को मुख्य लक्ष्य माने। उनका विश्वास था कि कांग्रेस की अहिंसात्मक आंतिकारी छैतियों के द्वारा भारत का स्वतंत्र होना सम्भव नहीं। "पुरानी राखीयता छोड़ो, हिंसकियाने वाली, नष्टना करने वाली, हानि-हान का संकलन करने वाली, आंचाति विचारों, दुराद्विष्टता तथा स्वार्थ के आधित थी। इसलिए वह कोई प्रभाव उत्पन्न करने में असफल हो गई।" इसलिए ब्राह्मणतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित युवकों ने अहिंसक आंतिकारी द्वारा छेद की मुक्ति का अभियान प्रारम्भ किया। १९०८ ई० में मुम्बईपुर में सुदीराम बोध ने बिठा जब पर क फैला। पर संयोजक बिठा जब के खान पर अन्य कार्य करे। इस अपराध के लिए सुदीराम की फाँसी की सजा मिली



अत्याचार और दमन की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न आतंकवाद विकसित होता गया । १९१० और ११ ई० में क्रांति के अनेक विद्रोह काठ, महाराष्ट्र और मध्यभारत में हुए । इटली तथा रूस के क्रांतिकारियों के समान भारतीय क्रांतिकारियों ने भी सरकार को भिटाने के लिए गुप्त संगठन प्रारम्भ किया । लाला हरदयाल ने गद्दर पार्टी की स्थापना अमेरिका में की । राजा महिन्द्रप्रताप ने भी इस दिशा में काम किया । उनका सम्बन्ध रूस के बोलशेविदों से भी रहा था ।

भारत पर आतंकवादी विचारधारा का महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा । इस आन्दोलन में भारतीय जनता अत्यल्प परिमाण में सम्मिलित थी । उच्चवर्गीय-मीडिकल देशभक्त जनता उनके विरुद्ध कोई काम नहीं करना चाहता थी । उच्चवर्गीय भी इस सम्प्रदाय से मयमीत थे । अतः उनका समर्थन भी इसे प्राप्त नहीं था ।

आतंकवादियों का दमन सरकार द्वारा भी बड़ी बेरहमी से हुआ । अनेक क्रांतिकारियों को मृत्यु वंद दिया गया । प्रस्तुत काल में आतंकवादियों से घबड़ा कर १९१६ई० में सरकार ने रौलट ऐक्ट पास किया । आतंकवादी देश-भक्ति को उत्प्रेत भावना से प्रेरित थे । ये अंग्रेजों की कृपा से अधिकार प्राप्त करना नहीं चाहते थे, बरन् अपनी मुक्ति स्वयं चाहते थे । पर किसी केन्द्रीय संगठन के अभाव में उपर्युक्त परिस्थितियों में आतंकवाद विशेष सफल नहीं हो सका ।

देश की आन्तरिक राजनीतिक परिस्थितियों के अतिरिक्त कुछ विदेशी परिस्थितियों ने भी भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति को पैतना को तीव्र किया । १९०४ई० में रूस पर जापान की विजय, ऐसी घटनाओं में पड़ती घटना है । देश के राष्ट्रीय जीवन को इससे बहुत प्रेरणा मिली । वास्तु किनाकर देश इस नयी प्रेरणा से कर्नव हो गया । इस क्रियाशीलता का रूप का-मंग-आन्दोलन और परबर्ती काल की घटनाओं में द्रष्टव्य है । १९१७ई० में रूस की बारहाही की क्रांति द्वारा समाप्त कर कहाँ गणराज्य की स्थापना हुई है । इस घटना से भी राष्ट्रीय क्रांति को पैतना सक्ति मिली । इस घटना से भारत की निम्नवर्गीय जनता किसानों और मजदूरों में भी पैतना की किरणें फुटीं और वे भी मुक्ति की ओर अग्रसर हुए । इस प्रकार दिन-प्रति-दिन देश में नयेतम पैतना जागसकता बढ़ती गई और राष्ट्रीयता के बीच के अतिरिक्त अन्य विविध चीजों में भी क्रांति-भावना जन-सम्पर्क से पुष्ट एवं क्रियाशील होती गई ।

महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त का मफुल प्रयोग अफ्रीका में किया और वहां गोरों पर अप्रतिम विजय पाकर १९१५ई० में भारत आए । भारतीय राजनीतिक ज्ञान्ति इस विजय से सबल हुई ।

प्रथम महायुद्ध से भारत का प्रत्यक्षातः कोई सम्पर्क नहीं था । इसलिए इसे भी विदेशी घटना हो कहना उपयुक्त है । भारतीय सहायता के बावजूद ब्रिटेन ने भारत को स्वतन्त्रता नहीं दी । आत्म निर्णय के अधिकार की मांग महात्मा को ज्वाला से प्रस्फुटित हुई थी । विश्वयुद्ध ने विश्वभर के लोगों का हृदय तथा मस्तिष्क जनतंत्र के नये दृष्टिकोण के प्रति खोल दिया था ।

इस प्रकार सम्पूर्ण देशी-विदेशी घटनाओं के प्रकाश में यह स्पष्ट है कि भारतेन्दु युग की अपेक्षा, आलोच्यकाल का राजनीतिक जीवन अधिक क्रियात्मक और शक्तिशाली था ।

### झायावाद युग

झायावाद युग का आरम्भ १९२० ई० के आस पास माना जाता है । ज्ञान्ति की दृष्टि से भी १९१० ई० युगान्तरकारी वर्ष है । असहयोग बान्दोलन, राजनीति के रंगमंच पर महात्मा गांधी का बाना, खिलाफत बान्दोलन इसी समय के आस-पास हुए और ये घटनाएं भारतीय जन-जीवन में युगान्तरकारी घटनाएं थीं । इस काल की राष्ट्रीय ज्ञान्ति की भावना सम्पूर्ण राष्ट्र में अलण्ड और शक्तिशाली थी । जन-जीवन एक नयी बेतना से अनुप्राणित हो रही थी ।

इस समय कांग्रेस का इतिहास दलबन्धियों से आरम्भ होता है । इस वर्ष की घटनाएं खिलाफत को लेकर आरम्भ हुई । इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री लॉयड जार्ज द्वारा मुसलमानों को महायुद्ध तुर्की से लड़ने के उपलक्ष्य में कुछ बचन दिए गए थे । पर युद्ध-समाप्ति के बाद ये बचन पूरे नहीं हुए । अतः मुसलमान दुःख हो उठे और अंग्रेजों की अविश्वासी समझने लगे । जिसमें अंग्रेजों ने मुसलमानों को बचन दिया था

जिस्मे  
कि वे जर्जरुल अरब को उनके सभी धार्मिक स्थान--मसीपोटामिया, बरविस्तान, सीरिया, फिलस्तीन-- थे, स्लीफा के अन्तर्गत रखेंगे । पर संधि की शर्तों के अनुसार तुर्की को जाने प्रवेश नहीं दिए गए और उसे ब्रिटेन और फ्रांस ने वापस में बांट लिया । तुर्की का शासन मित्रराष्ट्रों के एक हाई कमिशन द्वारा होने लगा । सुलतान एक कैदी मात्र रह गया । इस विस्थापनात से मारा देश डुब्य हो उठा । प्रतिक्रिया स्वरूप खिलाफती और कांग्रेसी ने अतार के कथानुसार एकत्र हुए और गांधीजी के कथानुसार खिलाफत आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय हुआ ।

बाइसराय से एक शिष्टमण्डल डा० अन्सारी के नेतृत्व में १६ जनवरी, १९२० ई० को मिला । पर परिणाम निराशा ही रहा । १६२० ई० की मार्च में एक शिष्टमण्डल इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री ने मुहम्मदजली की अध्यक्षता में मिला । यह अभियान भी सफल नहीं हुआ । स्पष्टतः प्रधानमंत्री ने कहा कि तुर्की की नीति भी ईसाई राष्ट्रों के साथ बरती जाने वाली नीति हो होगी ।

इन दिनों देश में हिन्दू-मुस्लिम एकता अत्यन्त कम थी । महात्मागांधी ने इसे देखते हुए कहा था कि सौ वर्षों के अन्दर दोनों जातियों की एकता का ऐसा स्वर्ण युग नहीं मिला । वस्तुतः यह काल राष्ट्रीय चेतना का दृष्टि से अत्यन्त कम था । इससे जन-जन के मन में विदेशी शासन के प्रति विद्रोह की भावना भर दी ।

१९२० की १४ मई को तुर्किस्तान के साथ की संधि की शर्तें घोषित हुई । इससे खिलाफत आन्दोलन और राष्ट्रीय-क्रांति की भावना तीव्रतर हुई । गांधीजी ने संधि की शर्तों में संतोष के लिए असहयोग आन्दोलन की घोषणा की । २८ मई को पंजाब की घटनाओं पर इण्डियन रिपीट प्रकाशित हुई । कांग्रेस सदस्यों द्वारा घटनाओं की पूर्ण नियोजित काया गया । माण्टेगु ने कहा कि जनरल डायर ने जैसा उचित समझा उसके अनुसार बिल्कुल नेकनीयती के साथ काम किया । जबकि उससे परिस्थिति को ठीक-ठीक समझने में गलती हो गई । इन कारणों से भारतीय जनता निराश और डुब्य होने लगी ।

सितम्बर महीने में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में हुआ । इस अधिवेशन में तत्कालीन परिस्थितियों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया और कांग्रेस ने गांधीजी के असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव स्वीकृत

कर लिया । गांधी जी का यह असहयोग प्रातिशील अहिंसात्मक असहयोग था, जो कई नेताओं को नहीं रुचा । इनमें मदनमोहन मालवीय, विपिनचन्द्र पाल, चितरंजनदास, श्रीमती रानी बिसेण्ट, जिन्ना आदि इस प्रस्ताव का विरोध करने वालों में मुख्य थे । उसी समय गांधीजी ने सम्पूर्ण देश का दौरा कर, जन-मानस का मन शान्त कर, आशा और उत्साह का नया प्रकाश मरा । संघर्ष को एक नवोन प्रणाली दी । विदेशी सत्ता का और तीव्र विरोध करने के लिए हिन्दु-मुस्लिम सत्ता पर और कल दिया । चुनाव को एक जाल कहकर उसका सण्डन किया । इससे दोनों जातियों में प्रातृत्व भावना का विकास हुआ । राष्ट्रीयता को भावना दृढ़तर होती गई । महात्मा गांधी का असहयोग प्रस्ताव १९२० के नागपुर अधिवेशन में स्वीकृत हो गया । इस प्रस्ताव के विरोधी दास, पाल आदि कांग्रेस त्याग कर उदारवादियों में मिल गए ।

तब बहिष्कारों का युग था । जनता ने मुक्त-हृदय से सरकारों उपाधियों, स्कूल-कालेज, विदेशी वस्त्र, कचहरी, कांसिल फौज तथा सरकारी नौकरियों का बहिष्कार गांधीजी के आह्वान पर किया । जनता को प्रशंसनीय सफलता प्राप्त हुई । देश में यत्र-तत्र कई राष्ट्रीय विभाषीठ स्थापित हुए । भारतीय जनता की स्थिति क देखने के लिए १९२१ ई० में ड्यूक आफ कनाट आए । जनता ने हड़तालों से उनका स्वागत किया । विदेशी वस्त्रों की हौली जली । स्थान-स्थान पर हून सराकियां मो हुई । अंततः उसका रूप साम्प्रदायिक द्वेष से के रूप में प्रकट हुआ । बम्बई में हिन्दु-मुस्लिम-रक्तवारा बही । प्रायश्चित्त के लिए गांधी जी ने जनसम आरम्भ कर दिया ।

इस प्रकार १९२१ ई० में असहयोग तीव्रतर होता रहा । महात्मा गांधी द्वारा शान्तिपूर्ण असहयोग द्वारा एक वर्ष में स्वराज लेने का घोषणा ने इस आन्दोलन को अत्यन्त शक्ति प्रदान की ।

क्रमशः यह आन्दोलन सरकारी नियमों के प्रतिवाद की ओर बढ़ा । इसी क्रम में चोरी चौरा काण्ड हुआ । फलतः वहाँ के किसान सरकारी कर्मचारियों से बपला लेने की ओर उत्तेजित हुए और जन-समूह से प्रेरणा पाकर उन्होंने कई पुलिस विभाषियों की हत्या कर दी । इस हिंसात्मक कार्य से गांधी जी दुःख हो गए । परिणामस्वरूप असहयोग आन्दोलन बन्द कर दिया गया ।

आन्दोलन क्रम में अधिकारियों ने नृशंक्तापूर्वक आन्दोलनकारियों का कमन किया । उनकी यह नीति बाद में भी की रही । २० हजार से भी अधिक

सत्याग्रही इस बान्दोलन में जेल गए ।

१९२२ ई० में साम्प्रदायिक दंगों के कारण हिन्दू-मुस्लिम एकता को मो  
घटका लगा और कार्यतः तथा सिद्धान्ततः सिलाफत तथा असहयोग दोनों ही बान्दोलन  
समाप्त हो गए । जेल से छूटने पर चित्ररंजनदास ने कौंसिल में प्रवेश कर नौकरशाही को  
कुचलने की योजना बनायी । फलतः विभिन्न क्षेत्रों में नौकरशाही सजेत हो गई ।  
जी० डायर ने कहा था, ' उस तरह का ध्वंस प्रकट विद्रोह की अपेक्षा ज्यादा अधिक  
है । ' कांग्रेस की सविनय अवज्ञा समिति के अध्यक्ष की हंसियत ने हकीम अजमल साहं ने  
घोषणा की कि बान्दोलन बर जुका । और उन्होंने असहयोगियों से चुनाव में भाग  
लेने की सिफारिश की और उस रास्ते से स्वराज्य की ओर बढ़ने की कहा । साथ  
ही यह योजना भी थी कि यदि बहुत प्राप्त हो जाए तो सरकार के हर कार्य का  
विरोध किया जाय । महात्मा गांधी कौंसिल में जाने के विरुद्ध थे । इस प्रकार कांग्रेस  
दो धलों में जलने-के-बिस्तृब्ध-धे विभक्त हो गई । कांग्रेस पर गांधीजी का प्रभुत्व था ।  
इसलिए चित्ररंजनदास ने स्वराज पार्टी की स्थापना की और १९२३ के चुनाव में इस  
दल के लोगों ने हिस्सा लिया । मध्यप्रदेश और बंगाल में उन्हें सफलता भी मिली ।  
अन्तर प्रान्तों में भी स्वराजी सफल हुए, पर इनका बहुमत नहीं हो सका ।

स्वराजी विधान सभा में सरकारी नीति का विरोध करने और सभा भवन  
का बहिष्कार भी करने लगे । तेजबहादुर सप्रू ने स्वराजियों की राष्ट्रीयता को  
' लोकोमोशन ' की नाटकीय राष्ट्रीयता कहा था । कई जगह स्वराजी सफल भी हुए ।  
बंगाल में वे बहुमत होने के कारण सफल हुए । उन्होंने मंत्रियों के वेतन सम्बन्धी  
सरकारी बिल को रद्द कर दिया । मध्यप्रदेश में भी उन्होंने सरकार का जोर-शोर से  
सण्डन किया । १९२६ ई० में स्वराजी विधान सभा से वापस आ गए । इनके कार्य बहुत  
वहिक महत्वपूर्ण मंते ही न हों, पर बड़ों की नीति से उन्होंने राष्ट्रीय संघर्ष को  
कायम रखा । निराशा की वह भावना जो असहयोग, सिलाफत तथा सविनय अवज्ञा  
बान्दोलनों की वजह से देश में व्याप्त थी, स्वराजियों की इस क्रियाशीलता से बिटी  
और राष्ट्रीय चेतना बनी रही । लेकिन १९३३ई० और १९२४ ई० देश के अनेक हिस्सों  
में और साम्प्रदायिक कगड़ हुए । दंगों का जोर ब्लाहाबाद, जकलपुर, ताहलबापुर,  
छकमल, नागपुर, गुलर्ग और दिल्ली आदि में रहा । दंगा अपनी बरम सीमा पर देशास  
में हुआ और इस दंगे ने भारत की कवर तौड़ दी ।



इन साम्प्रदायिक दंगों से दुःख होकर, प्रायश्चित्त स्वरूप गांधीजी ने २१ दिनों का उपवास प्रारम्भ किया। १९२५ में भी दंगों का जोर रहा। इसने देश की राष्ट्रीय परम्परा को भारी नुकसान पहुंचाया।

स्वराजियों की अवरोध की नीति भी १९२५ ई० से २७ ई० तक के कार्यों में बराबर नहीं चल सकी। अतः स्वराजियों ने, मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में, केन्द्रीय धारा समा में सरकार से सहयोग प्रारम्भ किया। मालवीय जी और लाला लाजपत राय ने कांग्रेस स्वतन्त्र पार्टी बनाई और देश के हिन्दुओं को अपने फंड के नीचे बाँट दिया। बम्बई में सरकार को झुलकर सहयोग दिया। सुभाषचन्द्र बोस पर क्रांतिकारों की संज्ञा होने का संदेह किया गया। ये भारत छोड़ो, बर्बाद करो गये। स्वराज पार्टी दो हिस्सों में बंट गयी और राष्ट्रीय आन्दोलन का यह मंच भी सूना हो गया। इन दिनों में गांधीजी ने सूत कटाई प्रारम्भ किया। संघ बनाए और सारे देश में इसका प्रचार किया।

राजनीति की दृष्टि से १९२८ ई० सबसे हलकल का वर्ष रहा। इस समय से देश में क्रांतिकारी भावना का पुनः विकास होने लगा। नवयुवकों का जागरण इस समय भी क्रांतिकारी चेतना में अग्नि का काम करने लगा। नवयुवकों ने क्रांतिकारी तथा सामाजिक-वार्तिक सिद्धान्तों पर अधिक ध्यान दिया। इस राष्ट्रीय नव जागरण के रंगमंच पर जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस जैसे नवयुवक नेता उभरे। ये दोनों उग्रवादी विचारों के थे और उनके उत्साही नवयुवक उनके साथ थे।

इस प्रकार १९२७ के बाद राष्ट्रीयता अधिक उग्र और क्रांतिकारी हो चली। इस उग्रता से अंग्रेजी सरकार भी डर और आकृष्ट हुई और भारत में उत्तरदायी शासन लागू करके के बारे में विचार करने के लिए सायमन कमीशन की नियुक्ति हुई। यहाँ यह भी स्मरणनीय है कि १९२७ ई० की मद्रास कांग्रेस ने अपना उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य की जगह 'पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता' घोषित किया था। इस कमीशन में कोई भारतीय नहीं लिया गया था। अतः भारत की जनता के मन में यह भावना बनी कि उनके स्वभाग्य निर्णय की पूरी तरह उपेक्षा की गई है। और इसलिए अपने स्वाभिमान की रक्षा हेतु उसने इस शाही कमीशन के पूर्ण बहिष्कार का निश्चय किया।

३ फरवरी, १९२८ ई० को सायमन कमीशन बम्बई में उतरी। जनता ने उसका स्वागत झुल्लाओं से किया। सिर्फ चाटुकारों को छोड़कर किसी भी देशमत्त ने



सरकार का साथ साम्प्रदायिक कमीशन के स्वागत में नहीं दिया। राष्ट्रीय विचार वालों ने काले मंडों और 'साम्प्रदायिक लोट जावों' के नारे लगाकर सरकारी नौति का विरोध किया। सरकार ने मो मोड़ के धमन का प्रयास किया, उसे जनता और सिपाहियों में मुठभेड़ हुई।

इस कमीशन में भारतीय प्रतिनिधियों को नहीं लेने के कारण में सरकार ने बताया कि साम्प्रदायिक दंगों के कारण वह ऐसा नहीं कर सकी। सभी राष्ट्र-नायकों को यह बात खटक रही थी। साम्प्रदायिकता राष्ट्रीयता का उन्नति में रोड़ा बनकर खड़ी थी। इसी समय मोतीलाल नेहरू ने स्वतन्त्रता के लिए सभी पार्टियों के सम्मेलन की योजना बनायी। फरवरी-मार्च में एक सर्वदल सम्मेलन हुआ, जिसमें कांग्रेस लोग, महासभा, सिखलीग आदि सम्मिलित हुए। उन्होंने नेहरू की रिपोर्ट पर विचार किया। इस सम्मेलन ने राष्ट्रीयता के इतिहास में एक दिशा-संकेत का काम किया, क्योंकि इसके द्वारा देश की स्वयं-भावना एक नये रूप में प्रस्तुत हुई। नेहरू-रिपोर्ट में साम्प्रदायिक आधार पर होने की जाने वाली निर्वाचन प्रणाली को भी मर्त्सना की गई थी। कारण, राष्ट्रीयता को दृष्टि से वह अत्यन्त अनुचित और हानिकारक साबित किया गया था। लेकिन साम्प्रदायिक हिन्दू-मुसलमानों ने इसे मफल नहीं होने दिया।

कांग्रेस कुछ दिनों में फिर से स्वराजियों के हाथ से निकल कर गांधीजी के हाथ में आ गई। गांधीजी ने असहयोग की नीति अपनाने को कहा और टैक्स देना बन्द करने को कहा।

१९२६ ई० की वॉरल में कडोनाल्ड की मजदुरदलोय सरकार के जाने से भारतीय नेताओं में अत्यन्त बाधा और शक्ति का संचार हुआ। इंग्लैण्ड से वापस लौटने पर लार्ड इरविन ने ३१ अक्टूबर, १९२६ ई० को घोषणा की कि इंग्लैण्ड सरकार ब्रिटिश भारत और राज्यों का एक सम्मेलन करना चाहती है। इस सम्मेलन द्वारा वह जानना चाहती थी कि भारतीय जनता सरकार से कहाँ तक समझौता करेगी। सरकार ने यह भी कहा कि वे भारत को वैधानिक प्रगति के माध्यम से औपनिवेशिक स्वराज्य देना चाहते हैं। उदारवादियों ने सरकार से सहयोग करना स्वीकारा। लेकिन गांधीजी उसमें सम्मिलित नहीं हुए, क्योंकि वे बाबूराय से यह आश्वासन चाहते थे कि सम्मेलन में औपनिवेशिक स्वराज के आधार पर बातें की जाएंगी।

पर वास्तराय ऐसा कोई वाश्वासन नहीं दे सके थे ।

१९२६ ई० में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ । उस समय का वातावरण सरकार की समझौते की अफ़लता के कारण निराशामय था । इस अधिवेशन के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू चुने गए । यह उस बात का बीतक था कि अग्रणी कांग्रेसियों ने प्रत्यक्ष कार्यवाही की नीति को अपनाने का निश्चय किया है । जवाहरलाल ने भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध छुलो लड़ाई लड़ते हुए स्वयं को समाजवादी घोषित किया । उनका विश्वास गुप्त संघर्ष की नीति पर नहीं था । उन्होंने कहा कि अब वे परिस्थितियाँ परिवर्तित हो गयी हैं कि जिनमें गोलमेज परिषद् में सम्मिलित होकर औपनिवेशिक राज्य लिया जाय । कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की अपना ध्येय राशो तट पर घोषित किया साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि स्वतंत्र भारत कामनवेल्थ में किसी प्रकार सम्बन्धित नहीं रहेगा ।

२६ जनवरी, १९३० ई० भारतीय स्वातंत्र्य इतिहास का क्रांतिकारी दिवस माना जायगा, जब सम्पूर्ण देश के कोने-कोने में तिरंगा फण्डा फहराते हुए पूर्ण स्वराज्य की घोषणा की गई । इसी समय सरकार सर सहयोग नहीं करने की प्रतिज्ञाएं भी फुहराई गई । इन आयोजनों से देश की शक्ति और उत्साह पर नया प्रकाश पड़ा । लोगों ने इसे ही कार्य करने का उपयुक्त अवसर समझा । फरवरी १९३० तक कांग्रेस द्वारा वास्तुतः सविनय अवज्ञा आन्दोलन में १७२ विप्लव विधायकों ने विधान सभा से त्यागपत्र दे दिया ।

गांधी जी को कांग्रेस कार्य समिति की ओर से सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करने की अनुमति मिल गई । गांधी जी ने इसकी घोषणा करते हुए कहा :

“मुझे मिशनरी के राजनीति पर विश्वास था । पर सदा व्यर्थ हुआ । मैं जान गया कि सरकार को सीधा करने का यह उपाय नहीं है । अब तो राजद्रोह ही मेरा कर्म हो गया है । पर हमारी लड़ाई अहिंसा की लड़ाई है । हम किसी को मारना नहीं चाहते, पर हम सत्यानाही शासन को सत्प कर देना हमारा परम कर्तव्य है ।”

१- कांग्रेस का इतिहास : फ़्टामि सीतासैया, पृ० ३०६

गविनय अवज्ञा के सन्दर्भ में उन्होंने नमक कानून मंजूर करने का निश्चय किया। साबरमती जात्रा से अपने ७६ साथियों सहित, नमक कानून मंजूर करने के लिए उन्होंने बंदी के स्मृद्र तट को ओर प्रस्थान किया। यह ऐतिहासिक अभियान था। साबरमती में ७५ हजार किसानों ने भारत स्वतंत्र होने तक विश्राम नहीं लेने को प्रतिज्ञा की। देश के कोने कोने में नमक कानून मंजूर हुआ। गांधी जी को अप्रतपूर्व सहयोग और समर्थन मिला। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक राष्ट्रीय क्रान्ति-केतना की धारा बहने लगी।

बाम्बे क्रानिकल ने इस अवसर का बड़ा ही सुन्दर चित्र उपस्थित किया है :

‘इस महान अवसर पर देश प्रेम को जितनी प्रबल धारा बह रही थी उतनी पहले कभी नहीं बहती थी। यह एक महान बान्दोलन का महान आरम्भ था और निश्चय ही भारत की राष्ट्रीय स्वतंत्रता के इतिहास में इसका महत्वपूर्ण स्थान रहेगा।’

गांधी जी नमक कानून तोड़ने के अपराध में ५ अप्रैल को कैद किए गए। उनकी कैद से देश भर में बान्दोलन आरम्भ हो गया। प्रत्येक वर्ग को पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति में सहयोग के लिए आमंत्रित किया गया। करबन्दी, नशाबन्दी तथा विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार सम्पूर्ण देश में फैल गया। इस स्वराज्य बान्दोलन में प्रत्येक वर्ग में समुचित सहयोग दिया। यहां स्पष्ट है कि कांग्रेस की इस कार्यवाही के आरम्भ में प्रकट: आर्थिक राष्ट्रीय-क्रान्ति की केतना थी।

सरकार द्वारा भी कमन कार्य जोर-शोर से आरम्भ हुआ। स्थान-स्थान पर लाठी चार्ज हुआ। देश एक जलजाने सा हो गया। औरतों के साथ नृशंसतापूर्ण कार्य हुए। विधायी और शिक्षक पीटे गये। लम्बी-लम्बी सजाएं दी गयीं और कितनों की सम्पत्ति जब्त कर ली गई।

इन्हीं दिनों जून, १९३० में साकन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट दी, जिसमें भारतीय भावना की वृद्धि उल्लेख थी। इससे बान्दोलन को और बल मिला।

बान्दोलन के विकास के साथ ही देश में क्रान्तिकारी कार्य भी तेजी से होने लगे। क्रान्तिकारियों ने चटगांव के हस्वागार को अप्रैल, १९३० में छूट लिया। सोलापुर में विद्रोह फूटा और सम्पूर्ण शहर विद्रोहियों के कब्जे में आ गया। १९३० में ही मलतसिंह ने सरकारी नीति के विरोध में विद्रोह प्रकट करने के लिए अहमदाबाद में का

फेंका । इस वर्ष के उत्तरार्द्ध में सम्भवतः ऐसा कोई सप्ताह नहीं था, जब किसी अंग्रेज अधिकारी पर का न फेंका गया हो ।

वान्दोलन और जातक के इस परिवेश में मध्यवर्गीय तथा पुंजीपति वर्गों के ऊब चुके थे । अतः वे चाहते थे कि सरकार और कांग्रेस में समझौता हो जाए । समझौते के लिए उदारवादी नेता तेजबहादुर सप्रू और जयकर कांग्रेसी नेताओं और वाइसराय से मिले । अन्य शर्तों के साथ ही कांग्रेस ने जर्ज और सुरदास पर पूर्ण अधिकार के साथ भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी शासन की मांग रखी । वाइसराय इससे सहमत नहीं हो सके । अतः प्रथम गोलमेज परिषद् में कांग्रेस सम्मिलित नहीं हो सकी । लार्ड जेटलेण्ड ने इसे राजनीतिक बुद्धिमत्ता से रहित अद्वितीय कार्य कहा । वस्तुतः द्वितीय परिषद् में सम्मिलित होकर कांग्रेस वैधानिक शासन की दिशा में कोई विशिष्ट महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकी<sup>१</sup> ।

१२ नवम्बर १९३० को प्रथम गोलमेज परिषद् प्रारम्भ हुई । प्रधानमंत्री मेकडॉनल्ड ने परिषद् को भारत के भावी विकास का प्रारम्भ तैयार करने का भार दिया, लेकिन वह भार भी पूर्ण नहीं था । उन्होंने संघात्मक शासन प्रणाली की स्थापना को अपना ध्येय बताया और सुरदास तथा वैदेशिक विभाग को सुरक्षित विषय बताकर वाइसराय के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत दे दिया । कांग्रेस ने उसमें भाग नहीं लिया । उन्हें ब्रिटिश भारत, भारतीय राजाओं तथा ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया । इस परिषद् द्वारा मजदूर कृषीय सरकार इस तथ्य से अवश्य परिचित हो गई कि भारत द्रुत औपनिवेशिक स्वराज्य चाहता है ।

मुसलमानों ने अपने सम्प्रदाय की सुरक्षा के लिए परिषद् में जोरदार अपील की । हिन्दू प्रतिनिधि सफलतापूर्वक इसका विरोध नहीं कर सके । सुभाषचन्द्र बोस के शब्दों में "गोलमेज परिषद् ने भारत को दो ब कड़वी गोलियाँ दीं, सुरदास और संघ की । इन गोलियों को मीन्य बनाने के लिए उनके ऊपर उत्तरदायित्व की बोनी लपेट दी गई थी ।"<sup>२</sup>

सरकार द्वारा गोलमेज परिषद् की कार्रवाई पूरी तो हुई पर कांग्रेस के अभाव में यह सम्प्रदायवादियों और प्रतिक्रियावादियों का सम्मेलन छिड़ हुई । वाइसराय

१- इंडियन नैशनलिस्ट मुकमेंट एण्ड थाट-- डा०बी०पी०एस० रघुवंशी, पृ० २१२, १९६५ ई०

२- दी इण्डियन स्ट्रगल--सुभाषचन्द्र बोस, पृ० २७५

ने महात्मा गांधी से सहयोग मांगा। प्रधानमंत्री ने भी अपनी सहमति प्रकट की।

सरकार इस विषय में सचेष्ट थी। इसीलिए उसने गांधीजी को बिना शर्त के, उनके १६ माथियों के साथ, मुक्त कर दिया ताकि वे सम्मेलन के सम्बन्ध में विचार विमर्श कर सकें। कांग्रेस ने भी सम्मेलन को स्वीकारा और घोषणा की कि इस समय कोई नया आन्दोलन आरम्भ न किया जाय।

गांधी हरबिन सम्मेलन ५ मार्च, १९३१ को सम्पन्न हुआ, जिसमें गांधी जी ने अनिवार्य अवज्ञा आन्दोलन वापस लेने और गोलमेज परिषद् में हिस्सा लेना स्वीकार किया। सरकार ने भी कई शर्तों को स्वीकार कर लिया। उनमें प्रमुख थे—राजनीतिक बन्धियों की मुक्ति, अधिनिर्वासों को वापस लेना, जप्त सम्पत्ति लौटाना, सुदूर के किनारे रहने वालों को बिना टैक्स समक बनाना तथा नशाबन्दी का शक्तिपूर्ण विरोध करने की छूट देना भी स्वीकार किया। महात्मा जी की इस स्वीकृति से कई लोगों ने उन पर शक्तिशाली जन-आन्दोलन को पक्षग्रस्त करने और स्वराज्य संघर्ष को झोंड़ने का आरोप लगाया। कुछ वालोचकों ने डुब्ब होकर उसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति भारतीय राष्ट्रियता का समर्पण मान कहा। लेकिन महात्मा जी इस सम्मेलन को अपनी विजय मानते थे। पर नवयुवक इसके विरुद्ध थे, क्योंकि हाल में हो सरदार वल्लभभाई पटेल की फांसी मिली थी।

१९३१ में ही हिन्दू-मुस्लिम वंगा अपने बीच-बाँटन रूप में कानपुर में हुआ। इसमें गणेश शंकर विचार्य मारे गए। सम्पूर्ण देश में <sup>इससे</sup> सौम्य और दुःख इससे व्याप्त हो गया।

अत्यन्त वाद-विवाद के बाद १९७९ की करांची कांग्रेस ने सम्मेलन के प्रस्ताव को स्वीकृति दी और कांग्रेस प्रतिनिधि के रूप में मात्र गांधी जी २६ अगस्त १९३१ को द्वितीय गोलमेज परिषद् में शामिल होने के लिए एंग्लैण्ड चले।

लेकिन वहाँ १६ अगस्त को मजदूर सरकार द्वारा हस्तिका दिए जाने और खुदवार दल की नई सरकार हो जाने के कारण, परिस्थितियाँ भिन्न थीं। अतः गोलमेज परिषद् यकाने वाली वाइम्बरपूर्ण वाद-विवाद समिति मात्र बनकर रह गई।

इस परिषद् में गांधी जी साम्प्रदायिक समस्याओं का समाधान चाहते थे। लेकिन उनकी सारी चेष्टाएँ भारतीय राजाओं और सम्प्रदायवाधियों के संयुक्त प्रयास से निष्फल हो गयीं। डा० बम्बेकर ने भी दलित जातियों का प्रभावपूर्ण



चित्रण करते हुए हिन्दुओं के साथ रहना अव्यवहार कर दिया । पं० मालवीय जैसे हिन्दू नेता भी गांधी जी के विरोधी थे । अन्ततः दलित वर्ग, मुस्लिम, भारतीय ईसाई, आंग्ल भारतीय और ब्रिटिश सरकार के सदस्य संयुक्त रूप से स्वयं राष्ट्रियता के पक्षधर गांधी जी के विरुद्ध हो गए और पृथक् चुनाव की मांग करने लगे । महात्मा गांधी ने अत्यन्त दुःस के साथ कहा कि वे साम्प्रदायिक समस्याओं के समाधान में सफल नहीं हो सके ।

१ दिसम्बर १९३१ को परिषद् की कार्यवाही समाप्त होने पर गांधी जी ६ दिसम्बर को इंग्लैण्ड से भारत के लिए रवाना हुए । अभी वे रोम में हो थे कि 'लन्दन टाइम्स' ने एक इटालियन प्रेस रिपोर्टर की रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमें कहा गया था कि वे पुनः संघर्ष आरम्भ करने जा रहे हैं । यह संवाद स्कन्म गलत था । २८ दिसम्बर को वे भारत आए और ४ जनवरी, १९३२ को फिर से कैद कर लिए गए । इस गिरफ्तारी से संघर्ष फिर से आरम्भ हो गया । बान्दोलन की प्रगति के साथ ही सरकार की बहुसूत्री वातकवादी दमन भी प्रगति करता गया । कांग्रेस नेताओं को लम्बी लम्बी कैदें हुईं ।

मुसलमान सरकार के साथ हो गए । मौलाना हाकिम अली ने बम्बई में बहिष्कार बान्दोलन को ज़ुती दी । फलतः हिन्दू-मुस्लिम उद्वेगना बढ़ी और मई में साम्प्रदायिक दंगा आरम्भ हुआ । दलित वर्ग भी मुसलमानों की राह पर था । शहर की दशा साराब होती गई, पर नौकरशाही प्रशस्तिता के साथ चुपचाप सब देखती रही ।

८ अगस्त १९३२ को मेकडानाल्ड ने एक खास प्रकाशित किया, जिसमें अल्पसंख्यक जातियों के लिए पृथक् निर्वाचन का विधान बनाया गया था । मुसलमानों के लिए भी स्थान सुरक्षित था ही, सिखों और दलित वर्ग के लिए भी स्थान सुरक्षित कर दिया गया । यह सब भारतीय सदस्यों के साम्प्रदायिक समस्याओं के सुलझाने में असफल होने के कारण किया गया । ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा हिन्दू सम्प्रदाय में भी फूट डालने के कारण महात्मा गांधी डाकू हुए और उन्होंने वावरण अनशन प्रारम्भ किया ।

इस कार्य से हिन्दू जनता अत्यन्त उत्तेजित हो उठी । मालवीय जी द्वारा हिन्दुओं की एक सभा बुलाई गई । उसमें डा० अम्बेदकर भी थे । गांधी जी की प्राणरक्षा के लिए समझौते का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ । सरकार द्वारा प्रत्येक मुस्लिमों



से असन्तुष्ट डा० अम्बेदकर ने माँके का लोम उठाकर दलित वर्ग के लिए अधिक स्थानों की मांग की । दलित वर्ग को प्रान्तीय विधान सभा में सरकार द्वारा ७१ स्थान मिला था । अब १४८ स्थान देना तय हुआ और इस वाक्य का एक समकौता हुआ जो पूना-समकौता के नाम से अभिहित किया गया । गांधी जी द्वारा हुई इस सिफारिश को सरकार ने भी स्वीकार कर लिया । फलतः कांग्रेस के साथ दलित वर्ग भी हो गया और अकूतोदार का बान्दोलन तीव्र गति से प्रारम्भ हुआ ।

अकूतोदार बान्दोलन के तीव्र सक्रियता से सविनय अवज्ञा बान्दोलन की गति निष्क्रिय हो गयी । तृतीय गोलमेज परिषद् १९३२ ई० में लन्दन में हुई । इसमें एक तरफ तो राजपूत और प्रतिश्रियावादी ब्रिटिश अधिकारियों के साथ मिल कर भारत के माग्य पर विचार कर रहे थे और दूसरी तरफ जब भारत में देशमकों पर जेल में कौड़ी पड़ रहे थे । क्रमशः सविनय अवज्ञा बान्दोलन बढ़ होता गया । पर कुछ न कुछ धीमी गति में ही गांधी जी के जेल मुक्त किये जाने की तिथि अर्थात् ८ मई १९३३ तक यह चलता रहा ।

मुक्ति के पश्चात् ६ सप्ताह के लिए गांधी जी ने बान्दोलन बन्द कर दिया । कारण, जाडिन्सों से जनता मयाग्रान्त थी तथा देश में हिंसावृत्ति बढ़ रही थी और अहिंसा के पावन सिद्धान्त को बक्का लग रहा था । सामुहिक रूप से बान्दोलन स्थगित था पर राष्ट्रीय सम्मान के हेतु व्यक्तिगत बान्दोलनों का क्रम १९३४ के मार्च तक चलता रहा ।

क्रमशः लोम पदों की और वाकृष्ट होने लगे । कौंसिल-प्रदेश का लोम जगा । १९३३ के मार्च में डा० अन्सारी की अध्यक्षता में सविनय अवज्ञा बान्दोलनों की एक सभा हुई । सभा ने फिर से निर्वाचन में सम्मिलित होने वालों के लिए, मतदाताओं को संगठित करने का निश्चय किया । इसी कांग्रेस ने भी सहमति प्रकट की । गांधी जी ने भी इसे स्वीकृति दी परन्तु स्वयं को उन्होंने सविनय अवज्ञा बान्दोलन में ही लगाए रक्ता ।

१९३४ के कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन में कौंसिल प्रदेश के प्रभाव से सहमति प्रकट की ।

सरकार ने भारत के वैधानिक विकास का प्राक्म तैयार करते हुए एक श्वेत पत्र मार्च १९३३ में विज्ञापित किया । इसमें प्रकाशित साम्प्रदायिक स्वाई से देश बौल्ला उठा । मुसलमानों द्वारा इसे समर्थन मिला जब कि हिन्दू इसके एकम विरोधी

थे । गांधी जी इस विषय में स्पष्ट नहीं थे । स्वाई ने कांग्रेस में मतभेद पैदा कर दिया । मालवीय जी और अणु ब ने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया । उन्होंने कांग्रेस राष्ट्रीय दल का संगठन किया । इन दिनों हिन्दू और मुसलमान बहुत उत्तेजित थे ।

श्वेत पत्र के आधार पर को भारतीय कानून को राजकीय स्वीकृति ४ अगस्त १९३५ को मिला । इसमें अधिक भारतीयों को मतदान का अधिकार दिया गया था तथा प्रान्तीय स्वराज्य भी स्वास्थ्य शिक्षा और जायिक कल्याण के क्षेत्र में मिला था ।

कौंसिल प्रवेश के विषय में भी कांग्रेस में मतभेद था । दक्षिणपंथी नेता विधान के अनुसार कौंसिल प्रवेश के हक्क थे पर नेहरू तथा बोस जैसे वामपंथी इसके विरोधी थे । १९३६ में नेहरू ने निर्वाचन में हिस्सा लेने का विरोध करते हुए कहा कि हमने जिस महान कार्य के लिए संकल्प लिया है, उसके लिए विश्राम नहीं करना है । यदि हम ऐसा करते हैं तो देश के करोड़ों लोगों के साथ विश्वासघात करते हैं । सुभाषचन्द्र बोस ने इसे पराजय और समर्पण कहा । जय प्रकाश और नरेन्द्र देव जैसे समाजवादी विरोध में कांग्रेस समिति की बैठकों से कई बार बाहर चले गए । पर राजा जी पटेल, राजेन्द्र प्रसाद और महात्मा जी भी कौंसिल-प्रवेश के समर्थक थे । दोनों दलों में गांधी जी ने सुलह कराया और कांग्रेस ने निर्वाचन में हिस्सा लिया । बिहार, उड़ीसा, मद्रास, युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और बरार में कांग्रेस की बहुमत मिला । जन बन्धु, कंगाल, वासाम और उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त में कांग्रेस एकमात्र बड़े दल के रूप में चुनी गई । पंजाब और सिंध में बहुत उत्प मात्रा से यह पराजित रही । निराश और बाक्रान्त भारतीय जनता के मानस में, चुनाव के की इस विषय से, राष्ट्रीयता सम्बन्धित माकनारं बढ़ हुई और प्रतिक्रियावादियों के इस कथन के कारण जवाब मिला कि भारतीय राष्ट्रीयता अब सत्य हो चली है ।

इस युग के उत्तरार्ध में भारत में समाजवाद आया । जवाहरलाल नेहरू ने भी इसी समय अपने को समाजवादी कहा, भारत में कम्युनिस्ट संघ १९२८ ई० के बाद पाठ का । कम्युनिस्ट पार्टी ने मजदूरों तथा किसानों में कार्य-क्षेत्रता उत्पन्न की । लोक व्यवस्था पर पूंजी और श्रम में विवाद हुए । साम्यवाद लोकप्रिय होता गया, क्योंकि यह मजदूरों और किसानों की समस्याओं पर ध्यान देता था । १९३४ ई० में कांग्रेस ने भी समाजवादी दल की स्थापना की । १९३७ के बाद समाजवाद भारत के जीवन में अधिकाधिक लोकप्रिय होता गया । इससे जन-क्षेत्रता विकसित होती ही रही,

साथ ही संघर्ष-भावना भी बढ़ती गई। उन दिनों शोषण के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रियाएं हुईं।

### प्रगतिवाद युग

समाजवाद ने आगमन ने भारतीय राष्ट्रीयता में उग्र क्रान्तिबादिता भर दी थी। आलोच्य-काल की राजनैतिक परिस्थितियां कांग्रेस द्वारा सरकारी सहयोग से प्रारम्भ होती हैं। रूपर कहा जा चुका है कि कांग्रेस कई प्रान्तों में बहुमत प्राप्त कर चुकी थी। निर्वाचन के सन्दर्भ में नेताओं ने देश भर में लोबखी मागण दिया। इन सब कारणों से कांग्रेस तथा राष्ट्रीय चेतना तीव्र और सक्रिय हो गई। आशा और विश्वास का वातावरण व्याप्त हुआ, लेकिन इस विश्वास में बलिदान एवं उत्सर्ग नहीं बल्कि विधान का नाग्रह था। राष्ट्रीय चेतना ने प्रतिक्रियावादियों को बक्का लगा। लोगों की यह निराशा समाप्त हो गई कि राष्ट्रीय चेतना समाप्त प्राय है। इसी राष्ट्रीय जागरूकता और उन्नता के परिवेश में कांग्रेस का मंत्रिमण्डल में प्रवेश हुआ।

जून, १९३७ में लार्ड लिंलिथगो ने जो उस समय वायसराय थे, एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें सरकार की ओर से कांग्रेस को पूर्ण सहयोग देने की बात कही गई। १९३७ ई० की जुलाई में कांग्रेस की स्वतंत्र सरकार ६ प्रान्तों में और २ प्रान्तों में संयुक्त सरकार स्थापित हुई। और इस प्रकार वे जो, सरकार के विरोधी थे, अब हिज मजिस्टी के शासन के सुत्रधार बने, पर आगे के शासन के परिणामस्वरूप कांग्रेस के कार्यक्रमों में जैक बाधाएं उत्पन्न हुईं। फल यह हुआ कि वह किसी भी महत्वपूर्ण कार्य में सफल नहीं हुईं।

जाने चकर १९३८ में सुधारवादी तथा समकौतावादी दृष्टिकोण और कार्य के चलते कांग्रेस में विषम पैदा हो गया। जैक कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बनाने के विरोधी थे। पर सुधारवादियों ने विरोध की परवाह न कर सरकार का साथ दिया। फलतः शीघ्र ही तीव्र हुआ और उसका १९३८ में उसका प्रत्यक्षीकरण हुआ।

सुधारवादी नेता गांधीवादी होते हुए भी अत्यन्त सहिष्णु और धैर्यवादी थे। इसलिए वे जैक सरकार को मिटाने के लिए राष्ट्रीय शक्ति का उपयोग नहीं करना चाहते थे, बल्कि हर तरह से सरकार के सहयोग के लिए प्रसूत थे। इनमें साम्राज्यवाद

प्रमुख थे राजा जी तथा सरदार पटेल । ये ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध द्वारा नाजीवाद के चरणों को बढ़ाने के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीयता के संदर्भ में वे ब्रिटिश सरकार को जनतंत्र का पक्षधर और समर्थक मानते थे । यही कारण था कि वे सरकार के साथ समझौता करने के समर्थक थे ।

सुभाषचन्द्र बोस वामपंथी दल के पक्षधर थे । उन्हें उदारवादियों की सुधार और समझौते की नीति स्कन्द पसन्द नहीं थी । जतः वे इस नीति के तोग्र आलोचक थे । महायुद्ध की अनिवार्यता को उन्होंने पहचान लिया था । उसमें इंग्लैण्ड पर जाने वाले संभावित विपत्तियों को भी उन्होंने समझा था । ब्रिटेन पर जब नाजीवाद की बढ़ती हुई ताकत आक्रमण कर, उसी समय उसे एक बक्का देकर वे समाप्त कर देना चाहते थे । प्रतिस्पर्धियों की परवाह उन्हें नहीं थी । विदेशी साम्राज्यवाद को भारत से मिटाने के लिए वे हिंसात्मक कार्यों के भी पक्ष में थे । मजदूरों और किसानों में वे शोचण की विमोचिका दिखाकर तोग्र असंतोष फैला देना चाहते थे । इस विरोधी गांधीवादी रुख में साम्यवादियों और समाजवादियों ने भी उनका साथ दिया । जी० अधिकारी, जो प्रमुख साम्यवादी थे, ने लिखा कि कांग्रेस का रास्ता मीरुतापूर्ण और समझौतावादी पूँजीपतियों का था ।

उदारवादी कांग्रेसी ब्रिटेन का विनाश कर, स्वतन्त्रता के पक्ष में नहीं थे । न ही वे स्वराज्य के लिए सरकार को अंतिमेल्यम् देने के पक्ष में थे । १९३६ई० में त्रिपुरी अधिवेशन के सभापति के निर्वाचन को इस विरोधी परिस्थिति ने अत्यन्त उलझा दिया । वामपंथियों के आग्रह से सुभाषचन्द्र बोसनेफिर से अध्यक्ष पद का उम्मीदवार बनना चाँहा । लेकिन उदारवादी इसके पक्ष में नहीं थे, क्योंकि इसी कांग्रेस की समझौतावादी नीति को बक्का लगता । इसलिए उदारवादियों ने डा० फट्टामि सीतासैया को उनके विरोध में उठा किया और उनके पक्ष में स्पष्टतः प्रचार किया ।

इन विरोधी विह्वलन परिस्थिति में अध्यक्षता निर्वाचित हुए । २०३ के चुनाव से सुभाषचन्द्र बोस अध्यक्ष की । गांधी जी ने इस चुनाव पर कड़ी प्रकट करते हुए भी फट्टामि सीतासैया को हार को कमो हार कहा । लेकिन त्रिपुरी अधिवेशन में उदारवादियों की ही चली रही, क्योंकि बीमारी के कारण सुभाष बाबू कुछ न कर सके । फिर गांधीवादियों की धनिकों और जनता का क भी सहयोग प्राप्त था । इस प्रकार १९०७ के प्रारम्भ वामपंथी तथा उदारवादी विचारों का संघर्ष समाप्तप्रायः

हो गया । दुःख होकर सुभाषचन्द्र ने कांग्रेस से सम्बन्धविच्छेद कर, फारबर्ड ब्लॉक के को स्थापित किया ।

द्वितीय महायुद्ध १९३९ के सितम्बर में प्रारम्भ हुआ । केन्द्रीय द्वारा सभी की अनुमति और ही भारत के गवर्नर जनरल ने भारत को इस युद्ध में सम्मिलित कर लिया । गांधी जो इस अनुत्तरदायी कार्य के प्रति दुःख रहे । कांग्रेस ने सरकार से युद्ध-नीति जानना चाहा । और वह युद्ध में उस क्षण पर सम्मिलित होना स्वीकार किया कि युद्धोपरान्त भारत स्वतन्त्र राज्य घोषित हो, लेकिन सरकार ने ऐसा कोई आश्वासन नहीं दिया । नवम्बर, १९३९ में कांग्रेस मंत्रिमंडल ने कांग्रेस कार्य समिति के आदेश से पद त्याग दे दिया । इससे सभी मान्ती में गवर्नरों के शासन का प्रारम्भ हुआ । १९३५ ई० में साम्राज्यवाद से झुलह कर, कांग्रेस ने मंत्रिमंडल में जाने का निर्णय लिया था , पर यह दिशा अधिक ठीक नहीं कही जा सकती, क्योंकि इसके साम्प्रदायिक घरातल पर शासन हस्तगत करने को प्रोत्साहन मिला । मुस्लिम सम्प्रदायवादियों को इस कथन का सुनहरा अवसर मिला कि कांग्रेस का ध्येय हिन्दू राज्य की स्थापना है और उन्होंने इस बात को अधिकाधिक प्रचारित भी किया । फलतः हिन्दू मुस्लिम केमनस में वृद्धि हुई और एकता का ह्रास हुआ । २२ दिसम्बर १९३९ को मुस्लिम लीग ने मुक्ति दिवस मनाया, क्योंकि उस दिन कांग्रेस राज्य समाप्त हुआ ।

साम्राज्यवाद को भारत की स्वतन्त्रता को बस्वीकृत करने का वाधार हिन्दू-मुसलमान के बिगड़ते हुए सम्बन्ध को बताया । लार्ड लिंलिथगो ने कहा कि सरकार द्वारा किसी निश्चित नीति की घोषणा नहीं किए जाने का कारण बल्फमर्ती, देशी राजाओं और पूंजीपतियों की सुरक्षा के प्रश्न से सम्बद्ध है । १९४० की जनवरी में उन्होंने गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी समिति को विस्तृत कर कुछ राजनीतिक नेताओं को लेने की घोषणा की । इस दिशा में उन्होंने कांग्रेस के युकाओं को स्वीकृत नहीं किया । अतः सदा की मांति कांग्रेस के सामने इस बार भी असह्योग ही रास्ता बना ।

मार्च, १९४० में रामनद के कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य के बड़े ध्वज को न लेने की घोषणा हुई । इस अधिवेशन में भारत के लिए विधान निर्मातु सभी की भी मांग की गई \* जो भारत का विधान स्वतन्त्रता, जनतंत्र और राष्ट्रीय एकता के आधार पर बनाये । जनता से भी यह कुरीय किया गया कि राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग ले । युद्ध-विरोध आन्दोलन नवम्बर १९४० में प्रारम्भ हुआ । जेक सत्याग्रही जेल भेजे गए । यह संघर्ष निष्क्रिय था । फलतः



अंग्रेजी सरकार इससे नहीं हिली और १९४९ तक यह समाप्त हो गया ।

इस काल में राष्ट्रवादी नेताओं के अतिरिक्त कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा भी जन-संघर्ष शुरू हुआ था । जनतांत्रिक और तानाशाही साम्राज्यवादी शक्तियाँ ही इस समय युद्ध में लड़ रही थीं । इस-युद्ध में चल रहा था । पर नाजी जर्मनी द्वारा रूप पर हथला किए जाने पर ब्रिटेन आदि जनतांत्रिक साम्राज्यवादियों ने इस के से युद्ध-समकौता किया । तत्पश्चात् मारताय कम्युनिस्ट पार्टी को दिशा परिवर्तित हो गई । इस के सम्मिलित होने पर उने युद्ध को जन-युद्ध कहा और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध स्वतन्त्रता के लिए किए संघर्ष का विरोध प्रारम्भ किया । 'राष्ट्रीय जन-संघर्ष' से दूर रह कर तथा उसका विरोध कर कम्युनिस्ट पार्टी ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संघर्ष को बोला दिया ।

कम्युनिस्ट पार्टी राष्ट्रीयता को काँ केतना के माध्यम के रूप में मानती थी । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मजदुर राज्य स्थापित करना उसका उद्देश्य था । अतः वह राष्ट्रीय नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से प्रभावित थी । मास्को उसका केन्द्र था । अतः वह नवा मास्को की ओर देखता रहा और उसका निर्देश स्वीकार कर अपनी नीतियाँ बनाता रहा । इसीलिए इस के युद्ध में शामिल होते ही विश्व युद्ध जनता का युद्ध हो गया । 'जन-युद्ध की ज्वरोन्मत्ता में उसने सुमाच बोस को 'भारतीय स्वतन्त्रता का गद्दार' 'जापानी साम्राज्यवाद का पिछ्छू' और जापानी तानाशाहों के पीछे दौड़ने वाला कुत्ता' कह कर सम्बोधित किया था । 'जब कि हर भारतीय स्वातन्त्र्य के इच्छुक व्यक्ति के ये शब्दास्पद हैं । इसी आधार पर कम्युनिस्ट पार्टी ने १९४२ ई० के के कास्त क्रान्ति का भी विरोध किया ।

इस प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष की प्रगति में, कम्युनिस्ट पार्टी इस काल में अवरोधक बनी रही । कम्युनिस्ट पार्टी को इस दृष्टिकोण से अराष्ट्रीय भी कहा जा सकता है ।

सोवियत इस के विरुद्ध जर्मनी ने वही बीच युद्ध की घोषणा कर दी । पूरी राष्ट्रों के आक्रमण के शिकार चीन और र इस के प्रति भारतीय जनता के मानव में सहानुभूति बनी और उसका प्रदर्शन कई-कई माध्यमों से हुआ । इसी समय जापान की

१- रीसेण्ट ट्रेण्डस इन इण्डियन नेशनलिज्म—ए० आर० देसाई, पृ० २६, सन् १९६० ई०

२- छी डरलीप एण्ड पोलिटिकल इन्सिड्यूसिज्म आफ इण्डिया - पार्क और टिन्डर,

पृ० ८२-८३, सन् १९६० ई०



युद्ध में सम्मिलित हो गया । जापान की प्रारम्भिक जीतों से साम्राज्यवादी बोल्ला उठे । अब सतरा भारत के द्वार पर था, इसलिए भारतीय भी पराजित थे ।

इस घटना ने भारत के राष्ट्रवादी नेताओं की विचारधाराओं को प्रभावित किया । फलतः उनकी नीति भी परिवर्तित हुई । जवाहरलाल नेहरू और राजा जो इस पक्ष में थे कि इस शर्त पर सरकार से समझौता किया जाय कि देश में उत्तरदायी राष्ट्रीय सरकार बने । उसका समर्थन कांग्रेस कार्य समिति ने भी किया ।

१९४२ ई० के शुरू में श्री और थोमस मार्शल ज्वांग काई शेर भारत आए और एक साथ ही ब्रिटेन और भारत से शत्रुओं का विरोध करने का मार्मिक अपील की । साम्राज्यवादी शक्ति जापानों विजय से आक्रांत हो गयी । मित्र राष्ट्रों की स्थिति सतरे से पूर्ण थी । सबसे बड़ा प्रश्न था एक होकर युद्ध करने का इसलिए बर्लिन सरकार भी सहयोग की दिशा में अग्रसर हुई ।

स्टैफर्डक्रिप्स के राजनीतिक मिशन पर भारत आने की घोषणा मार्च १९४२ ई० में हुई । बर्लिन ने युद्धोपरान्त भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने की घोषणा अपने हाउस आफ कामन्स के वक्तव्य में की थी । जापान का कब्जा, अब तक सिंगापुर जावा और बर्मा पर हो गया था ।

क्रिप्स भारत में कई बार आ चुके थे । मिशन का भारत में स्वागत हा हुआ । २३ मार्च को भारत में आकर वे सप्ते वार्तालापों आदि में समय नष्ट नहीं कर अंतिम राजनीतिक समझौता करना चाहते थे । २५ मार्च को सभी दलों के सदस्यों से मंत्रणा कर २६ मार्च को उन्होंने घोषणा की कि वे भारत में संघीय शासन के हाथी हैं जो गृह तथा परराष्ट्र के क्षेत्र में स्वतन्त्र रहकर सत्राट के प्रति भक्ति प्रकट करते हुए अन्य उपनिवेशों की तरह रहे । इसके लिए सम्पूर्ण बैर-विरोध को समाप्त कर एक निर्वाचित संस्था के द्वारा भारत के लिए नयी विधान बनाने की योजना थी । विधान-निर्माण में देशी रियासतों के सम्मिलित होने की भी बात थी । भारत को कामन वेल्थ के साथ अपने सम्बन्धों के निर्णय का भी अधिकार मिला था । युद्धकाल में सुरक्षा का अधिकार सत्राट को दिया गया था । क्रिप्स सुरक्षा का पद, सभी दलों के बहुमत के बावजूद भारत की नहीं सौंपना चाहते थे । प्रान्तों का संघ में सम्मिलित होना उनकी इच्छा पर था ।

डा० पट्टाभि सीतारामैया के अनुसार क्रिप्स का बस्ताव अनेक रुचियों के

तोष के लिए अनेक प्रस्तावों से संयुक्त था । मुसलमानों और देशी रियासतों को संतोष देने का प्रयत्न था । कांग्रेस की इस मांग को क्रिप्स ने कोई वाशवास्त नहीं दिया कि वह स्वतन्त्रता तथा विधान निर्माण पर विचार चाहता है । इसीलिए क्रिप्स मिशन सफल नहीं हुआ । सत्ता हस्तान्तरण की निश्चित तिथि बताने में वे उत्सर्ग थे । कांग्रेस जल्द से जल्द सत्ता हस्तान्तरण का इच्छुक थी । लोग भी पाकिस्तान जैसी कोई चीज नहीं मिलने से इससे अप्रसन्न थी । अन्त में ११ अप्रैल को घोषणा हुई कि क्रिप्स प्रस्ताव वापस ले लिया गया ।

क्रिप्स ने १९४२ को २७ जुलाई को एक ब्राडकास्ट में कहा कि कांग्रेस की मांग को स्वीकृत करने का वर्ष है -- हिन्दू शासन की स्थापना, मुसलमानों और दलित वर्गों पर । यह भी कहा कि गांधी जी चाहते हैं कि अंगरेज भारत को अज्ञान स्थिति में ही छोड़कर चले जायें । स्वतन्त्रता के लिए अधिकाधिक दबाव देने के कामों की बात भी कही । प्रतिक्रिया स्वल्प ८ अगस्त को कांग्रेस का भारत छोड़ो प्रस्ताव आया । अंगरेजों से साभाज्य छोड़ने और युद्ध जीतने की मांग कांग्रेस ने की । टोरी सरकार इस प्रस्ताव से सहमत नहीं थी । परिणामस्वरूप राष्ट्रीय मांग को पूर्ति के लिए कांग्रेस सम्पूर्ण अहिंसात्मक कार्यों के द्वारा अपने हस्तिन कल का परित्यक्त करने के लिए बाध्य थी । गांधीवाद के इस रुत को अंग्रेजी सरकार ने पूर्णतः नहीं समझा । भारत की स्वतन्त्रता को उसने नहीं स्वीकारा । इस समय कांग्रेस भी 'करो या मरो' का सिद्धान्त अपनाये थी । उसे विश्वास नहीं था कि युद्ध साम्राज्यवादी शोषण को समाप्ति के लिए हो रहा है । अतः प्रत्येक परिस्थिति में वह विरोध के लिए तत्पर थी ।

सरकारी कार्य भी जारी था । उसने बम्बई में ६ अगस्त को सभी नेताओं की बैठक कर लिया । इस अवसर की बैठक से लोग जुद्ध होकर बौखला उठे । आन्दोलन अहिंसात्मक हो गया । कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों के अतिरिक्त सभी कांग्रेसी इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गए । इस आन्दोलन में सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार २५० स्टेशन, ५०० हाफशबोर १५० घाने नष्ट किए गए । रेलों का जाना जाना बिहार और पूर्वी गुजरात में कई सप्ताह बन्द रहा । टाटा आयरन एण्ड स्टील वर्क्स के १० हजार मजदूरों ने इस मांग की पूर्ति के लिए हड़ताल किया कि व्यवस्था राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए प्रयत्न करने की प्रतिज्ञा करे । कई स्थानों में मजदूरों ने हड़ताल किया ।

राष्ट्रीय सरकार की स्थापना भिदनापुर और सतारा जिले में हुई । समाजवादी दल ने गुप्त रूप से विद्रोहात्मक कार्य, जयकाश नारायण के नेतृत्व में आरम्भ किया ।

नौकरशाहों ने व्यापारियों की सहायता से बीजों का कृत्रिम अभाव उत्पन्न किया । व्यापारियों के लोभ ने उन्हें सुनहरा अवसर दिया । १९४३-४४ ई० में काल के ३ मयानक अकाल में १५ से २० लाख तक व्यक्ति मरे ।

पुरी राष्ट्रीय से हारने के कारण ब्रिटिश सरकार तिलमिला उठी और कांग्रेस पर नाजियों से गठबन्धन का आरोप लगाया । अंगरेजों और अमेरिकियों का दृष्टि में भारतीय राष्ट्रियता को हैय और निकृष्ट सिद्ध करने के लिए उसने यह गलत प्रचार किया । नाजियों से महात्मा गांधी कभी भी प्रभावित नहीं हुए । युद्ध आरम्भ होने से पहले हिटलर के नाम एक पत्र में उन्होंने कहा था कि युद्ध शुरू होना हिटलर को सबसे बड़ी मुल होगी । जापान का युद्ध में जाना भी उनको दृष्टि में अक्षम्य गलती थी । जापानी सेना से सामना करने के लिए अमेरिका और इंग्लैण्ड ने फौजी सहायता का भारत में जाना वे पसन्द नहीं करते थे पर भारत में अंगरेज रहे, वे यह भी नहीं चाहते थे कि क्योंकि उनकी उपस्थिति से जापान भारत पर आक्रमण करने को उत्साहित हो रहा था ।

पुरी राष्ट्रीय की सहायता भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं को पसन्द नहीं थी, क्योंकि इसका अर्थ था नये साम्राज्यवाद के झूल में फँसना ।

जापान १९४१ के दिसम्बर में विश्वयुद्ध में सम्मिलित हुआ । उस समय महाया में साठ हजार भारतीय सेना अमेरिका, जासूएलियन और अंगरेजी टुकड़ियों के अन्तर्गत था । भारतीय सेना मन से जापानियों का विरोध नहीं कर रही थी, क्योंकि वेतन और सुविधाओं में विमैद था । यही कारण है कि सुदूर पूर्व में जापान अपनी तीव्रता से प्रगति कर सका ।

इन्हीं दिनों प्रसिद्ध और पुराने क्रान्तिकारी रास बिहारी बोस जापान में देश-निर्वाहियों से सवा भोग रहे थे । उन्होंने जापानी अधिकारियों के समक्ष एक प्रस्ताव रक्खा, जिसमें भारतीय - युद्ध-कैदियों की एक देशभक्त सेना बनाने का प्रस्ताव था । जापानियों ने इस प्रस्ताव को स्वीकृति दी और सितम्बर १९४२ में भारतीय राष्ट्रीय सेना का गठन हुआ । इस सेना में जावा, महाया, बर्मा आदि में रहने वाले

अनेक नागरिक मर्ता हुए ।

जनवरी १९४१ ई० में सुभाषचन्द्र बोस जेल से भागे और अफगानिस्तान होते हुए जर्मनी पहुँचे । फिर जापान गए और जुलाई १९४३ में भारतीय राष्ट्रीय सेना में सम्मिलित हो गए । बोस के निर्देशन में यह सेना उज्जकोटि की चतुर सेना बनी । उन्होंने कहा कि हर देश का इतिहास यही प्रोत्ति करता है कि विदेशी सहायता के बिना किसी देश को जनता स्वराज्य नहीं पाती । अतः हमें भी ब्रिटिश साम्राज्य के शत्रुओं की सहायता पाने में संकोच की आवश्यकता नहीं ।

उन्होंने कहा कि वे आरामकुर्सी वाले नेता नहीं हैं जो संघर्ष से भागकर समझौता करते हैं । वे आत्म सम्मान, प्रतिष्ठा या देश के स्वार्थ के इच्छुक थे । अतः उन्होंने प्राणों की परवाह न कर राष्ट्र के लिए यह किया । उनके निर्देशन में भारतीय राष्ट्रीय हफ राष्ट्रीय सेना १९४३ तक लड़ती रही ।

भारत में व्याप्त, राजनीतिक, गतिरौध में कमी नहीं हुई, यद्यपि महात्मा गांधी १९४४ ई० के मध्य में कैद से मुक्त कर दिए गए थे । अन्य कांग्रेसी नेता भी जून १९४५ ई० में रिहा हो गए थे । जवाहरलाल नेहरू ने अदम्य उत्साह और सक्रियता के लिए भारतीय जनता की प्रशंसा की । सरदार पटेल 'भारत छोड़ो' के नारे से आगे जाकर 'एशिया छोड़ो' तक पहुँचे । वराष्ट्रीय तथा आन्दोलन विरोधी कामों के लिए साम्यवादी निन्दित हुए ।

जून १९४५ ई० में युद्ध सत्य हुआ और भारतीय राष्ट्रीय सेना के कैदियों को भारत में लाया गया । कांग्रेस ने उनके छुटकारे के लिए आन्दोलन आरम्भ किया । इन कैदियों की सुरक्षा के लिए जवाहरलाल भी उ तत्पर हुए । इन बन्दिनों का सुकदमा दिल्ली के लाल किले में देखा जा रहा था । वह किला राष्ट्रीय जागरूकता का प्रतीक बन गया । १९४५ में सुभाष बोस की मृत्यु बिमान- दुर्घटना में होने की खबर से सारे देश में शोक की लहर फैल गई । सुभाषचन्द्र बोस विद्रोह में सफल नहीं हो सके किन्तु अपने उद्दीष्ट काल में राष्ट्रीय चेतना में अपूर्व शक्ति का संचार किया जिससे भारतीय स्वतन्त्रता का सपना सत्य के बहुत निकट आ गया ।

युद्ध समाप्ति के बाद ब्रिटेन में समाजवादी प्रभाव अधिक और टोरो बल कम प्रभाव कम होने लगा । अतः मजदूर दल लोकप्रिय होता गया । कारण, उसने स्वतंत्रता और बन्धुत्व के आधार पर साम्राज्य के गठन की योजना प्रस्तुत की । उसका बहुतो शक्ति से टोरी दल घबरा गया था । ब्रिटिश मतदाताओं की दृष्टि में भारतीय नेताओं को हेतु बल सिद्ध करने की चेष्टा में थी, क्योंकि इससे भारत से संबंधित उसके कार्यों की मान्यता मिल जाती । इसलिए वह भारत की उलझी परिस्थितियों को सुलझाने के लिए नये प्रयासों का और संकेत दूँ । १४ जून १९४५ ई० को लार्ड वावेल ने एक नये प्रस्ताव की घोषणा की और २५ जून को शिमला में एक कान्फ्रेंस का आयोजन किया, जिसमें कांग्रेस मंत्रिमंडल के पूर्व प्रधान मंत्री, नेताओं, मुस्लिम लीग, दलित जाति और सिखों के नेताओं को निर्मात्र किया गया ।

मुस्लिम लीग ने इस समय पुनः बल पाकिस्तान की मांग की । लेकिन शिमला कान्फ्रेंस में कोई महत्वपूर्ण बात नहीं हो सकी, क्योंकि जिन्ना अंतर्लक्ष सरकार बनाने के पक्ष में तभी थे जब मुस्लिम जनता की आत्मनिर्णय का अधिकार दिया गया । वावेलराय ने कहा कि अंतर्लक्ष सरकार में शामिल होने से पाकिस्तान की मांग पर कोई वांच नहीं जाती । तब उन्होंने कहा कि मुसलमान सदस्य भी एक तिहाई के बल हिन्दुओं के बराबर रहें । इसका समाधान होने पर उन्होंने कौन्सिल में सभी सदस्यों को मनोमोत करने का प्रस्ताव रखा । पर वावेलराय ने इसे स्वीकृत नहीं किया, क्योंकि कांग्रेस और सिखदल सां इसके विरोधी थे । इस प्रकार ब्रिटिश प्रतिक्रियावादियों द्वारा आयोजित चौलाबड़ी समाप्त हो गई । शिमला कान्फ्रेंस सफल न हो सकी ।

१९४५ ई० के मध्य में ब्रिटेन में मजदूर दल की स्थापना से भारत-ब्रिटेन सम्बन्ध में अधिक मजबूतता आयी । एटली ने वावेल से परामर्श किया और वहाँ से छोटकर उन्होंने १९४५-४६ में केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओं के निर्वाचन की घोषणा की । उन्होंने यह भी बताया कि सम्राट भारत के लिए एक विधान निर्माण संस्था निर्वाचन के बाद निर्मित करने के इच्छुक हैं ।

सभी ने इस प्रस्ताव का स्वागत किया तथा भारतीय जनता को मजदूर कर्मीय सरकार की सम्भावनाओं पर विश्वास बढ़ने लगा । ब्रिटिश सरकार भारत की स्वतंत्रता देने का निश्चय कर चुकी है, यह घोषणा थॉमस लॉरेन्स ने की । वह भी कहता कि निर्वाचनोपरान्त वावेलराय संयुक्त सरकार बनाये । इस चुनाव में कांग्रेस ने



पिंथ, काल और पंजाब के अतिरिक्त सभी जगह बहुत प्राप्त किया और उसको सरकारें लीं ।

१९४६ ई० का वर्ष राजनीतिक घटनाओं से परिपूर्ण रहा । विधान-निर्माण के आधार के लिए प्रबन्ध करने और अंतरिम सरकार बनाने के लिए २३ मार्च, १९४६ ई० को कैबिनेट डेडीगेशन भारत आया । लीग के द्वारा पाकिस्तान की मांग करने और उसे प्राप्त करने के लिए प्रत्यक्ष कार्रवाई करने के निश्चय के कारण मिशन का काम बहुत कठिन हो गया । लीग ने मुसलमानों के लिए पुष्क प्रमुखता राज्य और विधान निर्माण परिषद् की मांग की । इस स्थिति में ही वह अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने को तैयार थी ।

१ अप्रैल से १७ अप्रैल तक विभिन्न दल के नेताओं से कैबिनेट मिशन ने परामर्श कर ध्यानवारी से दोनों सम्प्रदाय सम्प्रदायों में सुलह कराने का प्रयत्न किया । लीग बटवारे पर कटिबद्ध थी । मिशन इस प्रस्ताव को उचित नहीं समझता था । उसके अनुसार यह अल्पसंख्यकों की समस्या का समाधान नहीं था । ऐसे देश में अल्पसंख्यकों की सम्भावना थी ।

अंततः मिशन द्वारा संयुक्त संघ सरकार के अन्तर्गत हिन्दू स्वार्थ और मुस्लिम स्वार्थ राज्यों का प्रस्ताव उपस्थित किया गया । साम्प्रदायिक समस्याओं के समाधान की व्यवस्था भी उसमें की गई । दोनों बातियों में सन्तुष्ट होने की कोशिश उसके द्वारा हुई ।

लीग ने पाकिस्तान लीग के वैधानिक तरीके को त्याग कर प्रत्यक्ष कार्य का प्रारम्भ २९ जुलाई १९४६ को प्रारम्भ किया । उस प्रत्यक्ष कार्य का प्रारम्भ कलकत्ते में हुआ और नौजाबादी में फैल गया । बहुत बड़ी संख्या में हिन्दू-मुसलमान कत्तों में ।

मंत्रिमण्डल निर्माण के लिए कांग्रेस प्रस्तुत हो गई और ४ अगस्त को मंत्रिमण्डल के नामों की घोषणा हुई वाकेल में की । २ सितम्बर १९४६ को कांग्रेस के ७ सदस्य अंतरिम सरकार में सम्मिलित हुए । लीग भी अक्टूबर के अंतिम सप्ताह में उसमें सम्मिलित हुई । उन्हें वाकेल का खेवा ठीक नहीं था । इसलिए अंतरिम सरकार निष्क्रियता की ओर झुकती गयी ।



मुस्लिम लीग और कांग्रेस दोनों को स्टली ने दिसम्बर, १९४६ ई० में लन्दन में निर्मात्रित किया। तीन दिनों के विचार-विमर्श के बावजूद वे किसी निष्कर्ष पर नहीं आ सके। लन्दन कान्फ्रेंस में भारतीय राष्ट्रीयता ने भारतीय एकता को अंतिम छड़ाई छोड़ी, पर हार गई।

१९४६ की दिसम्बर को ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि वह अल्प-संख्यकों पर कोई विधान लादना नहीं चाहती। इससे विधान निर्माण समा की कार्यवाही में गतिरोध पैदा हो गया।

कलकत्ते में दंगा आरम्भ हो गया। प्रतिक्रियास्वरूप अन्य भागों में भी साम्प्रदायिक दंगा फूटा। लीग की कार्यवाही से पंजाब में सरकार का कार्य मार्च-अप्रैल १९४७ में बन्द हो गया। साम्प्रदायिक दंगे से पूरा प्रान्त ज्वल-मिल हो गया।

ब्रिटिश सरकार ने २० फरवरी, १९४७ ई० को घोषणा की कि वह जून, १९४८ के पहले ही भारत को सत्ता हस्तांतरित करने की इच्छुक है। सरकार द्वारा तब इस निर्णय पर गांधी जी क्रुश थे।

२३ मार्च, १९४७ को लार्ड माउण्ट बैटन भारत प्यारे। पाकिस्तान की मांग को कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया। लार्ड माउण्ट बैटन ने १५ अगस्त १९४७ के पहले ही भारतीयों को सत्ता सौंपने और भारत के हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में विभाजित करने की घोषणा की। कानाठ और पंजाब के मुस्लिम बहुल क्षेत्र को पाकिस्तान को देने के लिए सीमा-क्षति की नियुक्ति हुई।

विभाजन महात्मा गांधी को पश्चन्द नहीं था पर नेहरू और फ्रेड माउण्ट बैटन के प्रस्ताव से स्वीकृति प्रकट कर चुके थे। १४ अगस्त को भारत विभाजित हो गया और १५ अगस्त, १९४७ ई० को दो भागों में बंट गया। और बड़े औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त कर ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अन्तर्गत एक देश बना, क्योंकि प्रयुक्तसम्पन्न राज्य का नीरव हो नहीं प्राप्त हो सका था। उस समय भारत पूर्ण अधिकार प्राप्त उपनिवेश ही रहा। भारत की समस्याएं अब भिन्न हो गयीं। अब उसकी समस्या विदेशी शासन से संबंध की नहीं, बल्कि अपनी वार्षिक दशा सुधारने और विकास से सम्बन्ध थी।

भारत के अनेक विदेशियों के भारत छोड़ने और स्वतन्त्रता प्राप्त के कारण अनेक विषय परिस्थितियां उपस्थित थीं। देशी रियासतों की समस्या प्रमुख थी। ये रियासतें स्वतन्त्र थीं और इच्छानुसार हिन्दुस्तान या पाकिस्तान में बिल सकती थीं। कई देशी राजा स्वतन्त्र राज्य बनाकर दिल्ली पर अधिकार करने की सोचते

थे । इन सब कारणों से भारत के सामने यह महत्वपूर्ण समस्या थी कि इन देशों रियासतों का भारत में विलय कर एक सुसंघटित राज्य की स्थापना की जाय । अंततः सरदार पटेल के प्रयत्न से सभी देशों रियासतों का विलय भारत में हुआ ।

कश्मीर का विलय अभी नहीं हुआ था । पाकिस्तान उसे हस्तगत करना चाहता था । कश्मीर भारत या पाकिस्तान में विलय के पहले सोचना समझना चाहता था । पर उत्तरी-पश्चिमी सीमा के कबाइलियों ने पाकिस्तानी सैनिक जफ़सरो के नेतृत्व में कश्मीर पर हमला कर दिया । अक्टूबर, १९४७ में स्थिति उत्पन्निक गम्भीर हो गई, क्योंकि छूट पाट करते हुए आक्रमणकारी अब कश्मीर की राजधानी श्रीनगर तक पहुँचे हो चले थे । इसी समय कश्मीरमहाराज ने भारत से सैनिक-सहायता मांगी और भारत में कश्मीर के विलय के पत्र पर हस्ताक्षर किए । तब भारतीय सेना कश्मीर के पहाड़ी कश्मीर के जन-नेताओं ने मो महाराजा के विलय सम्बन्धी कार्यों को स्वीकृति दी । भारत की इच्छा थी कि कश्मीरी जनता स्वयं बाहरी प्रभावों से मुक्त होकर, यह निर्णय दे कि वह पाकिस्तान के साथ रहना चाहता या भारत के साथ । ३१ दिसम्बर को कश्मीर का मामला सुरक्षा परिषद में भारत ने उपस्थित किया । उसमें पाकिस्तान पर, भारत पर आक्रमण का आरोप लगाया गया था, क्योंकि कश्मीर भारत में कश्मीर विलय हो चुका था और इसलिए वह भारत का एक हिस्सा था । कुछ के लिए कई प्रयत्न हुए और अन्त में जनवरी १९४९ में त्रान्ति-सीमा रेखा स्थापित हुई । कश्मीर के उस हिस्से को 'बाबाद कश्मीर' कहा जाने लगा, जिस पर पाकिस्तान ने अधिकार कर लिया था । अभी तक कश्मीर समस्या का समाधान नहीं हो सका है ।

देवराबाद और जुनागढ़ रियासतों भी रीक डेन से भारत में मिलीं । देवराबाद निजाम के शासन में था । यह रियासत भारत के मध्य में स्थित था । कई दुष्टियों से महत्वपूर्ण भी था । स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही एक अल्पसंख्यक राजनीतिक दल ने निजाम को स्वतंत्र राज्य बनाए रखने का ठोस विज्ञापन अपने हाथ का लिखना बना दिया । इस दल के कड़े में पड़कर निजाम ने जनता और राष्ट्रीय व्यक्तियों पर कड़े अत्याचार किए, करार । जनता पहले तो सहन करती रही लेकिन धीरे-धीरे विद्रोह प्रकट होता रहा और देवराबाद में अशांति फैलती गई । सरदार पटेल ने तत्काल त्रान्ति के साथ इस समस्या के समाधान का प्रयत्न किया, लेकिन निजाम अपने दल पर दृढ़ थे । अंततः दिसम्बर १९४८ ई० में भारत ने सेना द्वारा कुछ दिनों में देवराबाद को अधिकृत कर लिया ।

जुनागढ़ सीराष्ट्र में स्थित है। वहाँ का शासक नवाब था। उसकी स्थिति उस तरह की थी कि वह भारत के अतिरिक्त और किसी में नहीं मिल सकता था, पर बाहरी दबाव के कारण उसने पाकिस्तान में सम्मिलित होने की घोषणा की। यहाँ की जनता द्वारा नवाब के इस निरंकुश निर्णय का विरोध हुआ और एक प्रबल आन्दोलन बारम्ब हो गया। परिणामस्वरूप इस आन्दोलन की वजह से नवाब को भागकर पाकिस्तान में शरण लेना पड़ा। तत्पश्चात् वहाँ एक काम कलाज सरकार बनी। उसने भारत सरकार से जुनागढ़ का शासन अपने हाथ में ले लेने की प्रार्थना की और इस प्रकार जुनागढ़ भारत में सम्मिलित हो गया।

स्वतन्त्र भारत के संविधान-निर्माण की समस्या भी एक महत्वपूर्ण समस्या थी। इस कार्य के लिए १९४६ के दिसम्बर महीने में ही विधान सभा का संगठन हुआ था। इस सभा की प्राथमिक समिति ने फरवरी, १९४८ में संविधान का प्रारूप प्रकाशित किया तथा नवम्बर, १९४८ में ही विचार-विमर्श के लिए संविधान-सभा में उपस्थित किया गया। २६ नवम्बर १९४९ को संविधान सभा ने अंतिम रूप से भारत का संविधान स्वीकृत किया और २६ जनवरी १९५० से वह लागू किया गया। इसके अनुसार जब भारत सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्बन्ध लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया और औपनिवेशिक पूर्ण अधिकार प्राप्त राज्य की स्थिति समाप्त हो गई।

भारत अभी तक ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सदस्य बना रहा, यद्यपि वह सम्पूर्ण प्रभुत्वा सम्बन्ध गणराज्य घोषित हो चुका था। जब राष्ट्रमण्डल के साथ उसके सम्बन्ध के आधार में परिवर्तन की अपेक्षा हुई और २७ अप्रैल, १९४९ को उस सम्बन्ध में एक सरकारी विज्ञप्ति हुई, जिसके अनुसार ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में से ब्रिटिश राज्य हटा दिया गया। १७ मई, १९४९ ई० को भारत की संविधान सभा द्वारा भी इस घोषणा की स्वीकृति मिली। इस प्रकार भारत स्वतन्त्र रहकर भी राष्ट्रमण्डल का एक सदस्य बना हुआ है।

स्वतन्त्रता के साथ ही भारत के सम्मुख शरणार्थियों की समस्या भी उत्पन्न महत्वपूर्ण समस्या के रूप में उपस्थित हुई थी। पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान के कर्गों में अपना सब कुछ नंगा कर भारत लौटने वाले लाखों शरणार्थी थे। जब उनके पुनर्वास की अमानक समस्या का सही हुई। कारण, भारत की वार्षिक स्थिति अत्यन्त कमजोर थी। किसी प्रकार धीरे-धीरे कई वर्षों में इस समस्या का समाधान भी हुआ।

इन जैसे समस्याओं के समाधान के साथ ही भारत ने अपनी शक्तियों का विकास भी किया और वह एशिया का प्रमुख राष्ट्र बन गया । १९४९ ई० में स्थापित चीनी गणराज्य का भी भारत ने हार्दिक स्वागत किया । विश्व की अन्य समस्याओं में भी भारत ने रुचि रखी और उसको नीति ज्ञान्ति की नीति रही है ।

### सामाजिक

राजनीतिक परिस्थितियों की तरह सामाजिक परिस्थितियों भी क्रान्ति भावना की उद्भावना में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। समाज जब पतनोन्मुख होता है, उसके प्राचीन आदर्श जब कुरीतियों की सीमा तक पहुँच जाते हैं, तब समाज के जागरूक व्यक्ति उन आदर्शों को लोखला समझ कर नयी मान्यताओं को स्थापित करना चाहते हैं। इसके लिए उन्हें प्राचीन आदर्शवादियों से संबंध करना पड़ता है। संबंध से विरोध उत्पन्न होता है। इन विरोधी क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं से साहित्य भी अनुप्राणित होता है। क्रान्ति की भावनायें साहित्य में भी प्रतिबिम्बित हो उठती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में बालीय्यकाल की सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण अनिवार्य हो जाता है।

### पृष्ठाधार

कठारखीं सताव्ही के भारतीय समाज में मनु द्वारा निर्धारित मार्ग, वर्णाश्रम कर्म, संयुक्त कुटुम्ब प्रथा, पुत्राद्वय, तीर्थ-यात्रा, विधवा-विवाह-निषेध, बाल-विवाह, शूद्र-विवाह, सती-प्रथा, बालहत्या, पर्दा, नाद, स्त्रियों की वस्त्रिता आदि का प्रचार था। समाज में ब्राह्मणों का बोलबाला था। निम्नकर्मीय तथा उच्चकर्मीय सभी व्यक्ति उन पर निर्भर रहते थे। राजनीतिक और वार्षिक बराबरी नहीं थी। कठस्वल्प रुढ़ियों का पालन और कटुता के साथ होता था समाज में गतिशीलता नहीं थी।

कठारखीं सताव्ही उत्तरार्द्ध का भारतीय समाज प्रक्षलित-प्रिय था। कलंक-प्रतिष्ठा की प्रवृत्ति हरिश्चंद्र के ऊपर काव्य और कला तक में थी। साथ ही उस समय हिन्दुओं में तीव्र सामाजिक भावना थी और इस सम्बन्ध में वे उदारतापूर्वक मन व्यक्त करते और दूसरे व्यक्तियों की वाक्य धरे थे।

समाज में संयुक्त कुटुम्ब प्रथा थी । एक कुटुम्ब में व्यवसाय आदि में अपनी पैतृक परम्परा को ही निबाहा जाता था । परिवार में एक व्यक्ति प्रधान होता था । उसके कथनानुसार ही सारी पारिवारिक व्यवस्था होती थी ।

परिवार में नारी का स्थान मात्र घर और बच्चों की देखभाल करना ही था । मातृत्व उनका परम लक्ष्य था ।

तत्कालीन समाज में वर्ण-व्यवस्था उत्तमन्त कठोर थी । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों के अनेक छोटे-छोटे वर्ग हो गए थे । व्यवसाय के आधार पर इन वर्गों की उत्पत्ति हुई थी और इसे अंश्वरीय विधान माना जाने लगा था । अपना वर्ण होकर कोई दूसरा वर्ण नहीं ग्रहण कर सकता था । अर्थात् जाति-यांति अपनी बरमावस्था पर थी । इसके कारण अज्ञान, अन्याय, अत्याचार और अमान की प्रश्रय मिल रहा था । कारण वर्ण-व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण सर्वोपरि थे । वे अपनी बुद्धि-सुविधा के लिए मनमाना विधान रचते थे । भिक्षा का प्रचार इन्हीं तक था । अतः धार्मिक और सामाजिक जीवन की बागडोर इन्हीं के हाथों थी । यहां तक कि शासन के अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर भी वे अस्सनि बसते थे ।

निम्नवर्ग सदियों से कड़ी जा रही इस परम्परा में डूरी तरह जकड़ चुका था । सामाजिक यातना सहन करना उनका स्वभाव और संस्कार बन गया था । अतः उनमें विद्रोह की भावना पैदा ही नहीं होती थी । स्वर्णों का व्यवहार हर तरह से, निम्न वर्णों के साथ, मानवीयता मानववर्गों के विरुद्ध रहता था । फिर भी कोई परिवर्तन नहीं हो पाता था । क्योंकि आलोच्यकालीन हिन्दू समाज अपनी परम्पराओं के पाठन में अत्यन्त कट्टर था । बुद्धिमान और अरिज शासक भी हिन्दुओं की कोई नई सामाजिक व्यवस्था की ओर उन्मुख नहीं कर सके । मृत्यु भय या आर्थिक प्रलोभन ही इन्हीं हिन्दुओं की अनेक कम बर्ष से विमुक्त कर सकती थी । और समाज-व्यवस्था धार्मिक बन्धनों से जकड़ा था । अतः अपनी कान्ह पर ज्यों का त्यों था ।

उस समय बाल-विवाह की प्रथा थी । अधिक से अधिक ६-१० वर्ष की होखे ही बन्धुओं का विवाह हो जाता था । जैसे तो ६-८ वर्ष की अवस्था में यह विवाह होता था । बहू-प्रथा प्रचलित नहीं थी । पर दूध-दाय दूध होता था । कभी कभी कुदा-विवाह भी होता था । समाज विवाह-विवाह को आज्ञा नहीं देता था । विवाह की कठोर निबंधित जीवन व्यतीत करना पड़ता था ।



सती होने वाली व्यक्तीयकालीन हिन्दू समाज में सती-प्रथा भी थी । कहीं-कहीं विधवा को विधवा के लिए लोग मजबूर करते थे पर प्रत्येक विधवा के लिए यह आवश्यक नहीं था । हाँ, सती हो जाना गौरवपूर्ण अवश्य माना जाता था ।

इतिहास-लेखकों का कहना है कि अकबर और अन्य मुसलमानों ने इसे बन्द करने की कोशिश की थी । इस प्रथा के विरुद्ध मरठों ने भी । अंग्रेज शासक भी इस प्रथा को बन्द करना चाहते थे । लेकिन उन्होंने अधिक हस्तक्षेप इसलिए नहीं किया कि भारतीय जनता उसे अपने सामाजिक और धार्मिक जीवन में हस्तक्षेप न समझे । हेस्टिंग्स और वेलेज़ली के प्रयास निष्फल हुए थे ।

धीरे-धीरे उन्नीसवीं शती के द्वितीय दशक तक पारम्परिक विचारों से प्रभावित होने के कारण कानून में ब्राह्मणों का स्थान पहले जैसा नहीं रहा । राजाराम-मोहनराय के विचारों से अनुप्राणित होकर लोगों ने सती प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई । अन्त में अन्त में सहायता प्राप्त कर और नवीन काल के पंथों से परामर्श कर ४ दिसम्बर १८२६ के कानून रेग्युलेशन १७ के द्वारा सती-प्रथा किञ्चित् बन्द कर दी गई । १८३० में यह कानून मद्रास और बम्बई में भी लागू कर दिया गया । + + + १५ मई १८३३ को जब के नवाब ने भी अपने राज्य में यह प्रथा बन्द कर दी ।

तत्कालीन राजपूतों में बाढ-हत्या की प्रथा थी । लड़कियों को जन्म लेते ही उसे झूले रखकर गला घोटकर या दूध के घड़े के में डुबाकर मार डालते थे । अपने इस दुष्ट कार्य को वे धर्म का आवरण दिया करते थे । वस्तुतः इसके घृथ में राजपूतों जान थी । तत्कालीन मुसलमान शासकों से अपनी बू-बेटी की रक्षा करने के लिए, इस प्रथा का पालन करते थे और कुल-गर्व की रक्षा करते थे ।

धीरे-धीरे यह प्रथा घट रही थी । १६ वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध तक बहुत कम हो गई थी । अंग्रेजों शासकों ने विविध उपायों से इसे अन्त करने का सफल प्रयत्न किया ।

हिन्दू समाज में जान पान सम्बन्धी नियम भी कठोरता से पाठे जाते थे । अन्य जाति द्वारा जाना हुआ जाने मरने से बहिष्कृत होता था ।

पर्दा-प्रथा मकर स्वरूप से था । स्त्रियाँ अन्तःपुर की सम्पत्ति मात्र थी ।

समुद्र यात्रा निषिद्ध था । समुद्र-यात्रा करना कर्म के विरुद्ध था ।

स्माज में दास-प्रथा भी १८४३ के पूर्व तक थी । दासों की तरीद-बिछो होती थी । कमी-कमी कर्म न चुका सकने के कारण लोग दास हो जाते थे । १८४३ के ऐक्ट ५ द्वारा अंगरेजी सरकार ने दास-प्रथा का अन्त किया ।

इस प्रकार अंगरेजी शासन स्थापित होने के समय और उसके अन्तर्गत निम्नलिखित हिन्दी प्रदेश का सामाजिक जीवन अनेक कट्टर गतिहीन रुढ़िवाद, असामाजिक और अनुदार अंध-विश्वासों, कुरीतियों और कुप्रथाओं से भरा हुआ था । स्माज उस तालाब की भांति था जिसके जल की उन्मुक्त गति अवरोध हो गई थी जल-की और फलतः जिसका पानी सड़कर नाना प्रकार के विकार उत्पन्न कर रहा था ।

स्पष्ट है कि तत्कालीन स्माज जड़ था । कम्पनी सरकार ने ईसाई पादरियों के कहने के बावजूद भारत की सामाजिक व्यवस्था को बिछोड़ के मर दे, हाथ नहीं लगाया । स्माज में पुन लजा था । किसी नवीन रचनात्मक कार्य का अभाव था । परम्परा के छूटे में बँकर गत्यात्मकता नष्ट हो चुकी थी ।

पर बीरे-बीरे हिन्दी भाषी अंगरेजों के माध्यम द्वारा पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आने लगे और परम्परा के विरुद्ध एक नये मविष्य की भुज्जा देने लगे ।

### सुन-प्रवाह

#### भारतभु जुग

१९ वीं सताब्दी पूर्वार्ध की अपेक्षा इस काल की सामाजिक परिस्थितियों में तीव्र परिवर्तन हुआ । वैद्य पूर्वार्ध में भी कई-कई वार्षिक और सांस्कृतिक बान्धोलन हुए थे, जिनके फलस्वरूप भारतीय स्माज में सुधार एवं प्रगति की भावना विकसित हुई थी । १८३३ ई० में राजाराम मोहन राय ने ब्रह्म स्माज की स्थापना की । यद्यपि उसकी स्थापना में उनका मूल उद्देश्य हिन्दुओं को ईसाई बनने से बचाना था । पर कर्म के

१० सामाजिक हिन्दी साहित्य की भूमिका- डा० लक्ष्मीशानर बार्देइय, पृ० १२५, पृ० १५२ ई०

जातिरहित समाज पर भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ा था । सामाजिक कार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य सती प्रथा का उन्मूलन था । पुरुषों के बहु-विवाह का विरोध, स्त्रियों को जायदाद में हिस्सा मिलने, विधवा विवाह, कुवाहूत, स्त्री-शिक्षा का समर्थन भी राजा राम मोहनराय ने किया । शिक्षा के लिए ब्रह्म समाज की ओर से विद्यालय भी खोले गए । इन सब कार्यों का सूत्रपात १६ वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में ही आरम्भ हो गया था । जिसका प्रभाव हिन्दु समाज पर पड़ रहा था । पर यह सब शिक्षित वर्ग विशेष तक ही सीमित था ।

१६ वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में सामाजिक परिस्थिति तेजी से बदलने लगी । ब्रह्म समाज का कार्य भी व्यापक हुआ और सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना घटी । १८७५ ई० में दयानन्द सरस्वती द्वारा कार्य समाज की स्थापना । राजाराम मोहनराय और दयानन्द दोनों ने सुधारों की स्फूर्ति एक ही थी । विस्तारों में अवश्य विभिन्नता थी ।

उस समय समाज में जातिगत वैमनस्य तथा अज्ञानों की समस्या बड़ी दयनीय थी । राजाराम मोहनराय ने जाति व्यवस्था को सुलझाने व पर उतना ध्यान नहीं दिया था, उनका ध्यान छुटीन ब्राह्मणों के बहु विवाह की प्रथा पर था । पर कार्य समाज वैदिक कर्म पर आधारित था । अतः दयानन्द उपजातियों को हटाकर चारों वर्णों को कर्म के आधार पर पुनर्गठित करना चाहते थे, जन्म के आधार पर नहीं ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, स्त्रियों की दशा भी अत्यन्त दयनीय थी । कार्य समाज द्वारा स्त्रियों के सुधार की दशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य हुए । बाल-विवाह, बहु विवाह, दहेज प्रथा आदि का विरोध किया और भारतीय समाज केन्द्रीय दृष्टि प्रदान की । समाज का ध्यान नये मूल्यों की ओर आकृष्ट किया । स्वामी दयानन्द की छड़ाई सभी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध थी ।

सामाजिक सुधार की दिशा में किया गया भी सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का कार्य भी महत्वपूर्ण है । उन्होंने भारतीय परम्परावादी समाज में घतना की नयी किरण भरने के लिए कई-कई संस्थाओं की स्थापना के द्वारा अन्तर्जातीय विवाह, नायक इन्वें-मिशन, रात्रि पाठशालाओं आदि का प्रचार किया । १८७७ ई० में स्थापित वैदिक-साहित्य मंडल, जिससे अन्तर्जातीय विवाह का विधान बना । और जब १८८५ ई० में काँग्रेस की स्थापना हुई तब भी सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा मिली और सामाजिक कुरीतियों के प्रति जागृति की भावना अधिकाधिक प्रज्वलित होती गई ।

इसके मुसलमानों में मो सैयद अहमद ने सुधार का बीड़ा उठाया। सन् १८३५ में 'अंग्रेजों के विधायक के इस्लाम' की लाहौर में स्थापना हुई जिसका उद्देश्य इस्लाम के विरुद्ध आदों का उन्मूलन और बालक बालिकाओं के लिए उचित शिक्षा का प्रबंध था। १८६४ में नववस्तुल समाज की स्थापना द्वारा मो समाज सुधार को और ध्यान दिया गया। इसी वर्ष के आस पास मद्रास में 'वेद समाज' बम्बई में 'प्रार्थना समाज' और पंजाब में 'देव समाज' की स्थापना हुई। १८७५ में थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना हुई। सभी संस्थाओं का उद्देश्य भारतीय समाज में नवीन क्रान्तिकारी परिवर्तन करना था। इनका माध्यम अपनी प्राचीन संस्कृति का आधार लेना मंजूर हो रहा था।

रवीन्द्र सहाय वर्मा ने इन सुधारों के प्रेरणा-स्रोत को और खोज करते हुए डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा ने लिखा है कि 'इन-एक सामाजिक आन्दोलनों की प्रेरणा पश्चिम से ही आई। पर साथ में यह कहना ठीक है कि इन आन्दोलनों की प्रति अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार के साथ साथ ही हुई।' इनके प्रेरणा स्रोत की सत्यता को छोड़, इतना ही कहना पर्याप्त होना कि आंग्ल प्रभाव ने भारतीय समाज में एक नयी नूतन सामाजिक चेतना का विकास किया, जिससे रुढ़िग्रस्त परम्पराओं का त्यागना आवश्यक सा लगने लगा। प्राचीन मान्यताओं के प्रति अनास्था के रूप में इस स्पष्ट प्रभाव प्रकट हुआ। अतः रुढ़ियां टूटने लगीं और नवीन मान्यताएं स्वीकृत होती गयीं। संकीर्णता के विरुद्ध आवाजें उठने लगीं और सुदृढ़ यात्रा के निषेध का भी विरोध हुआ। पारस्वत्य प्रभाव से प्रेरित होकर भारतीय समाज ने विश्व के माध्यम से परम्पराओं का विश्लेषण किया और जो मान्यताएं सारहीन प्रतीत हुई, उनका तीव्र खण्डन किया जाने लगा।

सामाजिक सुधार के लिए सभी नवीन मान्यताओं का समर्थन रुढ़िग्रस्त समाज के ने नहीं किया। नवीन चेतना से प्रभावित व्यक्तियों ने या तो इन सुधारों को अस्वीकार कर दिया या भारतीय समाज के पुनर्गठन की आवश्यकता से अनभिज्ञ प्रकट की।

१- आधुनिक काव्य-वारा का सांस्कृतिक स्रोत- कैप्टी रीटार्ड-गुल्ल, पृ० ४२, प्रथम संस्करण

२- हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव - डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा, पृ० ४२, सं० २००१ वि०

पर हिन्दू समाज का एक पुरातन पंथी वर्ग अपनी कट्टरता नहीं छोड़ सका और जतनक वह नयी मान्यताओं का विरोध करता रहा ।

### द्वितीय युग

आठौं-चौथे शताब्दी के सामाजिक क्षेत्र में युगान्तरकारी क्रांति-भावना जाग्रत हुई । इस समाज और कार्य समाज ने १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक लीसलेपन को दूर करने, उसके पुनरुत्थान करने की जो भावना जाग्रत की थी, वह इस काल में और तीव्र हुई । कारण, इस समय तक सामाजिक मस्तिष्क को अपनी रुग्णता का मान हो गया था और उससे छूटने की इच्छा उसमें जाग्रत हो गई थी । पश्चात्य शिक्षा का अधिक प्रचार हो चुका था और उससे भारतवासियों की अपनी सामाजिक बहता का बोध हुआ था । अतः इस दिशा में वे परिवर्तन के लिए अग्रसर हो चुके थे । मात्र पुषार की पुकारों तक ही भारतीय जनता अग्रसर नहीं हुई थी बल्कि इस दिशा में उसने क्रांतिकारी व कमम भी बढ़ाए थे । मारतेन्दु युग के कवियों की रचनाओं में भी उन्हें अदभुत प्रेरणा मिली थी ।

नवीन सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठित करने वाली नवीन क्रांतिकारी भेतना पुनरुत्थान और अम्युत्थान की थी । परिणामस्वरूप वे मान्यताएं सण्ड-सण्ड होकर बिखरने लगीं जो सामाजिक जीवन को बह बनाती थीं । विधवा-विवाह, बहुसुतार जाति की और कार्य समाज ने भारतीय जनता को प्रेरित किया । अतः सर्व सम्बन्धित प्रतिबन्ध क्षिन्न होने लगे और सामाजिक विद्रोह की प्रवृत्ति तीव्रतर होती गई ।

वैयक दुर्गुणों जैसे बालस्य, फुट, व्यभिचार, दम्, विलास, दुराचार आदि को सामाजिक जीवन की अर्जता मानकर, लोग उन्हें त्यागने की और प्रवृत्त होने लगे । कर्ण्यता की अधिकाधिक आवश्यकता को भारत ने महसूस किया । अतः यह कर्ण्यता की राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त थी, सामाजिक दिशा में भी फैली । जात-प्रात के कर्ण्य डीठे गढ़ने लगे और हरिजनों को भी समाज में उचित स्थान देने की और लोगों का ध्यान गया । फुट का भी दुष्प्रभाव लोगों ने देखा और उसे दूर करने की चेष्टा भी प्रारम्भ हुई ।



इस युग की सामाजिक भावना के अनुसंधान की महान क्रान्तिकारी धेतना नारी जागरण में द्रष्टव्य है। युगों से दलित भारतीय बच्चारें भी सज्ज हो उठीं और उनके संगठन बने। नाई का क्षेत्र राजनीति शिक्षा आदि में हुआ। समानता की भावना भी जन्मी और विकसित। पर इस क्षेत्र में पारंपारिक प्रवृत्तियों को पूर्णतः नहीं अपनाया गया। परतंत्रता के बन्धनों को काटने की आकांक्षायुगी नारियाँ क्रान्ति कुमारियाँ बनीं। स्वदेशी आन्दोलन और सत्याग्रह आन्दोलन सद्गुरु कामों में उन्होंने पुरुषों के साथ मिलकर भाग लिया। इस प्रकार अपने सामाजिक अधिकारों को समझने और अपनाने की आकांक्षा से प्रेरित नारी-जीवन में अप्रतिम क्रान्तिकारी परिवर्तन और क्रियाशीलता दृष्टिगत होती है।

संकीर्ण भावना का हास भी इस काल की महत्वपूर्ण सामाजिक क्रान्ति है। इसमें समुद्र-यात्रा का अवरोधन इतना एक ऐसी ही क्रान्ति है। विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने का विरोध प्रारम्भ से ही उच्च वर्गों द्वारा होता रहा था, लेकिन कार्य-समाज आदि सुधार समस्याओं के प्रयत्न से यह बन्धन शीघ्र ही होता गया।

इस युग में जनवादी धेतना का प्रभाव विशेषरूप से देखा जा सकता है। दुविवाद भी इसके संयुक्त है। इस धेतना द्वारा देश की सामाजिक विस्था में संज्ञित मूल्यों की त्यागन और समानता स्थापित करने की प्रेरणा मिली। समानता की भावना के फलस्वरूप ही नारी स्वतन्त्रता, बहुतीदार आदि आन्दोलन तीव्रतर होते गए।

धेतोत्थान के लिए सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता के प्रति संकेत होने के कारण इस युग में लोक परिवर्तन हुए।

### आवाज युग

विदेशी-दुर्गम सामाजिक परिस्थितियाँ अपनी समस्याओं के साथ ही इस युग में विकसित होती रहीं। कार्य समाज के क्रान्तिकारी-सुधार-कार्य इस काल में भी बलिष्ठ रहे। नारी-जागरण, बहुतीदार, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, मूढ-विवाह, बहु विवाह, जाति पात की कटुता आदि लोक समस्याएँ राजनीतिक आन्दोलन के साथ उभरती रहीं और उनके समाधान का भी बल प्रयत्न होता रहा।



इस युग की महत्वपूर्ण घटना नारी-जागृति है। यों तो नारी जागरण का आरम्भ ज़िन्दा युग में ही हो चुका था पर ऐसी नारियों का अभाव था, जो सार्वजनिक क्षेत्र में काम करें। पदाग्रथा की कटुता ने उन्हें इस दिशा में जाने बहने से रोक रखा था। इस काल में इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य हुए। राष्ट्रीय आन्दोलन में स्त्रियों ने भी पुरुषों के साथ हिस्सा लिया। शिक्षा के क्षेत्र में भी नारी-क्षेत्र में शान्ति हुई और अधिकाधिक संख्या में शिक्षा पाने लगीं। शिक्षित होने के साथ ही उनकी जड़ता, उनका अज्ञान दूर होने लगा और वे समान अधिकार के लिए क्रांतिकारी प्रयत्न करने लगीं। धीरे-धीरे पदाग्रथा भी समाप्त होने लगी।

नारी जागृति का एक कारण भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम को एक मुख्य प्रवृत्ति जनतन्त्रात्मकता भी थी। इस प्रवृत्ति ने नारियों को अधिकार-क्षेत्र की भी जाग्रत किया। पश्चात्य सभ्यता के प्रभाव ने भी उन्हें ज्ञान दी, प्रेरित किया। इस दिशा में कार्य समाज का कार्य भी प्रशंसनीय रहा।

जात-पात मिटाने के लिए कार्य समाज बहुतोद्वार व के द्वारा एक लम्बी अवधि से संघर्ष कर रहा था, लेकिन इस प्रश्न को उतनी प्राथमिकता नहीं मिल पायी थी। उदारवादी हिन्दुओं द्वारा या तो इस समस्या को समर्थन मिला था या मिटा दिया गया था किन्तु दूसरी मौलाना परिषद् में जब दलित वर्गों को पुष्क निर्वचन देने का प्रश्न उठा तो हिन्दु चौकन्ने हुए। अस्पृश्यता की रक्षा के नाम पर साम्राज्यवादी, हिन्दु<sup>आदि</sup> भी, दो सख्तों में बाँटकर, पृथक् कर देना चाहते थे। प्रभा-देव के द्वारा भांडी जी ने इस समस्या का समाधान किया। उन्होंने हरिजनों को अधिक स्थान देकर, हिन्दु सम्प्रदाय के पृथक् होने से बचा लिया। तत्पश्चात् कांग्रेस ने भी बहुतोद्वार आन्दोलन को अपना लिया। मंदिरों के द्वार भी बहूतों के लिए खुले। उन्हें हरिजन संघ से अभिहित कर नीरव दिया गया।

इस प्रकार एक सामाजिक शान्तियों के समाज में जैसे परिवर्तन होते गए। जैसे जैसे जनता सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक होती गई, प्राचीन सामाजिक दुरस्, मान्यताएँ खंडित होती गयीं और नवीन मूल्य स्थापित होते गए। राजनीतिक क्षेत्र की भांति सामाजिक क्षेत्र में भी क्रांतियाँ हुईं।

### प्रगतिवाद युग

अनेक कारणों से इस युग की सामाजिक परिस्थितियाँ पूर्व युग की ही रहीं, पर प्रगतिशील तत्वों के संयोग से उन्हें तीव्रता आती गई। जनता की सामाजिक कैलास रुढ़ियों, परम्पराओं और अंधविश्वासों से अधिकाधिक दूर हटती गयी, क्योंकि अब वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में सभी सामाजिक मूल्यों, मर्यादाओं का पुनर्व्याख्या होने लगा था। बौद्धिकता से प्रेरित होकर अब सभी सामाजिक सम्बन्धों में उपयोगिता की सोच होने लगी।

कार्य समाज और इस तरह की अन्य संस्थाओं ने बात पात, हुवाकूत, बहू विवाह, बाल विवाह, दहेज प्रथा वगैरह लोग आदि के प्रति अनास्था भाव पकड़ ही जा दिया था पर उसके मूल में बौद्धिकता का आधार कम और धार्मिकता का विशेष बाध था।

इस युग में सामाजिक रुढ़ियों को क्षिप्त करने में राष्ट्रीय बान्धोलन की बढ़ती हुई शक्ति ने महत्वपूर्ण कार्य किया, पर इस दिशा में समाजवाद का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। पुरानी सामाजिक व्यवस्था पर तीव्र प्रहार करते हुए उसके नवीन सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की। कलस्वल्प जाति-भेद, हुवाकूत और अनेक दुप्रथाओं के बाह्याहम्बर समाप्त होने लगे। सामाजिक स्थितियों में समानता बढ़ने लगी। मानव-मानव को एक समान कर, सभी को समान सामाजिक अधिकार दिए जाने लगे।

स्त्रियों का एक कर्षण बहुत पिछड़ा था। प्रारम्भ से ही उन्हें कम उनका शोचक रहा था। कर्षण-कैलास ने इस दिशा में पिछड़ी जातियों को एक होने की प्रेरणा दी तथा उच्च वर्ग के शोचन वृत्ति के विरुद्ध बोलने का मौका दिया। इस प्रकार स्त्रियों के एक कर्षण ने दूसरे के विरुद्ध मिश्रित किया। पर इसका नतीजा यह हुआ कि हिन्दुओं में धर्म और वैश्व करने लगा और धार्मिक विषमता के आधार पर अपने बाकी कर्षण-कैलास सामाजिक विषमता के आधार को छेड़ चुटी। इसी प्रगतिवादी बहनों की शक्ति हुई।

नारी-आन्दोलन की गति इस काल में अत्यन्त तीव्र हुई। बहू विवाह, बाल विवाह, दहेज प्रथा आदि के विरोध में स्वर और पैर हुए। विधवा विवाह की सामाजिक मान्यता दी गयी। पर यह समय सदैव प्रगति करने लगी और उसके विरोध में भी आन्दोलन होने लगे। नारी जीवन में समानता का बाहुल्य किया गया और वह

विज्ञा में नारी-जागृति की चेतना अधिक बढ़ी ।

जन-चेतना इस युग में बहुत ही विकसित हुई । इसीलिए परम्पराओं और रुढ़ियों के प्रति तीव्र क्रान्ति हुई ।

कृषक वर्ग का जागरण भी इस समय को एक महत्वपूर्ण घटना है । १९३६ ई० में बसिष्ठ न-न भारतीय किसान समा स्यापित हुई । अपनी समस्याओं के समाधान हेतु यह संगठन किसानों ने किया । स्वयं अपनी समस्याओं के समाधान के अतिरिक्त किसानों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भी योग दिया ।

इस युग में मजदूरों की चेतना अमानक रूप से बढ़ी । इस चेतना ने आन्दोलन का रूप ले लिया । पूँजीवाद से कई-कई बार उनका संघर्ष हुआ । मजदूरों में सत्ता बारी। अपने हित के लिए वे संगठित हुए और अपने वर्ग की समस्याओं के समाधान के लिए संघर्ष रहे ।

स्वातंत्र्योत्तर काल में देश की सामाजिक परिस्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए । स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही जन-मानस का जागरण अत्यधिक होने लगा । लोगों ने समझा कि अब वार्षिक और सामाजिक परिवर्तन का उपयुक्त समय है । पीछे वर्ग ने समानता के लिए आवाजें उठायीं । सरकार भी इस दौर चेतन हुई । सामाजिक रुढ़ियों के परिवर्तन के लिए सरकार ने किसानों का खेड़ा लेना प्रारम्भ किया । एक सम्बन्ध में प्रथम विधान असुरक्षा निवारण के लिए बना । इसके अनुसार कूटों की सामाजिक स्थानों में जाने का वैधानिक अधिकार प्राप्त हुआ । फलस्वरूप उन आँक मंदिरों में हरिणों का प्रवेश हुआ, जहाँ पहले उनको जाया मो निषिद्ध थी । विश्नाथ मंदिर, वाराणसी, केलाथ मंदिर केलाथ वाम बादि में हरिणों का प्रवेश इसी विधानानुसार हो सका । लेकिन वैधानिक समानता भिन्न धर्म पर भी जन-साधारण में उनके प्रति समानता की ऐसी भावना नहीं उत्पन्न हो सकी । किसान-समाज, नौकरियों बादि में भी पिछड़ी तथा व अन्य जातियों के लिए स्थान सुरक्षा विचार नर । हरिणों में हिता-अनार के लिए भी प्रयत्न प्रारम्भ हुआ ।

पारम्परिक समाज व्यवस्था का संरक्षण भी इस युग में हुआ और पारम्परिक समाज-व्यवस्था के मान्य दृष्टिकोण होने लगे । उनके कई अनुवर्तनपरिणाम होने लगे । समाज में संकुल परिवार की प्रथा बीरे-बीरे टूटने लगी । पारिवारिक सदस्यों का सम्बन्ध भी प्रारम्भ हुआ । सर्वे प्राचीन समाज-व्यवस्था

की रुढ़िवादिता संडित होने लगी । सरकार ने हिन्दू कौड विधेयक पारित किया । जिसके अनुसार प्रत्येक बालिग स्त्री-पुरुष अपनी इच्छानुसार किसी भी जाति एवं गौत्र के व्यक्ति के साथ विवाह कर सकते हैं । इसी प्रकार निश्चित कारणों के बाधार पर तलाक देने का अधिकार भी इस विधान में रक्ता गया । वैसे तलाक को प्रामा हिन्दू समाज के लिए सर्वथा नवीन नहीं, पर वर्तमान युग में उसे सरकारो अनुमति मिली । और इस प्रकार समाज व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ ।

नवीन विधान के अनुसार प्रत्येक बालिग कौप्रत्यधिकार दिया गया । सभी आर्थिक, लैंगिक, शैक्षणिक या किसी प्रकार के ऊंच-नीच का भेद-भाव नहीं । इस प्रकार इस विधान के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को समानता का अधिकार देकर राजनीति के क्षेत्र में एक कर दिया गया । जनता को अपना शासक स्वयं निर्वाचित करने का गौरव मिला । सामाजिक जीवन में यह बहुत बड़ी क्रान्ति हुई ।

मद्य-निषेध विधान भी बना । मादक द्रव्यों के निषेध के लिए सरकार द्वारा उनकी वापसि पर नियंत्रण रक्ता गया है ।

इसी प्रकार बाल-वपराय रोकने, पतिव्रता स्त्रियों के उद्धार, भोस मानने बादि कुरीतियों की और भी समाज और जनता का ध्यान वाकृष्ट हुआ । और इनके पुनार के लिए अनेक प्रयत्न होने लगे ।

### धार्मिक

मानव-जीवन को निष्ठा और आचार-व्यवहार में धर्म का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसको विचार-परम्परा के निर्माण में धर्म का विशेष हाथ रहता है और विचार परम्परा के अनुसार आदर्श निर्मित होते हैं। अतः धार्मिक परिस्थितियों की द्रष्टि के आचार मूलक संघटन में महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत में यह विशेषतः द्रष्टव्य है, क्योंकि यहां धार्मिक-आचार-विचार सामाजिक आचारों-विचारों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रहे हैं। उनके बीच विभाजन-रेखा खींचना कठिन है अतः विचारों के निर्माण के कारणों को जानने के संदर्भ में धार्मिक परिस्थितियों का सिंहावलोकन अपेक्षित है।

### पृष्ठाधार

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में धर्म अपने पूर्व रूप में चला जा रहा था। कोई नतीन आन्दोलन नहीं हुआ। धर्म के सभी प्रचलित रूपों का जन्म पहले ही हो गया था। हां, इस समय तक यह अपने मूल रूपों से बहुत कुछ उजीवता और संप्राणता त्याग कर विकारग्रस्त हो चुका था। धर्म के अनेक संप्रदाय थे। वैष्णव धर्म के तो अनेक संप्रदाय थे ही, इनके अतिरिक्त शैव धर्म, जैन धर्म आदि भी थे। इनकी भी विभिन्न शाखाएं-उपशाखाएं थीं। विभिन्न सम्प्रदायों में किंचित् प्रतिद्वन्द्विताएं अवश्य रहती थीं, परन्तु उनके अगुनामियों में प्रतिद्वन्द्विता कम होती हो, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता।

तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों की एक विशेषता यह है कि विभिन्न वर्गों और सम्प्रदायों में विभक्त रहने के बावजूद धार्मिक वास्थाओं में कुछ समानताएं थीं जैसे परब्रह्म में विश्वास, आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म लोक-परलोक आदि। फिर भी लोग असंख्य देवी-देवताओं को मानते थे। धार्मिक त्योहारों का भी जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था। धार्मिक <sup>मैला</sup>उत्सव आदि सामाजिकता के प्रसार में सहयोगी थे।

इन धार्मिक रीति-रिवाजों की संख्या बहुत अधिक थी। जीवन का साण-साण जैसे धर्म से कंबा रहता था। इसके लिए फा-फा पर ब्रासणों की अपेक्षा रहा करता था। स्वयं कनता शास्त्रों से अभिन्न रहती थी। अतः ब्रासण अपनी वक्तानुसार

उन्हें नचाते थे । स्वयं ब्राह्मण भी शास्त्रों का ज्ञान खुरा और ज्वलानिक रखते थे । परिणामस्वरूप धीरे-धीरे जनता में अमानुषिक, अव्यवहारिक धार्मिक परम्पराएं प्रविष्ट होती गयीं । हिन्दू समाज ऋषियों में फंसकर रह गया । देश-काल परिस्थितियों के अनुसार उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ ।

समाज में अनेक क्वांक्षित धर्माचार फैले थे । देवो-भवानो, पशु-पक्षी, बड़-पोपल, जादि-जादि अनेक वस्तुओं का पूजा, पुत-प्रेतों में विश्वास, फकीरों दरवेशों जादि में विश्वास इत्यादि अनेक ऐसे कृत्य थे, जिनके कारण हिन्दू समाज का पतन हो रहा था । वास्तव में समाज प्रत्येक धार्मिक कृत्य और रीति-रस्म को देवो उत्पत्ति में विश्वास रखता था ।

साधु-यति दूर कर्मों में विश्वास रखते थे । तरह-तरह से शरीर को कष्ट देना कर्मों प्राप्ति का उपाय समझा जाता था । जनता ऐसे साधुओं की बातें नत-मस्तक होकर माना करती थी । साधुओं की संख्या बहुत अधिक थी । इनको बहुत ही गहरी पैठ तत्कालीन सामाजिक यहां तक कि राजनीतिक क्षेत्र में भी थी ।

उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में पाश्चात्य शिक्षा जादि के प्रभाव से उच्च-पंथीय हिन्दुओं ने धर्म के इस विकृत रूप को बर्न और निन्दा प्रारम्भ की । नवोन शासक भी उनके उद्देश्य से सहमत थे । काल से होता हुआ यह प्रभाव हिन्दी प्रदेश में भी आया । पर साधारण जन समाज पूर्ववत् ही बना रहा । जब ईसाइयों ने हिन्दू धर्म की कमजोरियों से लाभ उठाना प्रारम्भ किया । इस धर्म को और बहुत ठोग जाकृष्ट हुए । पर ईसाइयों को मनमानी सफलता नहीं मिली, क्योंकि धर्म परिवर्तन करने पर भारतीयों के पैतृक जायदाद से हिस्सा नहीं मिलता था । अतः जाधिक लाभ की दृष्टि से ठोग धर्म परिवर्तन करने में हिचकते थे ।

### सुन-प्रकाश

१- बाहुनिक हिन्दी साहित्य की मुद्रिका-- डा० लक्ष्मीसागर बाहुनिक, पु० १९५५,

सन् १९५२ ई०



### युग-प्रवाह

#### भारतेन्दु युग

इस युग में भारतवासियों को पाश्चात्य सभ्यता का पूर्ण बोध हो चुका था और इस बोध से उनमें पुनर्जागरण की चेतना भरने लगी थी। धार्मिक स्थिति १८५७ के विद्रोह से भी प्रभावित हुई थी। इस विद्रोह में सामूहिक रूप से पाश्चात्य विचारों के मूलोच्छेद का प्रयत्न होता है। वे जो उस संघर्ष का मूल कारण सांस्कृतिक और धार्मिक मानते हैं, उसमें भारतीयों को सफलता देते हैं, क्योंकि इस विद्रोह के बाद पाश्चात्य प्रभाव के विरोध की सामूहिक भावना का सूत्रपात हुआ। महारानी विक्टोरिया का घोषणापत्र इसके बाद प्रकाशित हुआ। इसमें मा धार्मिक रुढ़िवादियों को ही अधिक प्रोत्साहन मिला। धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना इसके बाद से बढ़ती हुई, यह निश्चित है। तत्सम्बन्धी कई आन्दोलन हुए और अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई। १८७५ ई० में वार्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने की। वार्य समाज ने युगानुसूल धर्म की वैज्ञानिक व्याख्या का प्रयत्न किया। उसने वेदोत्तर-कालीन हिन्दू धर्म के पौराणिक रूप को त्याज्य बताया। पर वेदों में धर्म तथा विविध विज्ञानों के तथ्यों का समावेश प्रमाणित किया। इस संस्था का रूप जनव्यापी था। इसमें शिक्षित-अशिक्षित जात-पात का भेद-भाव नहीं था। इसने ईसाई धर्म और मुस्लिम धर्म तथा संस्कृति दोनों का विरोध किया।

हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध १८५७ के बाद एक नवीन रूप धारण कर चुका था। अंग्रेजी राज्य में हिन्दू धार्मिक रूप में कितने स्वतंत्र थे, मुसलमानी राज्य में उतने नहीं। परिणामस्वरूप इस्लाम की प्रतिशील गति को अवरुद्ध करने में हिन्दू धर्म सफल हुआ। हिन्दू संस्कृति पश्चिमी प्रभाव को भी नहीं स्वीकार सकती थी। इस समय ईसाई मिशनरी अपने धर्म प्रचार के प्रयत्न में तेजी से जुटे थे। हिन्दुओं के चेतन वर्ग इस बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए प्रयत्नशील हुए। इससे विरोध भाव को बल मिला। कारण हिन्दू धर्म के नेताओं को पाश्चात्य नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव के कारण अपने धर्म का अस्तित्व ही खतर में पड़ रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू धर्म ने स्वयं को और कठोर नियमों में बद्ध कर अपनी परम्पराओं के रक्षा की चेष्टा की।

यदि एक ओर हिन्दू धर्म का एक वर्ग इस तरह कटूरता में बंधकर धर्म का प्राचीन रूप सुरक्षित रखने की चेष्टा में था तो दूसरी ओर आंशिक पाश्चात्य प्रभाव से प्रेरित होकर, ब्रह्म समाज, आर्य समाज तथा अन्य संस्थाओं द्वारा धार्मिक कटूरता, रुढ़िवादिता तथा अंधविश्वास को समाप्त करने का आन्दोलन शुरू हुआ। इन संस्थाओं द्वारा कुजाकृत, वर्ग-भेद आदि को मिटा कर, सब को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न कर सांस्कृतिक दृष्टि से देश को एक करने की कोशिश हुई। इस काल में हिन्दू धर्म और संस्कृति पर इन संस्थाओं का बहुत गहरा असर पड़ा।

पाश्चात्य विचारों से अधिक अभिमुख होकर कुछ नवयुवक धार्मिक व्यवस्थाओं की अवहेलना भी करने लगे थे। यह दृष्टि हिन्दू धर्म के लिए घातक थी। अतः हिन्दू धर्म के समर्थकों ने पाश्चात्य धर्म और संस्कृति का घोर विरोध किया।

मेजर ब्रैबट्सकी और कर्नल जलकाट १८७६ ई० में भारत आए। उन्होंने थियोसोफिकल सोसाइटी को भारत में स्थापित किया। इस संस्था ने धार्मिक मत-मतान्तरों को समाप्त कर, पारस्परिक सहिष्णुता और सहयोग स्थापित करने का प्रयत्न किया। इस संस्था ने भारतीय जन-मानस में नवीन चेतना भरने और उसके सांस्कृतिक व्युत्थान में महत्वपूर्ण योगदान दिया, क्योंकि इसने मरुतन्त्र पाश्चात्य और भारतीय दर्शन के मूलभूत विचारों को अपनाया था। सन् १८८३ में श्रीमती स्पी ब्रैसेण्ट भारत में आयीं। थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रचार में उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। इस संस्था के कार्य मानवीय बरातल पर प्रतिष्ठित थे और मानव जाति की उन्नति इसका ध्येय था। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में भी इसका महत्वपूर्ण कार्य रहा है।

इस काल को यदि धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का काल कहा जाय तो अशुभित नहीं होगा। कारण, यह काल कहीं-कहीं धार्मिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं की स्थापना का काल है। इन संस्थाओं द्वारा जबर हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण का प्रयत्न हुआ। हिन्दू धर्म की सदियों से रुढ़िग्रस्त था, उसे परिष्कृत करने की आवाज इनके द्वारा उठाई गई। साथ ही सामाजिक कुबारों की आचारप्रति भी उन्होंने तैयार की।

मुसलमान भी पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से उल्लूक नहीं बने थे। परम्पराओं को मुसलमानों को इस्लाम स्तर में दोस रहा था। जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का ज्ञान था, मुसलमान अंगरेजों को सहयोग देते थे। लेकिन उच्चवर्गीय मुसलमान अपने धर्म और संस्कृति पर अधिक ध्यान देते थे। पश्चिमी सभ्यता का बहिष्कार उन्होंने भी किया। इस युग में मुस्लिम वर्ग अपने राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक ह्रास से बहुत दुःख था। अतः आलोच्यकाल के पूर्व ही मुसलमानों ने धार्मिक सुधार का दौर जो बेस्टार प्रारम्भ की थी, वे इस युग के प्रारम्भ तक चलती रहें। सैयद अहमद खैली और इस्माइल हाजी मौलवी मुहम्मद १८२० ई० में मक्का यात्रा से लौटे। नवान मुस्लिम धार्मिक विचारों से थे और थे। उन्होंने इस्लामो क्रूरितियों को दूर करने का बांदोलन प्रारम्भ किया। १८५७ के बाद तक यह आन्दोलन जारी रहा।

इस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम दोनों वर्गों के लिए यह युग सुधारवादी क्रान्ति का युग था। धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों के द्वारा क्रूरितियों को एवं कट्टरताओं को मिटाने की चेष्टा हो रही थी।

### द्वितीय युग

इस युग की धार्मिक परिस्थितियाँ साम्प्रदायिकता से जीत प्रोत रहो हैं। आर्य समाज हिन्दुत्व की भावना पर आधारित था। इसके धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पुनरुत्थान की भावना में हिन्दुत्व का भाव ही प्रकट था। बवाहरलाह नेहरू ने आर्य समाज की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है "आर्य समाज इस्लाम और ईसाई धर्म के, विशेषतः इस्लाम के प्रभाव की प्रतिक्रिया था।" मुसलमान भी आर्य समाज के तीव्र प्रभाव को देखकर चिन्त हो गए और अपने धर्म की ओर उनका ध्यान अधिक गया। उन्होंने भी धार्मिक संस्थाओं का संगठन प्रारम्भ किया। परिणामस्वरूप साम्प्रदायिकता की भावना विकसित होने लगी। दोनों वर्गों में साईं बढ़ती गई।

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध हिन्दू और मुसलमान दोनों वर्गों के पुनर्जागरण का काल है। वेद और प्राचीन सभ्यता की ओर ध्यान देकर हिन्दुओं ने वर्तमान से दूर रहने का प्रयत्न किया। इधर मुसलमानों ने ब कुरान और मक्का मदीना

के ध्यान में अपने दुस को स्मोने की कोशिश को । आर्य समाज के द्वारा, हिन्दुओं ने, 'हिन्दुस्तान हिन्दुओं के लिए की घोषणा को और मुसलमानों ने बृहतर इस्लाम के लिए कोशिशें बारम्ब कीं फलतः मतभेद बढ़ता ही गया । सरसैयद अहमद खां कांग्रेस की स्थापना में देशद्रोह देखने लगे । इसीलिए उन्होंने मुसलमानों को कांग्रेस में सम्मिलित होने से रौका । हाली ने मुसदस में इस्लाम का गुणगान किया । 'बृहतर इस्लाम को कल्पना का पदार्थ, साहित्य की भूमि पर उतरने के लिए, हाली की कविता में अपने डेने तोल रहा था ।'

सरसैयद अहमद को डर था कि कहीं इस्लाम सनातन धर्म का ही अनुवाद न बन जाए । इसीलिए उन्होंने मुसलमानों को हिन्दुओं से सम्पर्क बढ़ाने को मना किया था । उन्होंने मुसलमानों का नेतृत्व सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक दृष्टि से किया । मुसलमानों को राजपक होने की प्रेरणा दी और साम्प्रदायिक भावना को बढ़ाया ।

कां-मंग बान्दोलन मुत्स्यतः हिन्दू बान्दोलन था । इसमें हिन्दुओं का संगठन देखकर मुसलमान भी सँकत हुए । उन्होंने भी एक ऐसी राजनीतिक संस्था की आवश्यकता महसूस की, जो उनकी साम्प्रदायिक भावों का माध्यम बन सके ।

लोगों ने अपने शासन की नींव फूट के वाक्य पर हो रक्ती थी ।

'ब्रिटिश राजनीति ने यह समझ लिया था कि भारत की धर्म-प्रवण जनता पर तब तक शासन नहीं किया जा सकता, जब तक उनकी धार्मिक भावना और विश्वास को निकट न बनाया जाय ।' इसके लिए वे भारतीय जनता में फूट डालना भी आवश्यक मानते थे । उन्होंने मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध में उकसाना प्रारम्भ किया ।

'वीर-वीर इस्लाम की विशिष्ट धार्मिकता ने भारतीयता की भावना नष्ट कर दी । मुसलमान अपने की उच्च इस्लामी डेढ़ के मुसाफिर समझने लगे जो भारत में जाकर नंगा के पहाने में डूब गया ।' ज्वर बीरुब मुसलमानों को स्वतंत्र संगठन के लिए बढ़ावा के साथ

१- पाकिस्तान के बीच साहित्य की प्रेरणा-दिनकर, हिमालय, अक्टूबर, १९४६, पृ०५

२- उन्नीसवीं शताब्दी की प्रुष्ठभूमि-- रामकुमार वर्मा

३- वही

हो सहायता भी दे रहे थे। फलतः १९०६ ई० में कांग्रेसों के नेतृत्व में मुसलमानों ने पृथक चुनाव की मांग की और दिसम्बर में मुस्लिम लीग को स्थापना की। कुछ लोगों का विचार है कि इसके पीछे लार्ड मिण्टो की सहायता थी। ✓

इसी युग में साहित्यिक क्षेत्र में झुकाव का आगमन हुआ। औरजों द्वारा प्रदत्त साम्प्रदायिक इकाई का बोझ उन्हें कव्य में फूटने लगा। मुसलमानों को विश्वास होने लगा कि साम्प्रदायिक इकाई, कल्पना मात्र हो नहीं। निरकारी समर्थन भी तब मिल गया, जब मालोमिण्टो सुधार में वार्षिक आधार पर राजनीतिक उत्पत्तिसंस्कृति मानो गई तथा प्रतिनिधित्व का अधिकार उत्पत्तिसंस्कृति मुसलमानों को दिया गया। पृथक इकाई की मावना इससे कलवती हुई और पृथक प्रतिनिधित्व की मांग को सर सेयद अली हाम की अध्यक्षता में १९०८ ई० में दुहराया गया।

१९१० ई० में कांग्रेस द्वारा इसका विरोध हुआ। कांग्रेस को लार्ड हार्डिग्न की सहानुभूति प्राप्त थी। इसलिए मुसलमानों का जोश पहले जैसा नहीं रहा। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ भी राजनीति के अनुकूल नहीं थी, इससे मुसलमान निराश हुए। और स्वराज्य हमारा लक्ष्य है यह घोषणा १९१३ ई० में मुस्लिम लीग ने भी की। १९१६ में कांग्रेस और लीग का सम्मेलन हुआ। तब से से धीरे-धीरे दोनों का एक-दूसरे के निकट जाने लगा। १९१६ ई० में रोल्ट एक्ट के विरोध में हिन्दू और मुसलमान एक थे। दोनों जातियों को स्वतंत्रता एवं आत्मभाव का उल्लेख एक सरकारो रिपोर्ट में यों किया गया, "सब लोग बड़े ही उत्पत्ति थे। एक बात मार्क की धिताई पड़ती थी। वह था हिन्दू-मुस्लिम आत्मभाव। दोनों जातियों के नेता इस वही स्वतंत्रता की रट लगाए हुए थे।..... वह आत्मभाव का अद्भुत दृश्य था।"

इन दोनों कार्यों — हिन्दू-मुस्लिम — की इस साम्प्रदायिक भावना के अतिरिक्त बालोच्यकाल में वार्षिक सुधारों की ओर से भी लोग बेफिक्र नहीं थे। दोनों कार्यों में पुनरुत्थानवादी भावना थी। दोनों ने गौरवपूर्ण कृतित को जाना, सम्मान और इसके प्रकाश से वर्तमान को प्रकाशित करने की चेष्टा की। यदि एक ओर वार्षिक ब्रह्मावर्ग को दूर करने की चेष्टा थी, तो दूसरी ओर कट्टरता भी पैदा हो रही थी। ऊपर ब्रह्मावर्ग, परिस्थितियों के अनुसार उसकी गति तीव्र और धीमी होती थी।



जालोच्यकाल में धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में बुद्धिवाद का उत्पत्तिक समावेश हुआ । यूरोपीय संस्कृति के प्रभाव से भारतीय संस्कृति में बुद्धिवाद का जोर बढ़ा । फलतः बुद्धिवाद के प्रकाश में अंधविश्वास नष्ट होने लगा । परम्पराएं टूटने लगीं । भारतीय जनता की दृष्टि परीक्षक की हो गई । तर्क तथा ज्ञान द्वारा प्राचीन मूल्यों का सिंहावलोकन प्रारम्भ हुआ । फलतः नये जीवन-मूल्य विकसित हुए । जीवन के अन्य क्षेत्रों के साथ ही, धार्मिक क्षेत्र में भी नए दृष्टिकोणों का विकास हुआ । बुद्धिवाद की प्रेरणा का स्रोत पाश्चात्य संस्कृति थी, पर साथ ही भारतीय सांस्कृतिक-धार्मिक संस्थाओं ने भी इस दिशा में प्रेरित किया । आर्य समाज और ब्रह्म समाज आदि बुद्धिवादी दृष्टिकोण से परिवर्तित थे । रवीन्द्र, विवेकानन्द गांधी आदि ने इस युग की बौद्धिक चेतना प्रदान की । जीवन की नये मूल्यों से सम्पन्न किया । वेदान्त के उद्देश्य दर्शन की नवीन व्याख्या करते हुए विवेकानन्द ने मानव की ईश्वरता को दिव्यता प्रदान की । उन्होंने बुद्धिवादी दृष्टिकोण के आधार पर मनुष्य का देवो-करण किया तथा देवोक्त रामकृष्ण को मानव-महिमा मंजित किया । इस प्रकार बुद्धिवाद द्वारा हमारी धार्मिक सांस्कृतिक परम्परा को अस्थिरता और अनास्था मिली । संशय और अनास्था की भावना जीवन के प्रत्येक मूल्यों के सामने उपस्थित हुई । बौद्धिक दृष्टिकोण का कठोर आधार अवतारवाद पर पड़ा ।

ऐसा नहीं है कि बुद्धिवाद के कारण वादसंवाद की समाप्ति हो गयी । बुद्धिवाद वादसंवाद का विरोधी नहीं है, बल्कि आधार रूप में उससे उद्भूत यथार्थवाद वादसंवाद में वर्तमान रहता है । इस प्रकार तत्कालीन युग में बुद्धिवाद से स्वीकृत वादसंवाद ग्राह्य हुआ । राष्ट्रीय जीवन के जागरण एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान के इस युग में वादसंवाद का उदय अपेक्षित भी था । अतः इस समय सांस्कृतिक बरातल पर वादसंवाद बीसता है । कतिपय के संवेद रहित पक्ष की बड़ी मध्य और वादसंभूलक व्यवस्था हुई ।

जनवाद और मानववाद की भावना भी तत्कालीन युग की सांस्कृतिक और धार्मिक स्थिति में महत्वपूर्ण है । वेदान्त दर्शन मानववाद की पृष्ठभूमि रही । कारण, वेदान्त दर्शन में मानव, मानव को स्मान या एक मूलभूत तत्त्व से जीवजोत देने का दृष्टिकोण है । विवेकानन्द द्वारा भारतीय विचारधारा में मानववादी दृष्टिकोण की स्थापना हुई । मानववादावाद पश्चिमी के प्रभाव से भी प्रेरित हुई ।



राजनीति समानता से जनवाद की भावना को प्रेरणा मिला । उस युग में राजनीतिक शक्ति को मध्यम वर्ग से निम्नवर्ग में पहुँचाने की भावना जगी । समान राजनीतिक अधिकारों को देने की चेतना विकसित हुई । यह सब बुद्धिवादी दृष्टिकोण के कारण हुआ ।

तत्कालीन धार्मिक और सांस्कृतिक बोध गांधीवादी विचारधारा से भी परिचालित हुआ । सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह की उदात्त और व्यापक भावनाओं ने धर्म तथा संस्कृति को भी प्रभावित किया । इसी समय स्वच्छन्दवाद भी आया । इससे भी बन्धन बन्धन के तिरस्कार की सहज प्रवृत्ति का विकास हुआ । स्वच्छन्दवाद की प्रसूत प्रवृत्ति परम्परा का विरोध है । बुद्धिवाद में भी यह प्रवृत्ति है । अतः बुद्धिवादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण को भी लिया जा सकता है । पर सभी विचारधाराओं के मूल में बाँधकता रहते हुए भी ये पृथक् भावधारार हैं, एक नहीं । इन विभिन्न भावधारारों से तत्कालीन युग को धार्मिक सांस्कृतिक परिस्थितियाँ बान्धोलित होती रहीं ।

### कायावाद युग

धार्मिक-सांस्कृतिक मूल्यों की नवीन स्थितियाँ इस युग में भी उत्पन्न होती रहीं, जिससे कान्ति चेतना उद्बुद्ध होती रही ।

बन्य युगों की तरह इस युग में भी कार्य समाज ने हिन्दू-धर्म को संश्लिष्ट करने की चेष्टा की, उसे ऋद्ध दिया । इस्लाम और ईसाई धर्म के प्रहारी भी कार्य-समाज ने केला और हिन्दू धर्म की रक्षा की, उसे प्रातिशोभ बनाया । बाणेश्वराल में साम्प्रदायिक भावना पुनः कलवती हो उठी थी ।

सन् १९२१ ई० में मीरठा (मालाबार) में एक एक मुसलमानों का विद्रोह हुआ । इस युग में जबकि उन्होंने ठाई द्वार स्वीकृति हिन्दुओं को इस्लाम में दीक्षित कर लिया । कार्य समाज ने उन ठाई द्वार प्रष्ट हिन्दुओं को हट कर, फिर से हिन्दू बनाया । राजस्थान के मलकाना राजपूतों की हृदि भी उसने किया । इसी मुसलमान क्रोधित हो उठे और राष्ट्रीय शक्ति को चोट पहुँची । जो हो, किन्तु, कार्य समाज हिन्दुत्व की उद्धार बाँह साधित हुआ ।

१- संस्कृति के चार अन्तः-रामवारी सिंह दिनकर, पृ० ४७०, सन् १९५६ ई०

हिन्दू धर्म की रुढ़ियों, कुरीतियों, जड़-परम्पराओं को भिटाने का प्रयास तो जार्य समाज कर ही रहा था। अनेक व्यक्तियों की वास्था मूर्ति पूजा तथा अन्य मान्यताओं से हट गई। तर्क और बौद्धिकता की देवती द्वारा ने हिन्दू समाज की कुरीतियों को बहा डाला। नये मूल्य बने लगे।

महात्मा गांधी द्वारा धर्म के क्षेत्र में बहुमूल्य क्रान्ति हुई उन्होंने उपनिषद् बौद्ध और जैन धर्म की अहिंसा को अपनाया और व्यष्टि नहीं, समष्टि के बराबर पर उसका प्रयोग किया। इस प्रकार भारतीय संस्कृति को एक नयी चेतना से उन्होंने सम्पन्न किया। परम्परागत बाह्यधर्मों, कुरीतियों पर भी गांधी जी ने प्रहार किया। वेधर्म को बाह्यधर्मों तक ही सीमित नहीं रहना चाहते थे, बल्कि वे सम्पूर्ण जीवन के क्रिया-कलाप में धर्म का व्यावहारिक रूप देना चाहते थे। उन्होंने धर्म के सम्बन्ध में कहा, 'नैतिकता के मूल सिद्धान्त और सुनियोजित बुद्धि के जो विरुद्ध हैं, उसे नहीं मानना ही धर्म है, चाहे वह कितना भी प्राचीन क्यों न हो।' 'सांस्कृतिक नवोत्थान के साथ भारत में बुद्धिवाद को जो चेतना आयी, उसे गांधी जी ने सर्वोत्तम ढंग प्रदर्शित किया।' इस प्रकार तत्कालीन वार्षिक परिवेश में गांधी जी का महत्वपूर्ण स्थान था।

हिन्दू महासभा, जो मुस्लिम लीग को विरोधी संस्था कही जा सकती है। इसने हिन्दू धर्म को अपने ढंग से प्रभावित करने की कोशिश की। लीग द्वारा पाकिस्तान की मांग का जोरदार सङ्घर्ष इसके द्वारा हुआ। भारत को अखण्डता और एकता का समर्थन करने किया। उन्होंने कहा कि आर्यावर्त आर्यों के लिए है और भारत का विभाजन बर्दाश्त नहीं किया जा सकेगा। हिन्दू महासभा हिन्दू राज की स्थापना के पक्ष में थी।

मुसलमान भी हिन्दुओं की तरह अपने को अधिक संगठित करते गये। प्रथम महायुद्ध के उपरान्त तुर्की में हुए वारदातों को लेकर भारत के मुसलमान सरकार के विरोधी हो गए और सन् १९५० ई० में स्वराज्य और सिलाफत को लेकर हिन्दू-मुसलमान का संघर्ष हुआ और वे कब से कब मिठाकर राष्ट्रीय आन्दोलन में जुड़ गए। लेकिन अखण्डता तथा सिलाफत आन्दोलन जोरी चोरा जादि की हिंसात्मक घटनाओं के कारण वहीं रुक गया, आगे नहीं बढ़ा। इसके मौकलाही द्वारा प्रचार

किया गया कि हिन्दू मुसलमानों को मलाई के लिए कमी नहीं लेंगे। मुसलमान इस बात से बहुत प्रभावित हुए, क्योंकि इस असर के पश्चात् हो देश में कई साम्प्रदायिक दंगे हुए।

१९२४ ई० के मोपला-विद्रोह में हिन्दुओं पर जो अत्याचार हुआ, उससे सारा देश घरा उठा तथा हिन्दू-मुस्लिम साईं जॉर चौड़ी हो गई। फलतः खिलाफत और असहयोग के पक्षपातियों ने मो कांग्रेस को होड़ दिया। १९२५ ई० में मुस्लिम लोग के अधिवेशन में खिलाफती नेता मुहम्मदअली ने कहा कि उनका संबंध विच्छेद गांधी जो से हो गया है। जिन्ना आदि मो कांग्रेस से हट गए। देश में दंगों की बाढ़ जा गई। स्कता के ज्वाव ने देश को राष्ट्रीयता को बहुत हानि पहुंचाई। कांग्रेस के स्कता कार रसने का प्रयत्न व्यर्थ हुआ।

अंग्रेज सरकार ने राष्ट्रीय स्कता को मंजूर करने के लिए वार्षिक विद्वेष पैदा करने की नोति अपनायी थी। इसलिए मास्मन कमिशन की रिपोर्ट में पुष्क जुनाव की प्रणाली को सिफारिश की। स्कता के लिए प्रयत्न राष्ट्रीयता के समर्थकों द्वारा हुआ। १९२८ में लखनऊ में सर्वबल सम्मेलन हुआ। लेकिन कांग्रेस के जुफाव लोग को मान्य नहीं हुए।

साम्प्रदायिक भावना १९३० ई० के बान्दोलन में बहुत कम हुई और पर सरकार उसे कम नहीं होने देना चाहती थी। उसने मोलमेज परिषद् बुलाया, जिसमें साम्प्रदायिकता के बाध पर पुष्क निर्वाकन-पद्धति पर विचार-विमर्श हुआ। इस परिषद् में राष्ट्रीय मुसलमान नहीं, बल्कि प्रतिक्रियावादी मुसलमानों को ही वाहूत किया गया था। स्पष्ट है कि सरकारी नोति फूट की थी। दूसरी मोलमेज परिषद् में इसकी पुनरावृत्ति हुई। बहुत कोशिशों के बावजूद, गांधी जी साम्प्रदायिक एकता स्थापित नहीं कर सके।

फिर भी १९३० ई० सविनय अवज्ञा बान्दोलन में खिलाफत बान्दोलन की तरह ही, मुसलमानों ने और उत्साह के साथ हिन्दुओं का साथ दिया। साम्प्रदायिक विरोध कम हो गया।

साम्प्रदायिक कटुता इस युग में कम बढ़ी, जब बान्दोलन समाप्त हो गए। बान्दोलनों के समय साम्प्रदायिकता नहीं बढ़ी। पर पूर्व कालों की अपेक्षा इस काल में साम्प्रदायिकता बढिक रही। राष्ट्रीय मुसलमान भारतीय स्वतन्त्रता के

युद्ध में योग देते रहे । पर प्रतिक्रियावादियों की वजह से कटुता का भाव बढ़ता गया ।

### प्रगतिवाद युग

इस युग में धार्मिक परिस्थितियाँ लगभग पूर्ववत् हो रहीं । परिवर्तन बहुत कम हुए, लेकिन मुस्लिम लीग द्वारा पृथक् इस्लाम राज्य की माँग के कारण हिन्दू जनता में साम्प्रदायिक वैषम्य बढ़ने लगा । अपनी स्वार्थ नीति के कारण सरकार इसे प्रश्रय देती रही । मुस्लिम लीग ही इन कार्रवायों से हिन्दुओं में भी जातीयता और साम्प्रदायिक भावना तीव्र हुई तथा दोनों जातियों का वैमनस्य बढ़ता गया ।

१९४६ ई० में मुस्लिम लीग ने प्रत्यक्ष कार्रवाई की । फलतः देश में दंगे आरम्भ हो गए । इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप पंजाब, बिहार और बंगाल में भीषण दंगे हुए । जन-धन की भीषण क्षति हुई । इससे राष्ट्रीय एकता का भी अत्यन्त हास हुआ । इस प्रकार इस युग में धार्मिक आवेश का प्रदर्शन विशेषतः हुआ ।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण में अवश्य कई निर्णायक परिवर्तन हुए । हमारी संस्कृति में जटिलता और विविधता इस परिवर्तन की पृष्ठभूमि थी । जटिलता के निराकरण की दिशा में दो विदेशी मनोचियों की विचारधाराओं का प्रभाव भारतीय जीवन पर विशेष पड़ा । ये थे मार्क्स और फ्रायड ।

मार्क्स ने आर्थिक आधार भूमि पर समाज की व्याख्या प्रस्तुत की । उसने सामाजिक समस्याओं की पोलिटिकवादी व्याख्या करते हुए सम्पूर्ण जनता को शोषक और शोषित दो वर्गों में बाँटा । वह राबनो-स्तिक शक्ति पर, शोषित वर्ग के संगठन द्वारा शोषकों का नाश कर, अपना अधिकार कर लेना चाहता था । समानता के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति को सुख-सुविधाएँ देना उसका लक्ष्य रहा ।

प्रातिज्ञीव शक्तियाँ देश में १९२७ ई० के बाद से ही दीखने लगी थीं, पर १९३७ के पश्चात् इस क्षेत्र में विशेष प्रगति होने लगी । समानता के सिद्धान्त से लोग अभिभूत हो उठे । जनवादी मूल्यों के आधार पर सभी समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया जाने लगा ।

मार्क्सवाद ईश्वर का अस्तित्व नहीं मानता था । वह रुढ़ियों तथा परम्पराओं का भीरु विरोधी था । ईश्वर के बारे में उसने कहा कि वह शोषक वर्ग द्वारा निर्मित एक अस्त्र है, जो शोषितों को गुलाम बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा है । अतः ईश्वर शोषितों के लिए नहीं । इस अतीश्वरवादी विचारधारा

का व्यापक प्रभाव जनता पर पड़ा और जनवादी मूल्यों का विकास हुआ ।

विचारधाराओं के परिवर्तन में, नयी दिशाओं को और प्रेरित करने में फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद ने भी महत्वपूर्ण कार्य किया । काम-सम्बन्धी विचारों को फ्रायड ने मनोविज्ञान के आधार पर नये रूप में विश्लेषित किया । उसके अनुसार वे इच्छाएं जिनकी पूर्ति सामाजिक वर्णनाओं के कारण बचन जीवन में नहीं होने पातीं, वे दमित होकर कुंठित हो जाती हैं । ये कुंठाएं अधिकतर यौन सम्बन्धी हैं । जबसर पाकर ये इच्छाएं नग्न या कई नग्न रूप में हमारे सम्मुख आती हैं । इस विचारधारा से काम सम्बन्धी पुरानी मान्यतारें बिखरने लगीं और तत्सम्बन्धी नये मूल्य स्थापित होने लगे ।

वैसे भारत जैसा परम्परावादी देश अपने प्राचीन मूल्यों को एकदम नहीं त्याग सका । धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताओं की प्राचीन परम्परा भी चली रही ।

इन समस्त विचारधाराओं का सामूहिक प्रभाव यह हुआ कि जीवन के प्रति दृष्टिकोण भौतिकवादी हो उठा । बौद्धिकता की प्रधानता हुई । सभी मूल्यों का परीक्षण तर्कों के आधार पर होने लगा । वे मूल्य टूटने लगे, जो उपयोगी सिद्ध नहीं हुए । इनके स्थान पर जनवादी मान्यतारें फलने लगीं । इस प्रकार इस युग में भारतीय सांस्कृतिक जीवन एक नये धरातल पर निर्मित हुआ और इस आधार पर जनता नवीन क्रांतिकारी चेतना विकसित होती गई ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत को धर्म-निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया । साम्प्रदायिकता तथा धार्मिक विद्वेषों को समाप्त किया-न करने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम था । धर्म-निरपेक्षता के कारण सभी धर्मावलम्बीयों को सहयोग का भी अवसर मिला ।



### वार्थिक

मनुष्य की विचारधाराओं, क्रिया-कलापों पर अर्थ, बाह्य परिषेत् के रूप में, सम्भवतः सबसे अधिक प्रभाव डालता है। कारण, अर्थ से ही मनुष्य की प्रायः सम्पूर्ण भौतिक क्रियाएं परिवर्तित होती हैं। वार्थिक सम्पन्नता द्वारा सम्पूर्ण भौतिक आवश्यकताएं पूरी होने पर जब मनुष्य सुख से रहता है, उन्में विद्रोह की प्रवृत्ति नहीं पनपती। वस्तुतः विद्रोह या क्रान्ति के बीज अभाव और असंतोष में उगते हैं। इस प्रकार वार्थिक स्थिति मानसिक विचारधाराओं के साथ ही क्रिया-कलापों की निर्भिति में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यहां तक कि गहराई से विचार करने पर यह भी देखा जा सकता है कि वार्थिक-व्यवस्था से अक्षुब्ध व्यक्ति हो समाज-व्यवस्था और फिर वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था पर ध्यान देता है। अर्थात् राजनीतिक और सामाजिक क्रान्ति के विचार भी वार्थिक स्थिति से प्रेरित होते हैं। अखिल तत्कालीन परिस्थितियों ने किस प्रकार क्रान्ति के लिए आधारभूमि प्रस्तुत की, इसके विश्लेषण के लिए तत्कालीन वार्थिक परिस्थितियों का सिंहावलोकन अनिवार्य है।

### पृष्ठाधार

भारतवर्ष के वार्थिक जीवन के प्रभाव केन्द्र गांव रहे हैं। ओजों के जाने के पहले ये ग्राम राजनीतिक दृष्टि से उच्छ-गुच्छ के शिकार होते थे, लेकिन वार्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर रहा करते थे। उस समय यातायात के साधन कम थे। अतः प्रत्येक गांव अपने-आप में स्वावलम्बी रहता था। जमीन पर किसी का व्यक्तिगत अधिकार नहीं, सामुहिक रहता था। घर के कम में उत्पादित वस्तुओं में से सामुहिक रूप में राजकोष के लिए निर्धारित रकम दी जाती थी।

दुग्ध के अतिरिक्त महत्वपूर्ण उद्योग बड़े भी होते थे। कतार-कुतार कर्म प्रसृत था। अन्य उद्योग चर्मों और दस्तकारी का भी महत्वपूर्ण काम होता था। दुग्धक परिवारों और उद्योगी परिवारों के अतिरिक्त अन्य कर्म जैसे ब्राह्मण, चौकी, छहार, कार, नाई, अन्य व्यक्ति भी गांव की रक्षा करने वाले सैनिकों के लिए, प्रत्येक गांव में उत्पादन इकाई की समानानुसार कुछ रकम निर्धारित कर दिया जाता था। अन्य उद्योग कर्म का भरण-पोषण होता था। संतोष में, तत्कालीन समाज में कोई



भूत नहीं रहने पाता था । सब की आवश्यकताएँ समाज द्वारा पूरी हो जाती थीं ।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना से पहले किसानों का सरकारी प्रतिनिधि से व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं रहता था, बल्कि मुखिया ही माध्यम रहता था, पर गांव के मुखिया और सरकारी प्रतिनिधि के बीच एक और व्यक्ति रहता था, जो वागे चलकर ज़मींदार बन गया । इस वर्ग का काम था नियमों के अनुसार हिसाब-किताब रखना । पर धीरे-धीरे स्वार्थ के कारण इसने किसानों से महाजनो प्रारम्भ कर दा और बढे में उनसे ज़मीन आदि छेन लगा । इस प्रकार किसान और सरकार के बीच एक ज़मींदार-वर्ग बन गया ।

तत्कालीन समाज में वार्षिक कृत्तों और दान-गुण्य पर लोग बहुत खर्च करते थे । साधु, सन्त, फकीर और मित्तारियों की संख्या बहुत अधिक थी । ये समाज के अनुत्पादक आं थे । इनसे वार्षिक जीवन की क्षति पहुंचती थी, क्योंकि राष्ट्र का बहुत सा धन अनुत्पादक रूप में पड़ा रह जाता था ।

उस समय अनेक छोटे-बड़े औद्योगिक नगर भी थे । व्यापारी, कारीगर और शिल्पी आदि प्रसृत थे । अनेक तरह की चीज़ों का व्यापार होता था । नगरों का वार्षिक जीवन मुख्यतया हाथ करवों और चरतों पर आधारित था । बराबकता और राजनीतिक उथल-पुथल में अनेक औद्योगिक केन्द्रों का हास होता था, पर वार्षिक संगठन और व्यवस्था में वायूल परिवर्तन नहीं होता था ।

भारतवर्ष की वार्षिक स्थिति का दूसरा अध्याय अंग्रेजों के आगमन और विकास के साथ आरम्भ होता है । अंग्रेजों की नीति औपनिवेशिक साम्राज्यवाद की नीति थी । उन्होंने एक भिन्न पूंजीवादी वार्षिक व्यवस्था की स्थापना भारत में की, जिसका परिणाम उन्नीसवीं सताब्दी के प्रथम दशक में हो देखने लगा था ।

१७५७ की प्लासी युद्ध के पश्चात् अंग्रेजों द्वारा भारत का वार्षिक होचण आरम्भ हुआ । आरम्भ में कम्पनी की प्रारम्भिक नीति के फलस्वरूप बांठ और बिहार का वार्षिक वार्षिक होचण हुआ । व्यापारियों, कारीगरों, शिल्पियों आदि की इस वार्षिक नीति से बड़े-बड़े मुक्तान खने पड़े । उनका प्रभाव गांवों पर भी पड़ा । भारतीय औद्योगिक जीवन के केन्द्र-बिन्दु वस्त्र-निर्माताओं की वार्षिक याचना खनी पड़ी ।

जैसे-जैसे ईस्ट इंडिया कम्पनी स्थापित होती गई, हिन्दी-प्रदेश को वार्षिक स्थिति का दाय होता गया। जब से कम्पनी की काल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिली, तब से वार्षिक परिस्थिति और भी शोचनीय होती गई। कारण, कम्पनी मालगुजारी तो लेती थी लेकिन जनता के प्रति अपना उत्तरदायित्व नहीं निभाती थी। साथ ही जमींदारों और रियासतों को नीलाम पर भी बढ़ा देता था। सैदाप में धीरे-धीरे गांव बरबाद होने लगे। दुर्भिक्ष, कुपुता फैलने लगी। रुपया इंग्लैण्ड भेजा जाने लगा और राष्ट्र निर्धन होता गया। १८१६ तक समस्त हिन्दी प्रदेश पर ईस्ट इंडिया कम्पनी की सत्ता स्थापित हो गयी थी।

कृषि-व्यवस्था की तो दायि पड़नी ही, कम्पनी की नीति के फलस्वरूप भारत के उद्योग धंधे भी बहुत ही दायिग्रस्त हुए। 'फ्री ट्रेड' नीति के अन्तर्गत भारत में तो इंग्लैण्ड की वस्तुएं बिना किसी आयात-निर्यात करके या नाममात्र के कर से आती थीं, लेकिन भारत से जाने वाली वस्तुओं, विशेषतः कपड़ों पर भारी-भारी कर लगाकर उनके जाने में बड़बुनें डाली गयीं। फलतः वहां का माल देश में बेहिसाब सपने लगा। इंग्लैण्ड में अन्त्यान्त्य मशीनों के आविष्कार के साथ ही भारतीय उद्योग धंधों का रहा-सहा अस्तित्व भी समाप्त होने लगा। भारतीय नरेशों और उच्चवर्गों के पतन के कारण बाह्यदाताओं के अभाव भी उद्योग-धंधों की अवनति का एक कारण हुआ। इस प्रकार १८२२ तक उद्योग-धंधों का पुरा हास हो गया। अब भारत एक कृषि-मजदूर देश रह गया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में नेपोलियन की शक्ति बढ़ी, जिससे इंग्लैण्ड के मालों की यूरोप में बिक्री कम हो गई। अतः अन्य ब्रिटिश व्यापारियों ने कम्पनी के एकाधिकार के विरुद्ध आवाज उठाई। फलतः १८२३ में परिवर्तित चार्टर में कम्पनी का एकाधिकार खीन लिया गया। अब समस्त ब्रिटिश वार्षिक दायि अपनी देश में तैयार चीजों को बाहर बेचने लगा। अतः ही भारतीय उद्योग धंधों का हास हुआ साथ ही वैज्ञानिक आविष्कारों से भी भारत को अपरिचित रखा, जिसके द्वारा यूरोप प्रगति कर रहा था।

कृषि की दशा भी अन्तर होती गई। कर भी अत्यन्त अनिश्चित ढंग से लगाए जाते थे। इस कारण किसान अपने वार्षिक जीवन में निश्चितता का अनुभव नहीं कर पाते थे।

इसके अतिरिक्त कुछ और कारणों से भी भारत की वार्षिक स्थिति में हास हुआ। कम्पनी के कारण भारत का कम तेजी से इंग्लैण्ड जा रहा था। कम्पनी के

पदाधिकारियों के सगे-सम्बन्धियों को भी भारत में ऊँचे-ऊँचे पद दिए गए। 'यद्यपि १८३३, १८५३ और १८५८ (विक्टोरिया) की घोषणाओं के अनुसार सैद्धान्तिक रूप में भारतवासियों का सरकारी नौकरियाँ पाने का अधिकार स्वीकार कर लिया गया था, किन्तु व्यावहारिक रूप में बहुत दिनों तक उन्हें उच्च सरकारी नौकरियाँ न मिल सकीं।' उत्पादन शक्ति के विकास के लिए साधनों का निर्माण भी नहीं हुआ। सबसे बड़ी बात थी, भारतीय सामानों पर अधिक कर का लगना। यहां तक कि देश की कनो चीजें ही देश में निर्यात होती थीं, फिर भी उन पर इंग्लैण्ड से आयी वस्तुओं की अपेक्षा कर अधिक लगता था। आंग्लैण्ड ने कोर्टों द्वारा करों की इच्छा के बल बावजूद इस अनोतिपूर्ण व्यवस्था को दूर किया।

प्रथम अफगान युद्ध (१८३८) और उसको असफलता से भी भारत की वार्थिक स्थिति को बर्का पहुँचा था। अनेक टकसालों के बन्द हो जाने से सौने-बांदों का माव भी गिर गया था। महाजनों का कारबार भी बन्द हो गया था। अंग्रेजों के अन्य उपनिवेशों में धन की पूर्ति के लिए, साम्राज्यवादी युद्धों का और भारत सरकार का इंग्लैण्ड में व्यय, ऋणपत्रों ( ) पर मुनाफा आदि अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, भारतीय जनता पर बड़े-बड़े कर लगाए गए। फलतः धन विदेश जाने लगा और जनता दिन-पर-दिन दरिद्र होती गई। १८३३ में कम्पनी सरकार के अधिकार हीन किए जाने पर भी, भारतीय सरकार की वार्थिक नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। देश का साम्राज्यवादी शोषण होता रहा।

स्वयं भारतीयों की परम्पराओं के कारण भी वार्थिक स्थिति का कुछ हास हो रहा था। उत्तराधिकार के नियम ऐसे थे, जिनके कारण कृषि योग्य भूमि टुकड़ों में बंट जाती थी। नौशानों, राजाओं की विलासिता में कोई कमी नहीं थी। तत्कालीन युग में कम्पनी ने समाज के मध्यम वर्ग को भी विकास का अवसर नहीं दिया। कुछ मध्यमवर्गीय व्यक्ति कम्पनी सरकार की नौकरी अवश्य करते थे पर सरकार सु-संपत्ति पर निर्भर व्यक्तियों को नहीं मनपने देना चाहती थी। इस युग के अंत में हिन्दी प्रदेश में अनेक विभिन्न सरकारी योजनाएं कार्यान्वित होने लगीं, तब मध्यम वर्ग की चेती से विकसित होने लगा। इस समय तक शिक्षा का प्रचार होने लगा था, पारिवारिक प्रभाव बढ़ रहा था। इन प्रभावों के कारण मध्यम वर्ग अंग्रेजी राज्य में दिखवस्पी

लेने लगा । आगे भारतेन्दु युग में समाज का नेतृत्व शीर्ष वर्ग के हाथ में आया । यदि कम्पनी राज्य में ही मध्यम वर्ग विकसित हो जाता तो सम्भवतः उसी समय हिन्दी प्रदेश और साहित्य में पर्याप्त परिवर्तन होता । पर यह स्थिति नहीं होने के कारण साहित्यिक क्रान्ति नहीं हो सकी ।

### युग-प्रवाह

#### भारतेन्दु युग

1821/4 अंग्रेज भारत में आए, बसे। पर, भारत के आर्थिक संगठन पर पहले उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा । तब: क्रान्तिकारी परिवर्तन भी नहीं हुआ । आर्थिक संगठन पूर्ववत् ही बना रहा । पर बालोचकाल में स्टीम पावर, स्टीम इंजिन और वैज्ञानिक साधनों का प्रचार तीव्र गति से बढ़ा । साथ ही फ्री ट्रेड ( स्वतंत्र व्यापार ) की आर्थिक नीति का सुत्रपात हुआ । फलस्वरूप देश के औद्योगिक संस्थानों को भारी धक्का पहुँचा । भारतीय मालों की बहुत अधिक कीमत होने से विदेशों में उनको सफल स्माप्त प्रायः हो गई । लेकिन भारत में विदेशी वस्तुओं को सफल बढ़ गई । वैज्ञानिक साधनों के अधिक प्रचार के कारण भारतीय ग्रामीण स्माप्त होने लगे । बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्र ढाका, मुर्शिदाबाद, सूरत आदि स्माप्त हो गए ।

यातायात के साधन बढ़ गये थे । भारत में रेल बन गए थे । रेलों के बन जाने से भारत का कच्चा माल विदेशों में जाने लगा । विदेशों का तैयार माल भारत में बिकने लगा । उनको कम कीमत और नवीनता ने भारतीय जनता को प्रभावित किया और दिन पर दिन उनका प्रचार अधिक होता गया ।

ऐसा कि पहले कहा जा चुका है, भारतीय कृषि-बंसा भी अंग्रेजों की नीति के कारण बरबाद हो रहा था । उद्योगधंधों के नाश होने से अधिकाधिक लोग इस कृषि की ओर आए । तब: कृषि-कर्मियों की संख्या बढ़ी । खेती का साधन पुराना था । तब: खेती की तरफ अधिक लोगों के जाने से वृद्धि तो विशेष हुई नहीं, बल्कि खेती पर अधिक लोगों का भार पड़ा ।

नहर सिंचाई का दर भी इतना अधिक था कि गरीब किसान उससे लाभ नहीं उठा सकते थे। दैव-कौप से भी कई बार फसल नष्ट हो गई। फलतः कई बार अकाल पड़े।  
 इन सब कारणों से जनता की आर्थिक स्थिति और भी दयनीय हो गई।

साम्राज्यवादी सरकार के शासन का व्यय भी भारतीय जनता ही वहन करती थी। लन्दन स्थित इण्डिया आफिस का खर्च भी भारत को डौना था। यह खर्च लाखों पाउण्ड वार्षिक था। ब्रिटेन के अन्य राजनीतिक कार्यों जैसे चीन में नियुक्त राजदूत, फारस में भेजे गये मिशन, अफगानिस्तान का शासन, अनेक ब्रिटिश कम्पनियों को दी गई सहायता की रकमों का भुगतान भी भारतीय जनता से हो होता था। उनकी पूर्ति के लिए करों को लगाना आवश्यक था। इन करों से भारतवासी बाज्रांत हो उठे। उनके अतिरिक्त अबोसीनिया (१८६७), ईराक (१८७५), अफगानिस्तान (१८७८), मिस्र (१८८२), सूडान (१८८५) और सर्ग (१८८६) के युद्धों में हुए भारी खर्च को देने के लिए भारत को बाध्य किया गया। इस पूर्ति के लिए भी भारतीय जनता पर नये-नये टैक्स लगाए गए। परिणामस्वरूप भारतीय जनता चारों तरफ से पिसने लगी। अंगरेज भारत में व्यापारी के रूप में आए थे। उनका मुख्य उद्देश्य आर्थिक शोषण ही था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने हथियार नीति, कुटनीति, बल प्रयोग, सभी उपाय किए। कम्पनी के अधिकार प्राप्त होने पर, विक्टोरिया का शासन स्थापित होने पर भारतीय जनता में यह आशा जगी थी कि अब भारत का शोषण पहले जैसा नहीं होगा, लेकिन अंगरेजों की आर्थिक नीति पहले जैसी हो बनी रही।

१८८५ में कांग्रेस की, तब प्रारम्भ में उसने राजनीतिक स्वतंत्रता से अधिक जोर आर्थिक विकास पर दिया। लेकिन १६ वीं सत्राब्दी के अन्तर्गत कोई आर्थिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हो सका, वह सर्ववत् हो चला रहा। शोषण अंगरेजों का ध्येय था, वह होता रहा। इसका उल्लेख एक अंगरेज ने इस प्रकार किया है —  
 हमारी प्रवृत्ति एक स्वयं के ज्ञान है। जो गंगा तट से सब अच्छी चीजों को छुटकर टेक्स तट पर ला निबोड़ती है।

१- पुस्तकालय इन्स्टीट्यूट सत्राब्दी — डा० रामकुमार वर्मा

२- हिन्दी कविता में अनुपम — डा० सुनील, पृ० २४, १९५७ ई०



## विधेदी युग

बीसवीं सदी के आरम्भ से राजनीतिक मांगों में उग्रता आने लगी थी । परिणामस्वरूप आर्थिक क्षेत्र में भी उग्र कदम उठाना आरम्भ हुआ । आलोच्यकाल के पूर्व ही राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में नव जागरण आ रहा था । इस युग में नव चेतना के प्रति उद्बुद्धता और बढ़ी । नव चेतना से अभिभूत भारतीय जनता ने अपनी विपन्नता देखी । उसका कारण जाना । वह कारण था अंग्रेजों राज्य द्वारा शोषण/राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित जनता ने इस शोषण के विरुद्ध आवाजें उठायां ।

१९ वीं श० में अंग्रेजों ने शोषण के लिए जिन भारतीय उद्योग बंधों को नष्ट करने का प्रयास आरम्भ किया था, वह बीसवीं श० के प्रथम दो दशकों में चलता रहा । मैनचेस्टर की मिलें भारतीय कच्चे माल से पकपती रहीं । भारतीय कच्चे माल के अभाव में उनका फलना-फूलना असम्भव था । स्वर भारतीय अपने उद्योगबंधों के नष्ट होने की वजह से विदेश में बनी चीजों पर निर्भर रहने लगे ।

आलोच्यकाल के पूर्ववर्तीकाल में ही भारतेन्दु ने इसके विरोध में आवाजें उठायी थीं । इन दोनों कदमों के विरोध में उन्होंने स्वदेशी का नारा लगाया था । पर यह कार्यान्वित नहीं हो सका था । विदेशी बहिष्कार ही स्वदेशी आन्दोलन है । इस आन्दोलन से देश के उद्योग-बंधों के विकास को सम्भावना थी । साथ ही, विदेशी माल की तरफ बन्द हो जाने से देश की सम्पत्ति देश में ही रह जाती । कांग्रेस के कार्यों में आर्थिक नीति का स्थान तो था, पर अभी तक वह उस दिशा में कोई विशिष्ट सक्रिय कार्य नहीं कर सकी थी । भारतीय जनता ने १९०५ ई० में, पहली बार स्वदेशी आन्दोलन के माध्यम से साम्राज्यवाद की आर्थिक नीति के विरुद्ध आंति मावना व्यक्त की । फलस्वरूप देश भर में विदेशी वस्त्रों की होली जली । स्वदेशी वस्त्रों व को अपनाने की प्रतिज्ञाएं हुईं । यह आन्दोलन व्यापक रूप में का-मंग के बाद रहा । 'स्वदेशी के शासन का राजनीतिक-आर्थिक फल बहिष्कार है' ।

अन्य जैक प्रकार के व्यव को भी भारत बहन कर रहा था । प्रमुख थे, भारतीय शासन द्वारा संचालन का अधाधारण व्यव दिल्ली दरबार के दुर्बल व्यव-भार, प्रथम महात्मा का अपार व्यव आदि । एक ओर जनता का आकांक्षित व्यव से पीड़ित थी ,



दूसरी ओर उन पर लादा यह व्यय-भार । उनकी स्थिति अगङ्ग्य हो उठी । उनमें अंगरेजी राज्य को आर्थिक नीति के प्रति माँ रोष-भाव प्रकट होने लगा । बेकारों की समस्या भी बढ़ रही थी । ऊँचो-ऊँचो अगिरियों के बावजूद, युवक बेकार थे । अतः उनके मन में अंगरेजी शासन के प्रति विरोध का भाव बसुल होने लगा । नवयुवक जातकवादी कार्यों के प्रति आकृष्ट होने लगे । उन नवयुवकों में जो बेकार थे, ज्ञान्ति तत्त्व उभरने लगे और वे अंगरेजी राज्य को नष्ट करने के लिए, गुधार की आशा का परित्याग कर, हिंसात्मक कार्यों की ओर उन्मुख हुए ।

किसान-वर्ग में भी ज्ञान्ति-चेतना सक्रिय होने लगी थी । कारण, प्राचीन युग की तरह गाँव अब राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र नहीं रह गए थे । खेती पर बढ़ते हुए बोझ के फलस्वरूप तथा जमींदारों के शोषण के कारण कृषकों की दशा दिनोदिन दयनीय होती जा रही थी । शोषण एवं अत्याचार के अंगरेजी शासन में उनकी आस्था भी नहीं रही । स्वर राजनीतिक-जागृति ने उनका ध्यान भी देश की परतंत्रता की ओर आकृष्ट किया । परिणामस्वरूप उनमें भी ज्ञान्ति-चेतना सक्रिय हुई ।

अंगरेज निलहे साहबों की अत्याचारपूर्ण नीति ने काल और बिहार के किसानों को तबाह कर डाला था । महात्मा गांधी का ध्यान उनको दर्दनाक स्थिति की ओर गया । १९१७ ई० में उन्होंने गौरे निलहों का विरोध सत्याग्रह के अस्त्र से कर उनका उद्धार किया । उनकी प्रयोग-शुद्धि सम्पन्न थी । १९१८ ई० में गांधी जी ने गुजरात के सैडा और अहमदाबाद के काल ग्रस्त कृषकों को कष्ट मुक्त करने के लिए सत्याग्रह का सहारा लेकर पूरी सफलता पाई । इससे किसानों की विचार-प्रक्रिया की नवीन दिशाएं उन्मुख हुई । उनके मन में अपनी स्थिति से उबरने की भावना बनी । इस प्रकार कृषकों के विचार-क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना का ज्ञान्तिकारी बीज पड़ा ।

वालोच्यकाठ में शोषण का रूप और था । सेतिहर मजदूर एक और अन्य प्रकार से दुष्ट जाते थे । अंगरेज उपनिवेशों में सेती करने के लिए भारत से प्रतिज्ञाबद्ध मजदूर ले जाते जाते थे । वहाँ इन मजदूरों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता था और भारत लौटने की नहीं दिया जाता था । अक्षिपित, सेतिहर मजदूरों को कैंक प्रलोभन देकर प्रतिज्ञाबद्ध पर बंधे का विज्ञान लाया लेते थे । ऐसे अंगरेजों की जल्ता गिरमिटिया साहस्य कबली थी । इस अनादुषिक कार्य के विरुद्ध भी गांधी जी ने आवाज उठाई और सत्याग्रह अस्त्र का प्रयोग किया । इसमें भी उन्हें सफलता मिली ।

इस प्रकार यह युग आर्थिक परिस्थितियों की दृष्टि से शोषण और उत्पीड़न का युग अवश्य रहा, पर इस शोषण की प्रतिक्रिया स्वल्प तो ब्रह्मजाति भी व्याप्त रही। भारतीय जनता के विचारों में नये द्वाितीय का उन्मेष हुआ, जागृति की नयी किरणें फुटीं।

### हायावाद युग

इस युग की आर्थिक परिस्थितियों का पर्यवेक्षण पूंजीवाद के विकास और शोषण का पर्यवेक्षण है। इस काल में सामन्तो वर्ग व्यवस्था टूटने लगी और उसके स्थान पर पूंजीवादी वर्ग तंत्र आया। भारत में अभी उद्योग वर्गों का विकास बहुत कम हुआ था। कारण था-पराधीनता। जब कि इंग्लैण्ड में औद्योगीकरण बहुत पहले हो चुका था। अंगरेज भारत से कच्चा माल लेने और उसे अपना बाजार बनाने हुए थे। अतः भारतीय जनता के बहुत प्रयत्नों के बावजूद भारत में औद्योगिक क्रान्ति की लहर नहीं फैल सकी, पर आलोच्यकाल में पूंजीवादी व्यवस्था के आगमन के साथ ही भारत की औद्योगिक उन्नति प्रारम्भ हुई। देश के औद्योगीकरण की बात माण्टेग्यू बेन्सफोर्ड रिफार्म में भी कही गयी थी, पर उसके पीछे अंगरेजों की हूटनीति ही थी। रिपोर्ट में कहा गया था :

आर्थिक और सैनिक दोनों ही दृष्टियों से साम्राज्यवादी हितों की यही मांग है कि जब आगे से हिन्दुस्तान के प्राकृतिक साधन अच्छी तरह काम में लाये जायें। हिन्दुस्तान का औद्योगीकरण होने पर साम्राज्य की ताकत और कितनी बढ़ जायगी, उस हम अभी इसका हिसाब नहीं लगा सकते।

भारत में उद्योग-वर्गों की प्रारम्भ करने के पीछे अंगरेजों का उद्देश्य युद्ध जनित औद्योगिक ब्रास की सन्तिपुर्ति करना था। इसके लिए उन्होंने भारतीय पूंजी को भी आगे लाने की प्रोत्साहित किया। इसके पीछे उनका उद्देश्य था पूंजीपतियों के विकास द्वारा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के आर्थिक पक्ष को निष्क्रिय बनाना। उन्हें भारतीय पूंजी अपना उद्योग से विदेशी उद्योग-वर्गों की तरह स्तरा भी नहीं था।

युद्धोपरान्त आलोचकाल में भारत में अन्य विदेशी देशों के सामानों का आयात विशेषरूप से बढ़ रहा था। अंग्रेज यह नहीं चाहते थे कि भारत अन्य देशों का मालगोदाम बन जाए। अतः उन्होंने अन्य विदेशी देशों के आचार पर कर को मात्रा बढ़ाई और दूसरी ओर भारतीय उद्योग धंधों को प्रोत्साहित किया। इससे अंग्रेजों को यह आशा थी कि पूंजीपति वर्ग उनको और झुकेगा। फिर युद्ध-काल में अंग्रेजों ने भारत के औद्योगिक विकास का वादा भी किया था। अतः आलोच्य काल का पूर्वार्द्ध औद्योगिक विकास की प्रकृति केतना से मरा है।

भारतीय उद्योग अंग्रेजों को इस नीति के फलस्वरूप बनने लगा। १८१५ ई० से १८३३ ई० के मध्य भारत के औद्योगिक उत्पादन में ५६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। १८१९ में मिल मजदूर २९ लाख थे। १८२९ में वह संख्या २६ लाख हो गई। उस काल में कोयले और इस्पात के उत्पादन में भी वृद्धि हुई। १८१३ ई० में भारत में व्यवहृत होने वाली वस्तुओं का तीन चतुर्थांश विदेश से आता था। १८३२-३४ ई० में यह क्रम उलट गया। अब एक चौथाई माल ही विदेश से आने लगा। लोहे का सामान जो भारत में व्यवहृत होता था, तीन चौथाई बनने लगा।

इससे स्पष्ट है कि आलोच्यकाल में देश के औद्योगीकरण का बहुत विकास हुआ, लेकिन अंग्रेज भारतीय पूंजी का विकास बहुत अधिक नहीं चाहते थे। इसलिए १८२४ ई० से उन्होंने उन्हीं उद्योगों को बढ़ाने में सहायता की जो, जिनमें अंग्रेजी पूंजी लगी थी। महायुद्ध के समय अंग्रेजों द्वारा जो नीति बरनी जाती थी, वह अब नहीं रही। अतः सरकार के विरुद्ध भारतीय पूंजीवाद का आ सड़ा हुआ और राष्ट्रीय कांग्रेस को जो भारत की औद्योगिक उन्नति का पक्षपाती था, सहायता देने लगा। राष्ट्रीय द्वांन्ति की दिशा में पूंजीपति वर्ग, सरकारी नीति से असन्तुष्ट होकर ही बढ़ा था।

सरकार से १८२४ ई० में लौहा उत्पादन के लिए संरक्षण की मांग की गई। पर वह मांग अस्वीकृत हुई। साथ ही उसे दी जाने वाली सरकारी सहायता भी बन्द हो गई। अतिरिक्त आयात के ऊपर जुंजी विशेष रूप से कम कर दी गई। सरकार की मुद्रा विनियम की नीति से उन्हें बहुत झुका लगा। अब सरकारी सहायता तो बन्द थी। लेकिन विदेशी उद्योगपतियों की सहायता से भारतीय पूंजी ने प्रगति करना आरम्भ किया। पर रुपये की कीमत कम हो जाने से देशी उद्योगधंधों

की स्थिति चिन्तनीय थी ।

स्पष्ट है कि उस नीति के कारण १९२८ ई० के बाद भारतीय मुद्रा से प्रारम्भ होने वाले उद्योग-व्यवसायों को वृद्धि अल्प ही हो सकी ।

इन्हीं दिनों रिजर्व बैंक स्थापित हुआ । उससे देश का सम्पूर्ण अर्थ तंत्र अंगरेजों के हाथ में आ गया । रुपये का मूल्य कम हो गया था । अतः भारतीय वस्तुओं की कीमत गिर गई जब कि अंगरेजों का मूल्य और कर्ज बहुत ज्यादा हो गया । फलतः देश की दशा दयनीय हो उठी और उसका आर्थिक जीवन शोषण के परिणामस्वरूप जर्जर हो गया ।

कर-कारखानों के कुलने के कारण, देश के प्राचीन उद्योग और मो नष्ट हो गए थे । शिल्प उद्योग बरबाद हो चुका था । इस उद्योग से जितने लोग आर्थिक-पार्जन करते थे, अब मिलों में उतने व्यक्ति काम नहीं पा सके । डी०स्व० कन्नन का यह कथन भारतीय औद्योगिक स्थिति के बारे में ठीक हो है :-

घोड़े से बड़े बड़े औद्योगिक केन्द्र जरूर हैं, लेकिन दस्तकारी से जितने लोगों की रोजी चलती थी, कारखानों से उतने अधिक लोगों को रोजी नहीं चलती । देश के प्रतिवर्ष के आयात से निर्यात कम है ।

फलतः देश में बेकारी बढ़ती गई । कृषि के प्राचीन ढंग पर, अधिक लोगों का जीवन-निर्वाह सम्भव नहीं था । अतः देश की आर्थिक स्थिति दयनीय होती गई ।

अंगरेजों का स्कापित्य बैंक, बीमा, स्वर्ण, जहाज, रेल, चाय, काफी, रबर, जूट आदि उद्योगों पर था । इससे वे देश का आर्थिक शोषण करते रहे । प्रथम महायुद्ध का सर्व मी भारत को व्यर्थ करना पड़ा । करों की संख्या बढ़ती जा रही थी । सम्झौतों के नाम पर देश की सम्पत्ति लूट ली गई थी । इन सब कारणों का समूचा प्रभाव देश की आर्थिक स्थिति पर पड़ा और देश-दशा अत्यधिक शोचनीय होती गई ।

१- हिन्दुस्तान में मुद्रा का बहार की उन्नति - डी०स्व० कन्नन, पृ० ४५१ स० १९३४ ई०

इस काल में आर्थिक स्थिति का एक और नवीन मोड़ आया। वह था पूँजीवाद का विरोध कर। मजदूर वर्ग के उत्थान की आकांक्षा और उनका शोषण मिटा देने का अभियान। कम्युनिस्ट पार्टी इस दिशा में सबसे सक्रिय रही। उनके अतिरिक्त जवाहरलाल नेहरू, आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण जैसे कांग्रेसी नेता भी इस दिशा में काम करते रहे। ये नवयुवक थे और समाजवादी अर्थ व्यवस्था के पक्षधर थे।

कम्युनिस्ट पार्टी ने १९२२ के आस पास मजदूर और किसानों में जागरण की चेतना भरी। उनके निर्देशन में ही किसान-मजदूर आन्दोलन प्राप्ति कर रहा था। गुजरात में किसानों की जोरदार आन्दोलन सरकार के विरुद्ध हुआ। इस आन्दोलन से भी सारे देश में जागृति फैली मजदूरों की हालत अत्यधिक दयनीय थी। वे बेहद अभाव ग्रस्त थे। उनमें वर्ग-चेतना का विकास हुआ। उनके द्वारा विदेशी पूँजीपति ज्यादा लाभ उठाते हैं थे। इसलिए उन्होंने शोषण का विरोध किया। मजदूरों की अज्ञानता से आर्थिक व्यवस्था में नवीन चेतना उत्पन्न हुई।

इस वर्ग चेतना के परिणामस्वरूप बंगाल के झूट मिल में हड़ताल हुई। टाटा आयरन वर्क्स तथा बम्बई की कमड़ा मिलों में भी हड़तालें हुईं। मजदूरों के आन्दोलन पर सरकार ने मार्च १९२६ में कड़ा क़रार अस्तियार किया और मजदूरों के कई नेता कैद कर लिए गए। इस प्रकार मजदूर वर्ग की चेतना के फलस्वरूप एक और अंगरेजों की शोषण नीति का विरोध हुआ तो दूसरी ओर भारतीय पूँजीपतियों की भी हानि हुई।

इस काल में कलकत्ता आन्दोलन शुरू हुआ और नमक कानून रद्द किया गया।

### प्रतिवाद युग

इस युग में देश की आर्थिक स्थिति कई-कई उतारों-चढ़ावों से आंदोलित होती रही। इस काल में देश की आर्थिक स्थिति और दयनीय होती गई। महायुद्ध के आर्थिक बोझ से ये देश की अस्थिरता प्राप्ति पहुँचाई।

शोषण की नीति को अंगरेजों द्वारा प्रारम्भ हुई ठी थी, उसमें वृद्धि ही होती गई। इस काल में भी भारत से इंग्लैंड जाने वाला *ख़िराज* अतिरिक्त बढ़ता गया। प्रसूत बॉम्बे के अनुसार १९४५ ई० में इंग्लैंड प्रतिवर्ष भारत से १२५० लाख पाउंड विदेशी मुद्रा का भुगतान करता था। साथ ही कि पूँजी से हुए नफ़े का शोषण



मो बढ़ रहा था ।

वैसे भारत औद्योगिक विकास की दिशा में धीरे-धीरे अग्रसर था, पर वह प्रगति विशेषतः वस्त्र उद्योग की दिशा में ही थी। औद्योगीकरण में भारी उद्योग महत्वपूर्ण होते हैं। जैसे लोहा, इस्पात, मशीन आदि का उत्पादन। भारत इस दिशा में विशेष उन्नति नहीं कर सका था। साम्राज्यवादी शक्तियों ने विषयकालीन उद्योग-धंधों का विकास अवरोध कर रक्खा था। बैंक व्यवस्था पर अंगरेजों का नियंत्रण था और वे भारत के औद्योगिक और स्वतंत्र आर्थिक प्रगति में सदैव बाधक बने रहे। इसी से भारतीय उद्योगों पर ब्रिटिश पूंजी का आधिपत्य भी बना रहा।

युद्धकाल में भारत का शोषण अनेक ढंग से होता रहा। औद्योगिक विकास भी नहीं हो सका। भारत की राष्ट्रीय आय का एक तिहाई तक सैनिक रक्षा में व्यय हुआ। युद्ध का बहुत व्यय मुद्रा-प्रसार के द्वारा पूरा किया गया। १९३६ ई० से १९४५ ई० के बीच भारत में ६ गुने अधिक नोट चलाए गए। इससे फीजी ठेकेदार और मिलों के स्वामी बेहद लाभान्वित हुए। कुमुदित जनता इस बीच से पिस उठी। जीवन की आवश्यकताओं के अभाव में जनता की स्थिति दयनीय रही। मंहगी बढ़ती गई। जनता अनेक कष्टों से झुक्त होती रही।

अंग्रेजों की स्थिति भी महायुद्ध की आर्थिक विफलताओं के कारण नाजुक थी। अंगरेजों की स्थिति राजनीति-दिशा में तो चिन्त्य थी ही, आर्थिक दृष्टि में भी यही दशा हो गई। ब्रिटिश पूंजीवाद बहुत कमजोर हो गया। अतः अब इस दिशा में अंगरेजी पूंजी ने भारतीय स्वाधिकारी पूंजीपतियों से समझौता प्रारम्भ किया। १९४५ के बाद विशेषतः ऐसे समझौते हुए। बिड़ला-नफीस, टाटा-इम्पीरियल केमिकल, बिड़ला-स्टीलकॉर बालचन्द्र-आस्फ़लर आदि महत्वपूर्ण समझौते हैं।

पूंजीवादी शक्ति और शोषण-वृत्ति का विरोध भारत में, समाजवादी संस्थाओं द्वारा बालीव्यकाल के पूर्व ही शुरू हो गया था। पूंजी और श्रम का विरोध विकसित हो रहा था तथा कर्म-कैला प्रारंभ हो गई थी। इस युग में कर्म-कैला तीव्रतर हुई। कारण यह था कि महायुद्ध की वजह से मंहगी बढ़ गई थी। सबसे मजदूरों और किसानों की दशा हीनतर होती जा रही थी। पूंजीपतियों तथा व्यापारियों के शोषण के वे उन्हें सहन न पा पाया। स्थिति विरोध का स्वर तीव्रतर होने लगा।



किसानों की दशा भी शोचण के कारण दयनीय होता जा रही थी । उन्हें कुल आमदनी का एक तिहाई हिस्सा लगान के रूप में दे देना पड़ता था । उन पर कृष-बोझ भी बढ़ता जा रहा था । कृषकों पर ४० करोड़ पौण्ड अण १९२९ में था । वह अण १९३७ में १३५ करोड़ पौण्ड हो गया ।

महायुद्ध के समय कर्मा में चावल आना बन्द हो गया । इससे देश अकालग्रस्त हो गया । बंगाल में भीषण अकाल पड़ा । प्रो० के० पो० चट्टोपाध्याय के अनुसार उस अकाल में ३५ लाख वाक्मो मरे । विभिन्न बीमारियों से १२ लाख मनुष्य मौत के शिकार हुए । इस प्रकार किसानों की वार्षिक स्थिति भी दिन-दिन होती । मंहलाई का एक नमूना यह होगा कि १९४२ ई० में जो चावल ६५० मन था, १९४३ में वह ४०४० मन बिकने लगा । देहातों में वह १०० ५० मन तक कम । सेती और ग्रामोद्योग की भी इस अकाल से बहुत क्षति हुई ।

इस काल में मजदूरों की संख्या में अत्यन्त वृद्धि हुई । १९३८ में मजदूरों की संख्या करीब ६ करोड़ थी । मजदूरों की दशा अत्यन्त दयनीय थी । वे बर्ग-बेतना से जाग उठे थे । देड युनियनों का कार्य भी इस दिशा में बहुत महत्वपूर्ण रहा । कई कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों की स्थापना के साथ ही देड युनियनों में अधिक क्रियाशीलता आई । हड़तालों की एक बड़ी लहर देश में १९३७-३८ में आई । १९३७ में हड़तालों की संख्या ३७६ थी ।

जब १९३९ ई० में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ । मजदूर वर्ग ने राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्वपूर्ण कदम उठाये । जब कि राष्ट्रीय आन्दोलन के नेतृत्वण अभी टालमटोल करने में ही लगे हुए थे, सबसे पहले मजदूर वर्ग ने साम्राज्यवादी युद्ध के खिलाफ हड़ताल का शुरुआत किया । २ अक्टूबर १९३९ को साम्राज्यवादी युद्ध के विरोध में बम्बई के नव्हे ह्वार मजदूरों ने हड़ताल की । इस प्रकार मजदूर वर्ग ने साम्राज्यवाद के विरोध में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को नवीन शक्ति दी ।

इस प्रकार साम्राज्यवादी शोषण देश की स्थिति को ख़तरा बना हो रही थी । ख़तरा युद्ध जनित मंहगी और काल ने देश की आर्थिक स्थिति और भी ख़राब कर दी । आर्थिक दृष्टि से भारत अत्यन्त दयनीय हो उठा ।

इस काल में कर्म-क्षेत्र अत्यधिक विकसित हुई । देशी और विदेशी पूँजीपतियों के विरोध में मजदूर संगठित होकर संघर्ष करने लगे और आर्थिक शोषण को समाप्त करने का प्रयत्न करने लगे ।

१९४७ में स्वतंत्रता प्राप्त करने पर, विभाजन से, भारत में अनेक आर्थिक अव्यवस्थाएँ उत्पन्न हुई । भारत में कौनो नई राष्ट्रीय सरकार को युद्धकालीन अव्यवस्था के दुष्परिणामों और मुद्रास्फीति जन्य विषम परिस्थितियों से टकराना पड़ा । भारत में चावल, गेहूँ, कपास और पटसन जैसे कच्चे मालों की कमी हो गई । यह विभाजन का फल था, क्योंकि इनको पैदा करने वाले क्षेत्र पाकिस्तान में चले गये । फिर स्वतंत्र भारत में पाकिस्तान से लाखों विस्थापित आर, जिनके पुनर्वास और गृहायता देने का विषम दायित्व भारतीय सरकार पर पड़ा । उत्पादन में तो कोई वृद्धि थी नहीं । अतः सभी चीज़ों का मूल्य बेतरह बढ़ने लगा । आयात की भी कठिनाइयाँ थीं, क्योंकि परिवहन अव्यवस्थित था और औद्योगिक उपकरण भी अनुपलब्ध थे । कांग्रेस द्वारा जनता की आर्थिक उन्नयन का आश्वासन मिला था । अतः जब जनता ने आर्थिक दशा को सुधारने की जोरदार माँग आरम्भ की । इस प्रकार अनेक कठिनाइयों का समाधान कर सरकार को बाने बहना था । इन कठिनाइयों की विशालता की ओर संकेत करते हुए श्री बी०के०आर०बी० राव ने ठीक ही लिखा है, 'सब तो यह है कि स्वतंत्र भारत की नयी सरकार ने कम-अपार आर्थिक कठिनाइयों के बीच जीवन की राह पर कदम उठाया था और जो आस्थापान थे, उनके अतिरिक्त किसी की भी यह स्पष्ट न था और न यह निश्चय था कि परिणाम क्या होगा ।'

इस प्रकार देश के समस्त कई आर्थिक समस्याएँ बढ़ी थीं । साध, कच्चे माल, परिवहन, औद्योगिक उद्योग, श्रमजीवियों के पुनर्वास की समस्याएँ तत्काल समाधान चाहती थीं ।

---

१- स्वतंत्रता के बाद भारतीय अर्थ व्यवस्था : एक विद्वानावलोकन-बी०के०आर०बी० राव, वाकाल, फरवरी, १९५६ ई० ।

स्वतंत्रता के बाद प्रारम्भ में तीन वर्षों तक सरकार राजनैतिक समस्याओं में अधिक उलझी रही; आर्थिक समस्याओं में कम । लेकिन आर्थिक समस्याओं को पूर्ण उद्घाटन की गई, ऐसी बात नहीं है । इस साथ समस्या विषम थी । इसका समाधान आवश्यक था । १९४८ ई० में लाधान पर १० नियंत्रण हटा लिया गया । शुरू में इसकी भीषण प्रतिक्रिया हुई और लाधानों का दाम तोब्रतर होने लगा । विवश होकर, आठ महीने के पश्चात् सरकार को पुनः उसे नियंत्रित करना पड़ा । साथ सामग्री का बेहद अभाव, इस तेजी का कारण था और इसके समाधान के लिए विदेशों से अनाज मंगाना आवश्यक था । साथ ही देश के उत्पादन में वृद्धि की भी आवश्यकता थी । इस सरकार ने दोनों दिशाओं में प्रयत्न प्रारम्भ किया ।

### निष्कर्ष

#### बाह्य परिस्थितियों का क्रान्ति पर समवेत प्रभाव

ऊपर जिन परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया है, वे भारत को राष्ट्रीय क्रान्ति-भावना के उद्भव तथा विकास की दिशा में महत्वपूर्ण प्रेरक स्थितियाँ हैं। उनके संघटन से भारतीय जनता के हृदय में क्रान्ति को विचारधारा का उदय हुआ।

डा० लक्ष्मीसागर बाबूजी ने अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति को राष्ट्रीय चेतना के उदय का श्रेय दिया है। 'पश्चिम की एक जीवित जाति' के सम्पर्क से राष्ट्रीय-चेतना का उद्भव होना उन्होंने घोषित किया है<sup>१</sup>। डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा भी स्वीकार करते हैं कि अंग्रेजी के प्रभाव से हमारी दुस्त किमूर्च्छित राष्ट्रीय भावना जाग्रत हुई<sup>२</sup>। स्व० जवाहरलाल नेहरू की दृष्टि से भी भारत में परिवर्तन और क्रान्ति लाने का श्रेय अंग्रेजों को है। डा० रामविलास वर्मा ने इससे भिन्न मत प्रकट किया है, 'अंग्रेज साम्राज्यवादियों ने भारतीय जनता को गुलामी की शिक्षा दी।<sup>३</sup> मरसक उसके राष्ट्रीय सम्मान और उसकी प्रतिरोध-भावना को कुचलने की कोशिश की<sup>४</sup>।

अंग्रेजी जाति और भाषा के सम्पर्क से भारत में शिक्षा की नई प्रणाली और नये विचार का दृष्टिकोण उदित हुआ। बौद्धिक चेतना के प्रकाश में परम्परा और जर्जर मान्यताओं की नये दृष्टिकोण से परखा जाने लगा। परम्परा के स्थान पर नवीनता ठे जाने का बहुत नहीं तो कुछ श्रेय अंग्रेज और अंग्रेजी का देना होगा किन्तु क्रान्ति के वाकिर्भाव के लिए किसी जाति के सम्पर्क बल्कि उसकी प्रेरणा की आवश्यकता नहीं होती। क्रान्ति अस्तौष की घुटन से

१- भारतेंदु हरिश्चन्द्र— डा० लक्ष्मीसागर बाबूजी, पृ० ३ सन् १९४८ ई०

२- हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव— डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा, पृ० ४६, सं० २०११

३- हिस्सारी बाक दण्डिया— जवाहरलाल नेहरू, पृ० २६-६६, सन् १९४६ ई०

४- भारतेंदु हरिश्चन्द्र — डा० रामविलास वर्मा, पृ० ३२, सन् १९४३ ई०

पैदा होती है और बत्थाबार, उत्पीड़न की वृद्धि से तात्पर्य होती जाती है। इसलिए क्रान्ति के उद्भव का श्रेय अंग्रेजी और अंग्रेजों के सम्पर्क को नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि भारतीय जन-जीवन में क्रान्ति की एक सुदीर्घ परम्परा है। यह ऐतिहासिक परम्परा अंग्रेजी तथा अंग्रेजों के सम्पर्क से उद्दीप्त हुई है, इतना अवश्य मानना होगा। आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाओं ने पुनर्जागरण को प्रेरणा देकर क्रान्ति को अधिक सक्रिय बनाया।<sup>1</sup> आर्य समाज में बुद्धिवाद, उपयोगितावाद, राष्ट्रीयता तथा प्राचीन हिन्दू आदर्शों का विचित्र संयोग था।<sup>2</sup> जकरिया के अनुसार 'राष्ट्र के राजनीतिक उद्धार के आन्दोलन का स्व-धारण करने से बहुत पहले उसने वैयक्तिक धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों का सुत्रपात किया'।<sup>3</sup> इससे प्रकट है कि अंग्रेजों के सम्पर्क के अतिरिक्त आर्य समाज आदि धार्मिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं ने सुधारवाद के माध्यम से राष्ट्र को नये ढंग से सोचने तथा वर्तमान अवोगति से मुक्ति पाने की प्रेरणा दी, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वरूप प्रकट हुआ। इन संस्थाओं ने लोड़ने तथा नयी व्यवस्था स्थापित करने की दशा में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

भारत को राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वरूप अन्य क्रान्तियों की तरह प्रारम्भ में सुधारवादी था। राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक सभी संस्थाओं ने सुधार की मांग की। राजनीतिक नेताओं ने कांग्रेस तथा अन्य संस्थाओं के मंच से शासन में सुधार करने की प्रार्थनाएं तथा निवेदन किए। धार्मिक संस्थाओं ने धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में सुधार करने का मंत्र दिया।<sup>4</sup> यही सरकार की दृष्टि में थी। शिक्षा प्रसार द्वारा वह इसी मनीषा का विकास करना चाहती थी, जिससे भविष्य में क्रान्ति की सम्भावनाओं तथा उग्र वादिता को प्रश्रय न मिले।<sup>5</sup>

अंग्रेजों ने भारतीय जनता को अपने कार्यों से अपमानित, पीड़ित तथा शोषित किया। इसकी प्रतिक्रिया भारतीय नस्तिष्क तथा जीवन में प्रकट हुई। शासन-व्यवस्था में सुधार की कामना समानता के वातावरण पर की गई। काले-मौर

१- रेवेण्डे इण्डिया—जकरिया, पृ० १०, ११, १२ ई०

२- वही, पृ० १५

३- इन्ही सभी स्तरों की पुष्टि — रामकृष्ण मिशन

के विषय से भारतीय जनता बहुत अपमानित हुई। उसके अनेक अधिकार उससे छे लिये गये। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों में प्रतिक्रिया और विरोध प्रकट हुआ। यह विरोध सक्रिय नहीं हो सका। इस कारण क्रान्ति का स्वरूप तथा उसको क्रियाशीलता दृष्टिगत नहीं होती। केवल सुधारों की प्रार्थना तथा उसके लिए निवेदन करने का माध्यम ही इस काल की जनता को प्राप्त हुआ। इस सुधार में क्रान्ति मूलक विरोध का भाव भी निहित है। प्रत्येक राष्ट्र में क्रान्ति को पृष्ठभूमि ऐसी हो होती है। सुधारों की मांग को यह विरोध-भावना अक्रान्ति कहकर टाली जा नहीं जा सकेगी। यह क्रान्ति की पृष्ठभूमि है, जिसके आधार पर क्रान्ति के अधिक क्रियाशील तथा सशक्त चरण जागे बढ़ सके।

प्रार्थना और निवेदन के द्वारा प्रकट की गई मांग के कारण कुछ लोग भारतीय राष्ट्रीय क्रान्ति को राजनीतिक मिठाई वृत्ति बताते हैं। स्वयंवरायस काल के राजनीतिज्ञों के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं -- "भारतीय राष्ट्रीयता के जनकों की राष्ट्रवादी की अपेक्षा वैधानिक छोड़कर और सुधारवादी कहा जा सकता है।" कहा जा चुका है कि भारतीय राष्ट्रीयता का स्वल्प प्रारम्भ में सुधारों की मांग के द्वारा अपना विरोध प्रकट करना या और क्रान्ति तथा राष्ट्रीयता के प्रारम्भिक काल में इस तरह की भावना हो पैदा होती है। सरकार मांगों तथा सुधारों के मार्ग में खिन्नी ही अधिक भाषा हासती है, राष्ट्रीय क्रान्ति अधिक विकसित और तीव्र होती जाती है। इसलिए यह नहीं सोचना चाहिए कि भारतवर्ष दुर्गम राष्ट्रीय चेतना में क्रान्ति के तत्त्व तथा क्रान्तिमूलक भावना नहीं है। सामाजिक, धार्मिक और वार्षिक विज्ञानों में भी क्रान्ति के अन्य स्वरूपों का विकास हुआ। राजनीतिक दासता के युग में उत्पन्न होने के कारण विरोधमूलक क्रान्ति का स्वल्प उक्त काल में प्रकट हुआ। राष्ट्रीय क्रान्तिकारियों की दृष्टि ज्यों-ज्यों स्पष्ट और विकसित होती गई, विरोध में सक्रिय और क्रियाशीलता बढ़ने लगी।

कहा जा सकता है कि क्रान्ति का विरोध अधिक उग्र होता है। भारतवर्ष काल की परिस्थितियाँ इस योग्य नहीं कि उग्र क्रान्ति प्रकट हो, क्योंकि



५७ की क्रान्ति में बड़ी वैरुमी से क्रान्तिकारियों का दमन किया गया था । क्रान्ति के उपयोगों का भी अभाव था । मानसिक दृष्टि से राष्ट्र तोत्र और उग्र विरोध के लिए प्रस्तुत नहीं था । इसलिए आलोच्य काल के प्रारम्भ में उग्र राष्ट्रीयता की अपेक्षा करना उचित नहीं प्रतीत होता ।

इन निवेदनों और मांगों के माध्यम से भारतीय जनता ने वर्तमान शासन के प्रति अपना असंतोष प्रकट किया । विक्टोरिया के घोषणापत्र के प्रति असंतोष रंग भेद से दायम, सरकारी नौकरियों में भारतीय जनता के स्थिर न लिए जाने से असंतोष वर्तमान था । वार्षिक ऋण में भी राष्ट्र दुरवस्था अस्त था । इसलिए राष्ट्र के उद्योगधंधों में रुचि रखने वाले मध्यम वर्ग ने उद्योग-धंधों के विकास की मांग की । इस वर्ग ने राष्ट्र के वार्षिक उत्पन्न का मूल उद्योग धंधों के विकास में देता ।

मार्सेन्दु युगिन राष्ट्रीय क्रान्ति असंतोष से पैदा हुई । वर्तमान उद्योगति की करुणा ने उसे तीव्र किया । दमन, अमानता, अपमान आदि ने उसको अधिक शक्ति दी । इस तरह छुधार की मांगों के द्वारा विरोध प्रकट करते हुए भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति रंगमंच पर अवतरित हुई ।

ज्यों-ज्यों भारतवासी अपनी वर्तमान परिस्थितियों और अपने पतन से असंतुष्ट होते गए, त्यों-त्यों राष्ट्रीय चेतना में तीव्रता आती गई । इसलिए मार्सेन्दु युग की क्रान्ति चेतना से द्वितीय-युग की क्रान्ति-चेतना अधिक तीव्र और शक्तिपूर्ण है । कालक्रमेण स्वतन्त्रता की भावना भारतवासियों में उत्पन्न होती गई जिस कारण उनके आन्दोलनात्मक कार्य अधिक सक्रिय और तेज होने लगे । शासकों ने इसका विरोध दमन से किया, बल्कि यों कहा जाय कि उन्होंने दमन के द्वारा भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति को पूर्णतः दबा देने की चेष्टा की । किन्तु असंतोष और वर्तमान शासन के प्रति विरोध की भावना इतनी शक्तिपूर्ण थी कि दमन की पाशविकता ने उसे अधिक तेज किया ।

विशुद्ध शासक क्रान्ति के जनक होते हैं । गुरन्नाथ कर्जी ने यह चेतना इन दिनों में लिखा है कि प्रतिक्रियावादी शासक महान जन-आन्दोलन के निर्माता होते हैं । कां-कां, स्वदेशी आन्दोलन आदि क्रान्ति परक आन्दोलनों की सरकार ने दमन करने की चेष्टा की, किन्तु इस चेष्टा के फलस्वरूप राष्ट्रीय भावना में तेजी आती गई । द्वितीय युग के प्रारम्भ में उदारवादी विचारधारा होने के बावजूद

कार्यगत घटनाओं ने भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति को अधिक विस्तृत, अधिक शक्तिशाली और अधिक तीव्र किया। कांग्रेस और स्वदेशी आन्दोलन को दबाने के लिए विदेशी शासन ने जो दमन-बड़ बलाया, उससे राष्ट्र में नई जागृति, नया तेज, नये रूप में प्रकट हुआ। सम्भवतः शान्तिप्रिय भारत का ऐसा आन्दोलनकारी रूप ब्रिटिश-शासन ने पहले कभी नहीं देखा होगा।

ब्रिटिश-शासन की दमनात्मक एवं कांग्रेस की उदारवादी नीति की प्रतिक्रिया से भारत के नवयुवकों में क्रान्तिवाद और आतंकवाद का उदय हुआ। क्रान्तिकारियों और आतंकवादियों ने सरकारी सम्पत्ति नष्ट कर दी तथा छूट ली। अनेक अत्याचारी और निरंकुश शासक मारे गये। उस तरह के आतंकवादी कार्यों के प्रभाव का विश्लेषण करते हुए तिलक ने कहा था -- 'सरकार को नीति कौन से नहीं टूट सकती, पर कम से सरकार का ध्यान उस अवस्था की तरफ सींचा जा सकता है, जो उसकी सैनिक शक्ति के मद के कारण उपस्थित है'। स्पष्ट है कि ऐसे आतंकवादी क्रान्तिकारियों के माध्यम से सरकार की दमन नीति का विरोध किया गया और उसकी सैनिक-शक्ति के सामने एक छोटा-सा प्रश्न बिह्वल उपस्थित हुआ। राष्ट्रीय क्रान्ति को इन कार्यों ने अधिक तीव्र और शक्तिशाली बनाया।

द्वितीय-युग में राष्ट्रीय क्रान्ति के वर्तमान पहली बार स्वशासन की मांग की गई। तिलक ने स्वराज्य की वन्द्यसिद्ध अधिकार घोषित किया। इस काल में अपने राजनीतिक रूप में भारतीय राष्ट्रीयता ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा देश का शासन बख्शीकार करने लगी, उससे मुक्ति की कामना करने लगी। इस काल में सरकार ने क्रान्ति पैतना को बन्द करने के लिए अनेक हुंवार किए, किन्तु समस्याओं का सम्पूर्ण निदान उनसे सम्भव नहीं था। इसलिए द्वितीय-युग की राष्ट्रीय पैतना<sup>१</sup> युगान्तरकारी पैतना ही नहीं। इस कारण इस राष्ट्रीयता में विद्रोह तथा आन्दोलन का समावेश विवेक रूप से हुआ। द्वितीय-युग की राष्ट्रीय-क्रान्ति - मावना भारतीय-युग की अपेक्षा अधिक सफेद, अधिक प्रखर और अधिक शक्तिपूर्ण है।

१- हिन्दी कविता में युगान्तर-- डॉ० हुनीन्द्र, पृ० १६, स० १९५७ ई०

२- संक्षिप्त पैतनाक्रम-- एडविन बेकिन, पृ० ६, स० १९१३ ई०

हायावाद युग में राष्ट्रीय क्रान्ति में अधिक क्रियाशीलता तथा उग्रता दिखायी पड़ती है। इस काल में महात्मा गांधी भारत की राष्ट्रीय चेतना के सूत्रधार रूप में अवतीर्ण हुए। उन्होंने सत्याग्रह और अहिंसा को अपने अस्त्र रूप में के धारण किया। इसी अस्त्र के माध्यम से उन्होंने ब्रिटिश शासन के तोपों तथा मशीनगनों का सामना किया। यह अस्त्र कोई सामान्य अस्त्र न था। अपनी अहिंसा के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था, 'मेरी अहिंसा अत्यन्त क्रियाशील शक्ति है। उसमें कायरता तो क्या दुर्बलता के लिए भी स्थान नहीं है।' उनकी अहिंसा में अस्त्रहीनों का आत्मकल था, जिसमें पशुबल से अधिक शक्ति थी। सत्य और अहिंसा की ओर से उन्होंने राष्ट्रीय क्रान्ति चेतना को अधिक तेजस्विता दी। हायावाद-युग में सम्पूर्ण जनता ने विदेशी शासन के प्रति विद्रोह किया। देश का प्रत्येक वर्ग इस विद्रोह और क्रान्ति में सहयोगी बना। स्वतन्त्र युग में तिलक और गोरे के ऐसा सामूहिक सहयोग नहीं मिल सका था, गांधी जो ने त्याग, तेज और सत्य से प्रत्येक वर्ग को प्रभावित किया और राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति ब्रिटिश शासन के विरोध के लिए उनके झंडे के नीचे आया। पूँजीपति, नौकरी करने वाले मध्यमवर्ग, किसान, मजदूर, सब को उन्होंने अपनी प्रेरणा से मयसुक्त किया और स्वतन्त्रता के लिए लड़ने वालों की पंक्ति में ठा सड़ा किया। राष्ट्रीय क्रान्ति को महात्मा गांधी ने अपूर्व जनकल सम्न्वित किया।

हायावाद युग के उत्तरार्द्ध में राजनीतिक चेतना में सामाजिक तत्त्व उभरने लगे। समाजवादी विचारधारा के प्रभाव से राजनीतिक और वार्षिक समानता की चेतना अधिक तीव्र हुई। उसी पूँजीवाद का घोर विरोध किया। समाजवादी भावना ने राष्ट्रीय बान्धवों को अधिक तोड़, कटुता पूर्ण और तलस्पर्शी बनाया।

हायावाद-युग में सामाजिक और वार्षिक सुविधाओं और अधिकारों की मांगें भी राजनीतिक अधिकारों की मांग के साथ चलती रहीं। इस दिशा में भी राष्ट्रीय क्रान्ति चेतना अधिक सकल और सक्रिय होती गई। इस युग की राष्ट्रीय भावना मध्य वर्ग से प्रभावित थी। वार्षिक और सांस्कृतिक विकास के साथ राजनीतिक विकास की मांग अधिक बोरदार होती गई। समाजवादी भावना ने उसे अधिक बढाव और स्पष्ट स्वरूप दिया।

प्रगतिवाद-युग में राष्ट्रीय क्रान्ति अधिक सक्रियपूर्ण और प्रसर दिखाई पड़ती है। राजनीतिक, वार्षिक, सामाजिक सभी दिशाओं में राष्ट्रीय क्रान्ति बढाव

रूप से बढ़ती रही। वह इस युग में बहुमुखी और व्यापक हुई। संघर्ष और विरोध की तीव्रता उसमें अधिक प्रकट हुई। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध इस काल में जन-संघर्ष के रूप में प्रकट हुआ। मजदूर वर्ग को संघर्ष नीति ने क्रान्ति की नयी प्रेरणा दी। इस काल में अस्तौष अधिक होने के कारण विरोध में अधिक तीव्रता आयी। इस तीव्रता ने भारत की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में ब्रिटेन को सोचने को बाध्य किया।

भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति को तोड़ने के उद्देश्य से अंगरेजों ने साम्प्रदायिकता को प्रलय देना प्रारम्भ किया। मुस्लिम लीग की स्थापना तथा मुसलमानों को पुष्क निर्वचन के अधिकार देना, हिन्दुओं के विरोध में मुसलमानों को उत्साहित करना आदि ऐसे कार्य हैं जिनके द्वारा ब्रिटिश शासन के क्रान्ति विरोधी दृष्टीगत कार्य प्रकट हो जाते हैं। साम्प्रदायिक भावना के विकास से हिन्दू और मुसलमानों के बीच का मतभेद बढ़ने लगा। अनेक बार अनेक स्थान पर साम्प्रदायिक दंगे हुए, जिनसे दोनों जातियाँ क्रान्ति के मार्ग में अलग छटती गयीं और इसके राष्ट्रीय क्रान्ति के विकास में अवरोध आया। महात्मा गांधी तथा अन्य नेताओं ने इस अवरोध तथा मतभेद को दूर करने की चेष्टा की। कुछ सीमा तक यह मत-भेद दूर भी हुआ किन्तु साम्प्रदायिकता का विष मुस्लिम लीग पर इस प्रकार झा गया था कि अन्त में पाकिस्तान की मांग उसने की और १९४७ में भारत दो भागों में बाँट दिया गया। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय भेदना संचित हो गई। राष्ट्रीय क्रान्ति इन अवरोधों के बावजूद विकसित हुई और उसने अपने संघर्ष, विरोध, बान्दोलन आदि से विदेशी शासन को भारत की स्वतन्त्रता उसे दे देने को बाध्य किया।

भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति कई मोड़ों से होती हुई अन्त में तीव्र संघर्ष और शक्तिशाली बान्दोलनों के बिन्दु तक पहुँची। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया उसमें अस्तौष और विरोध बढ़ता गया। महात्मा गांधी ने अहिंसा की शक्ति देकर उसे अधिक शक्तिशाली बनाया और अहिंसक क्रान्ति का आवश्यक प्रयोग प्रस्तुत किया, जिसकी सफलता १९४७ की स्वतन्त्रता क्रान्ति में प्रकट हुई।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में सामाजिक, आर्थिक पिछाई में विकास के महत्वपूर्ण कार्य हुए। अनेक योजनाओं के माध्यम से देश को सम्पन्न बनाने का प्रयास हुआ। अनेक किसानों के माध्यम से सामाजिक स्थिति में परिवर्तन लाया गया।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में पुरानी मान्यताएं टूटीं और नए मूल्य उभरे हैं। इस प्रकार स्वातन्त्र्योत्तर भारत में वैचारिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक क्रान्तियों के स्वरूप प्रकट हुए हैं जिनके माध्यम से इन क्षेत्रों में अपूर्व परिवर्तन हुए हैं।

वर्णाय-- तीन

--0--

राजनीतिक विचारधाराएं





और नवीनता मारतेन्दु-युग की कविता में दीखती है ।

मारतेन्दु-युग की कविता का वान्तरिक स्वर क्रान्तिकारी है । देश की दुरवस्था का ज्ञान उस काल की रचनाओं में है । देश की दुरवस्था से कवियों के हृदय में पीड़ा उत्पन्न हुई । उस पीड़ा की, वेदना को अभिव्यक्ति उनको कविताओं में हुई है । यह अभिव्यक्ति अपने-आप में अत्यन्त करुणापूर्ण है ।

कम्पनी का शासन समाप्त हो जाने और इंग्लैण्ड की महारानी का शासन प्रारम्भ होने से देश के मध्यमवर्ग के मन में बहुत सी वाशारे उत्पन्न हुई थीं । कंपनी राज्य के अत्याचार की मुक्ति के उपरान्त शान्ति और सुखमोग को अभिलाषाएं उत्पन्न हुई, किन्तु ऐसे काल्पनिक सुख-मोग के वाकांक्षी मध्यमवर्ग को यथार्थ की कठोरता मिली और सुखमेव उनके सपने नष्ट हो गए । इसी पृष्ठभूमि में भारतीय जन-जीवन में असंतोष का उदय हुआ । असंतोष क्रान्ति का मूलधार है । असंतोष के उपरान्त हो परतंत्रता का और अपनी विचलनता का अनुभव जनता को हुआ । देश की अव्यवस्था से जनता सिन्न हो गई । वह विकास की वाकांक्षा करने लगी और उस सन्दर्भ में राष्ट्रीय चेतना की क्रान्तिमूलक विचारधारा का उदय भारतीय जीवन में हुआ, जिसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति मारतेन्दु युगीन कविता में हुई है ।

क्रान्ति की विचारधाराओं का उदय केवल देश की अव्यवस्था की अनुभूति से ही नहीं हुआ, बल्कि अंगरेजी राज्य के अत्याचार और अन्याय ने भी इसे योगदान किया और उस सन्दर्भ में मारतेन्दु-युग की हिन्दी कविता में क्रान्ति की विचारधाराएं उत्पन्न हुई हैं । इन प्रकार परिस्थितियों और उनको प्रतिक्रिया में उत्पन्न अभिव्यक्तियों का अधिक विश्लेषण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है ।

### कतीय नान द्वारा क्रान्ति

यह सब होने पर अस्वीकार करें कि कतीय नौरव नान की क्रान्ति की विचारधाराओं की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता, किन्तु यह उचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि क्रान्ति की विचारधाराओं की सबसे सबूत और प्रथम अभिव्यक्ति कतीय नौरव नान के माध्यम से हुई है । देश की अव्यवस्था में बहुत है । वर्तमान हुआ ही और हुए थे भर उठा है । विकास के सभी मार्ग अवरोध हो चुके हैं । वर्तमान की यह करुणापूर्ण यथा देश के प्रति फैलाने कवियों का ध्यान नौरवपूर्ण कतीय की

जोर ले जातो है । वे अतीत गान के माध्यम से वर्तमान का दयनीय दशा को जोर उजागर कर देते हैं ताकि अस्तोष उत्पन्न हो, जिससे क्रान्ति-भावना उत्पन्न हो, क्योंकि अस्तोष क्रान्ति का मुलाधार है ।

भारत का अतीत अत्यन्त महिमामण्डित रहा है । इस अतीत-महिमा के गान द्वारा भारतेन्दु ने राष्ट्रीय-क्रान्ति की भावना का प्रसार इन शब्दों में किया कि भारत के मुजकल से सारा जग सुरक्षित रहा । भारत ने हा संसार को विषा दान दिया --

भारत के मुजकल जग रक्षित । भारत विषा लहि जग सिन्धित<sup>१</sup>

भारत का तेज, गौरव सम्पूर्ण संसार में व्याप्त था । भारत के तेज से यूरोप अमेरिका सभी ईर्ष्या करते थे --

जिनके मय कंपित संसारा, सब जग जिनको तेज पसारा ।

युरोप अमेरिका इहिहि लिहाही, भारत भाग सरित कोउ नाहीं ?

भारतवर्ष पर ही सबसे पहले ईश्वर की कृपा हुई थी । इसीलिए उसने सब के पहले ईस्वर से बन, कल दिया, सम्य किया । रूप, रस और रंग भी भारत को ही पहले मिला । इतना ही नहीं, विषा का फल भी पहले भारत को ही मिला --

सबके पहिले जेहि ईश्वर बन कल दीनो ।

सबके पहिले जेहि सम्य विधाता कीनो ।

सबके पहिले जो रूप रंग रस दीनो ।

सबके पहिले विषाफल जिन गहि लीनो ।

क्रान्ति की भावना उद्दीप्त हो सके, इसके लिए अपने शौर्य का मान होना आवश्यक है । भारत का अतीत दूर-बीरों के अपूर्व साहस का इतिहास है । इसीलिए आज भी कवि उनके स्मरण व द्वारा क्रान्ति-भावना जगाना चाहता है --

बन-बन भारत के सब हथी, जिनकी कुबस कुजा फहराय ।

बारि बारि के छु दिये हैं , लासल धर म्माय ।

महानन्द की कनीच कुत ही डरे सिन्धर राय ।

१- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ८४१ सं० २००६

२- वही, भाग १, पृ० ८४४, सं० २०१२

३- वही

राजा चन्द्रगुप्त है जाये बेटी सिल्युकस की जाय ।

मारि बहिन विग्रह रहे शकारी पदवी पाय ।

बापा कासिम तनय मुहम्मद जोत्यों सिन्धु दियो उतराय ।<sup>१</sup>

प्रेमघन भी अपने स्वर्णिम कतौत का स्मरण करते हुए वर्तमान दशा पर  
दायम प्रकट करते हैं —

नहिं अब भारतवर्ष रह्यो, नहिं यामें वह तत्व ।

हाय विधाता ने हरयो, कैसे याको मत्व ॥

नहिं वह काशी रह गई, हतो है मय जीन ।

नहिं बौरासी कौस की, रहो ज्योध्या तीन ॥<sup>२</sup>

माता शारदा की कृपा भारत के ऊपर सबसे अधिक थी । इसीलिए  
पृथ्वी पर भारत के तुल्य अन्य कोई देश नहीं था । इसका तेज, प्रताप, बुद्धि और  
गौरव सुनकर शत्रु का हृदय घर-घर कांपा करता था । ऐसा विचार है श्री बालमुकुन्द  
गुप्त का —

जब मा । कृपा तुम्हारि रही भारत के ऊपर ।

तब याके सम तुल्य धरनि पर रह्यो न दूसर ॥

याको तेज प्रताप बुद्धि गौरव जस सुनि कर ।

कांपत हो नित रह्यो हियो शत्रुन को बर बर ॥<sup>३</sup>

इस प्रकार मारतेन्दु-युग के कवियों ने वर्तमान की वर्तमानि देखकर गौरवमय  
कतौत का स्मरण किया है । इन गौरवमय वाक्यों द्वारा वे जन-जीवन की राष्ट्रीय-  
क्रान्ति की प्रेरणा देते रहे ।

### वर्तमान चित्रण द्वारा क्रान्ति

जब युग में हिन्दी-कवियों ने मात्र कतौत गौरव-मान के द्वारा ही क्रान्ति  
देखना नहीं जाना, बल्कि वर्तमान चित्रण के द्वारा भी राष्ट्र-दशा की ओर लोगों का  
ध्यान आकृष्ट किया ।

१- मारतेन्दु ब्रन्वाली, मानर, पृ० ५०३, सं० २००६

२- पिता प्रताप—प्रेमघन सर्वस्व—ग्रन्थ मान, पृ० १५५, सं० १६६६ वि०

३- भारतीय युवा—बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली, पृ० ५६६ सं० २००७ वि०

वर्तमान अव्योमिति की भावना वेदना उत्पन्न करती है। यह वेदना केवल असहायता की वेदना नहीं है, बल्कि दारोपमयी है। हिन्दो-कवि इस माध्यम से विदेशी शासन के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करते हैं। वर्तमान की घुमिल पृष्ठभूमि पर कृतीत का चमकता हुआ उज्ज्वल चित्र सख्त हो प्रकट हो जाता है।

भारत कभी सर्वप्रज्य रहा, किन्तु आज उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। महिमा मण्डित भारत की दयनीय दशा उनको पीड़ित करती है। भारत की दुर्दशा से व्याकुल भारतेन्दु के कंठ से निकला था --

रौबह सब मिलि के आवहू भारत मारै ।  
हा । हा । भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।<sup>१</sup>

भारतेन्दु से देश की दुर्दशा सहनी नहीं गई। इसकी व्युत्पत्ति कतनी तो ब्र थी कि उन्होंने देशवासियों को भी आमंत्रित किया। उन्हें देश में सब जगह दुःख ही दुःख दिखायी पड़ा और उसके प्रति गहरा असंतोष उनके मन में पैदा हुआ। इस बीर उन्होंने भारतवासियों का ध्यान भी आकृष्ट किया :-

जब जहं देखहुं तहं दुख हो दुख दितारै,  
हा । हा । भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।<sup>२</sup>

प्रेमधन की बाणी कुछ और तीखी है। उन्होंने पराधीनता को सबसे बड़ा दुःख माना। इस प्रकार प्रकारान्तर से उन्होंने अंग्रेजी शासन के प्रति अपना असंतोष प्रकट किया :-

जबपि जात में बहु दुख दुख महान ,  
पराधीनता के सम तदपि न जान ।।<sup>३</sup>

पराधीनता के कठिन दुःख की व्युत्पत्ति जीवन की सच्ची व्युत्पत्ति है। भारतेन्दु-युगीन जनमानस विदेशी दासता से पीड़ित था। उस पीड़ा की अभिव्यक्ति प्रेमधन की पंक्तियों में प्रकट हुई है। स्वराज्य की बरसा, स्वतंत्रता की ऊष्मा मिलने पर विषा के छल से बरती चर के अंगुर फूटने :-

१- भारत दुर्दशा (१८८०) — भारतेन्दु नाटकावली,

पृ० ५६७

२- वही, पृ० ५६८

३- प्रेमधन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ० ६६ सं० ११६६ कि०

छहि सुराज बरसा सलिल सुतन्त्रता कर पाय ।<sup>१</sup>

जीत्यो मैघा मेदिनी विषा छल मल पाय ॥

स्वतंत्रता की इस कामना में अंगरेजी शासन से मुक्ति की कामना है । अंगरेजी शासन से मुक्ति की कामना अकारण नहीं है । राजकोप से लोग दुस्तो थे । अत्याचार को सहन कर पाना कठिन हो गया । इस परिस्थिति में ही परिवर्तन, अंगरेजों राज्य से मुक्त होकर स्वराज्य और स्वतन्त्रता पाने की आकांक्षा उदित हुई । राज-कोप विनाश करने वाला है । उससे सावधान करते हुए प्रेमघन ने कहा --

राजकोप के उपल सों सावधान बसि होय ।

रहियें रंजक बीच जो सकत नाश करि सोय ।<sup>२</sup>

राज कर्मचारियों के अत्याचार से जनता को बहुत कष्ट था । वे जनता के साथ मनमानी करते थे । इससे चारों ओर हाहाकार मच गया । प्रजा दुहाई देने लगी, लेकिन उसकी कहीं सुनवाई न थी । इस प्रकार के न्याय और दण्ड से प्रजा विलाप कर रही थी । वह शक्तिहीन होने के कारण इस अत्याचार का प्रकट रूप में विरोध नहीं कर सकती थी । इसलिए वह मन में ही सरापने लगी कि यह राज शीघ्र नष्ट हो । वर्तमान स्थिति से असंतोष की प्रतिध्वनि का यह स्वर तीला और आंति झुलक है :

राज कर्मचारी छल दुसद प्रजान,

जिन अधिकार कइयो बसि अत्याचार ।

मच्च्यो बहूँ दिसि जासों हाहाकार ।

प्रजा दुहाई की सुनवाई नाहिं ।

बहूँ न्याय नहिं दण्ड रोय क्लिप्तावहिं ।

मन में सबहिं सरापहिं हाथ उठाय ।<sup>३</sup>

ईस बेगि अब याको राज नसाय ।

१- प्रेमघन सर्वस्व-- प्रेमघन, पृ० ३६०, सं० १८८६ वि०

२- वही, पृ० ३६८

३- वही, पृ० ३७०, सं० १८८६ वि०



अत्याचार की मर्तना और ऐसे अत्याचारी शासन के नाश की आकांक्षा निःसन्देह अत्यन्त साहसिक है। उस समय जब कि अंगरेज शासन की शक्ति का छोटा बड़े-बड़े देश मानते थे और अत्याचार अपने पूरे विकास पर था, इस प्रकार के आतिमुक्त विचारों की अभिव्यक्ति सरल नहीं थी। ऐसा करने पर अत्याचार और राजकीय का भय था, लेकिन जन-जीवन में व्याप्त आति को उस तीसरे विचारधारा की अभिव्यक्ति हिन्दी के इस कवि ने की। ऐसा तोला और अनुभूतिपूर्ण स्वर भारतेन्दु का नहीं है। उनकी कविता में अंगरेजो शासन के विनाश की अभिव्यञ्जना नहीं है। वे अत्याचारों से त्रस्त हैं, उसके प्रति अपना आक्रोश प्रकट करते हैं, किन्तु अंगरेजो राज्य के विरोध तथा विनाश की भावना उनके काव्य में नहीं उमर सकी। उनकी मुक्तियों में अंगरेजो शासन के प्रति व्यंग्य की तीसरी चोट है। उन्होंने मतलबो कमलों पर गहरी चोट की है :-

मतलब की ही बोलै बात,  
रासै सदा काम की घात।  
डोले पहिने सुन्दर सल्ला।  
क्यों सति सज्जन नहिं सति कमला।<sup>१</sup>

पुलिस की अत्याचार से जनता त्रस्त थी। जो पुलिस के चंगुल में फँस गया वह मुक्त नहीं हो सका। वह जनता का सब कुछ छूट लेती है :

स्य पितावत सरकस छूटे।  
फंदे में जो पड़े न छूटे।  
कपट कठारी बिय में छुल्लि।  
क्यों सति सज्जन, नहिं सति पुलिस।<sup>२</sup>

भारतेन्दु से भिन्न स्वर प्रतापनारायण मिश्र का भी है। 'राजा की जो न्याय भासा पर जो दाब' की लोकोक्ति के आधार पर तत्कालीन राजव्यवस्था के न्याय पदा पर करारा व्यंग्य करते हुए प्रतापनारायण मिश्र ने अत्याचार का विरोध कर स्वतंत्र होने की प्रेरणा दी :-

१- भारतेन्दु ब्रन्ध्यावली-- भारतेन्दु, पृ० ६७६, सं० २०१० वि०

२- वही, पृ० ५११

३- लोकोक्ति-संग्रह-- प्रतापनारायण-मिश्र, पृ० ३

सब तजि गहो स्वतन्त्रता नहिं जुप छातैं लाव ।<sup>१</sup>

राजा करे सो न्याय है पासा परे सो दाव ।।

स्वतंत्रता ग्रहण करने की प्रेरणा तत्कालीन मन्दिर में उत्पन्न उग्र विचारों को अभिव्यक्त करती है । उस समय इन कवियों ने उत्पन्न माहस के साथ राष्ट्रीय चेतना के मूलभूत तत्त्व स्वतंत्रता को ग्रहण करते हो प्रेरणा व्यक्त की ।

स्वतंत्रता मनुष्य का मौलिक अधिकार है और इस स्थिति में ही पुनः पुनः है । परतंत्रता दुःखदायक होती है । परतंत्रता और विदेशी शासन के अत्याचार से उत्पन्न दुःखों की कवियों ने अनेक बार व्यञ्जना की है । अत्याचार और अनीति के कारण देश में दुरवस्था व्याप्त थी । उसकी कठणापूर्ण अभिव्यक्ति भारतेंदु की कविता में हुई है ।

१८८८ ई० में बालमुकुन्द गुप्त ने 'बाबहु माय' शीर्षक कविता में भारत की दुरवस्था की व्यञ्जना के लिए उसे ममान कहा । इस दुरवस्था में भारतवन्दना के निमित्त उत्तम पदार्थ दुर्लभ हैं ---

भारत घोर मसान है, तू जाप मसानो ।

भारतवासी फ़ैत से डोछहिं कल्याणी ।

हाडू मांस नर रक्त है मूलन की देवा ।

यहां कहां मां पाइये चन्दन क धी मेवा ।<sup>२</sup>

प्रतापनारायण मिश्र ने कांग्रेसों की छूट नीति पर करारी चोट की है । देश की सारी सम्पत्ति जा रही है । देश बरिद्ध हो रहा है । हम भारतवासी मात्र बातें बनाने में तेज हैं :

सबहु छिये बात कांग्रेस,

हम केवळ केंद्री को तेज ।

जब बिनु बातें का करती हैं ।

क्यों टैंकन नार्थ टरती है ।

१- लीकोलिङ्गक — प्रतापनारायण मिश्र, पृ० ३

२- बाबहु माय — बालमुकुन्द गुप्त, पृ० ३२, ३३

विदेशी शासन के विरोध और स्वतन्त्रता प्राप्ति को आकांक्षा का किञ्चित् दवा हुआ खर भारत की दुर्दशा से जाँच का परिणाम है । दुर्दशा इस सीमा तक है कि उसके निराकरण के उपाय नहीं सूझते । इसी समय भारत के अतीत का ध्यान आता है । कितना उज्ज्वल अतीत था भारत का । उसकी भुजा के कल में विश्व का रत्ना होती थी, किन्तु वही भारत निबल हो गया, दुबला हो गया । वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में अतीत के उज्ज्वल पृष्ठ की स्मृति हृदय पर चोट करती है । इस चोट को अनुयुज्ज मारतेन्दु के शब्दों में फूटी :--

हाय वह भारत भुव मारी , सबहों विधि तें मई दुहारो ।

रोम ग्रीस पुनि निज कल पायो, सब विधि भारत दुलित बनायो ।<sup>१</sup>

अति निबली श्याम जापाना, हाय न भारत तिनहु त्माना ॥

प्रेमघन ने देश के पतन का वर्णन हार्दिक हर्षादर्श में किया है --

मयो भूमि भारत में महा मयंकर भारत,

मये बीर वर सकल सुभट एकहि सन भारत ॥<sup>२</sup>

'जातीय गीत' में भी उन्होंने देश की दुर्दशा का चित्र प्रस्तुत किया है :

भारत मयो मल भारत यह, भारत रौय रह्यो चित्ताय

कल को परम पराक्रम लोयो, बिधा गरब न लाय ॥<sup>३</sup>

इन कवियों ने भारत की दुर्दशा की ओर जन सुदाय का ध्यान आकृष्ट किया और अपनी पतिततावस्था से उन्हें अलग कराया । पतिततावस्था के कारणों पर भी उन्होंने विचार किया । उनके अनुसार भारत के पतन का एकमात्र कारण है--फूट । जहाँ फूट ही मेवा हो वहाँ स्वतन्त्रता की सम्भावना नहीं की जा सकती । इसलिए पराधीनता से मुक्त होने के लिए एकता अनिवार्य है । इस एकता को प्रेरणा इन कवियों की वाणी में स्पष्ट सुनायी पड़ती है --

१- मारतेन्दु कन्यावली, पृ० ८०३, सं० २०१२ वि०

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास-- रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५१५, सं० २००२

३- प्रेमका सर्वस्व-- प्रेमका, पृ० ५४६, सं० १६६६ वि०

तहां टिके क्यों बाहुबल जिन घर मेवा फुट  
 कल बपुरो कैसे रहे जाय बाहु जब टूट ॥  
 जहां लैं झुत बाप संग और प्रात सों प्रात ,  
 तिनके मस्तक सों हट कैसे पर को लात ॥

भारतेन्दु ने भी आपको पुष्टि की --

बैर फुट ही सों मयो सब भारत को नाम ।  
 तबहुं न हांझत यदि सब के मोह के फांस ।<sup>२</sup>

भारत में फुट का बीज बोया जयचन्द ने । उसने मुसलमानों को भारत पर  
 आक्रमण के लिए आमंत्रित किया । अपने स्वार्थ के लिए वही विदेशियों को अपने देश में  
 ले आया । इसलिए जयचन्द के प्रति आक्रोश स्वामाविक है --

काहे तू चौका लाय जयचन्दवा  
 अपने स्वार्थ पुलि लुभाय, काहे चोटि कटवा जुलाय जयचन्दवा ।  
 अपने हाथ से अपने कुलि के काहे तें जड़वा कटाय जयचन्दवा ।  
 फुट के फल सब भारत बोए, बेरी के राह जुलाए जयचन्दवा ।

महम्मद प्रताप नारायण मिश्र ने भाई-भाई के बैर से पीड़ित होकर कहा :-

माय माय आपस में लैं परदेसि के पायन परें  
 यह इवेच भाइ ससि राहु, घर का मेदिया लंका दाहु ।<sup>४</sup>

श्रीधर पाठक ने भी जयचन्द के प्रति अपना आक्रोश प्रकट किया, क्योंकि  
 उसी के कारण देश में विद्रोह बढ़ने लगा और प्रजा की बुद्धि नष्ट हो गई है --

पृथ्वीराज जयचन्द जब से गए हैं  
 उसी काल से इनके दिन फिर गए हैं  
 परस्पर के विद्वेष की चूं ज्वाला  
 की देश में भीम स्था कराता ।  
 किया नष्ट उसने प्रजा भारती को  
 बिनाइ सगी की विद्वद्धा मति को ।<sup>५</sup>

१- श्रीराम सोन- (१८२६)

२- भारतेन्दु कृष्णावली, भाग २, पृ० ७३८, सं० २०१२

३- वही, पृ० ५०२

४- लोकोक्ति संग्रह-प्रतापनारायण मिश्र, पृ० ७२

५- वनीक्रीड- श्रीधर पाठक, पृ० १७७ सं० १९१७ ई०

राष्ट्रीय शान्ति-भावना उदात्त करने के लिए तत्कालीन कवियों ने जनता में एकता हो, उसका कामना भी की है। उन कारणों का और उनको दृष्टि गयी है जिससे जनता में फूट है। जाति-पाँति, अनेकानेक धर्म और कुजाकृत ने ही आपस में फूट डाल रक्खा है। उनको निन्दा मारते-नु इन शब्दों में करते हैं --

रवि बहु विधि के वाक्य पुरातन माँहि घुसा ।

शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि बला ।

जाति अनेकन करी नीच वरु ऊँच बनायो ।<sup>१</sup>

खान-पान सम्बन्ध सबनि सो बरजि छुड़ायो ।

पर एकता पर इतना बल देने वाला कवि यदि कहीं-कहीं पर मुसलमानों के प्रति घृणा का भाव प्रकट करता है तो आश्चर्य होता है। वह बृष्ण तक से प्रार्थना करता है कि वे कलियुग में अवतार लेकर मलेच्छाचार करें।

जय सत्गुरु थापन करन, नासन म्लेच्छ अवतार ।<sup>२</sup>

कठिन धार तरवार कर, बृष्ण कल्कि अवतार ।

मुसलमानों के हृदय में भारतीयों के प्रति स्नेह नहीं था। वे कबो भी हिन्दुओं को अपना नहीं समझते थे। उनकी यह अपारतीयता उन्हें अक्षरतो थी।

अदपि जवन गन राज कियो स्तहि बसि के सह साव ।<sup>३</sup>

ये तिनको निज करि नहिं जान्यो हिन्दु समाज ।

यही कारण था कि किसी यवन केत की हार पर वे प्रसन्न हुआ करते थे। जब १८८२ ई० में अंगरेजों ने मिर्ज़ा पर विजय किया तब उन्होंने उसे भारतीयों की विजय मानी और 'बार्थ मोह के बार' को ऊँचा होते देखा :

करकि उठी सब की मुखा, उरकि उठी तरवार ।<sup>४</sup>

क्यों बापुहि ऊँचे मये बार्थ मोह के बार ।

१-भारत दुर्लभा-नारसिन्हु हरिसिन्हु,

पृ० ६०४

२- वही

३- वही, पृ० ७२१

४- वही, पृ० ७२०

डा० लक्ष्मीसागर वाष्णीय ने मुसलमानों के प्रति उस रुख को देखकर कहा है कि 'हिन्दू पुनरुत्थान काल का प्रथम चरण ऐतिहासिक और राजनीतिक दृष्टि से कुछ मुस्लिम विरोधी रुख लिए हुए था।' इसीलिए हिन्दुओं का एक विशेष दृष्टिकोण था -- अंगरेजों से राजनीतिक सम्बन्ध रखते हुए मुसलिम विरोधी, और उस समय जब कि अंगरेज भी मुसलमानों से नाराज थे।<sup>१</sup>

पर फिर उन्होंने कहा है कि 'उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दु तथा अन्य किसी कवि ने मुसलमानों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह राजनीतिक अस्तव्यस्तता और तण्डनित देश की पीड़ित अवस्था और धार्मिक अत्याचार की दृष्टि से कहा है।'<sup>२</sup>

सबसे मुसलमानों के प्रति ऐसी भावना की अभिव्यक्ति का कारण था भारत को दयनीय दशा की ओर ध्यान जाना और तब मुसलमानों के अत्याचार को ओर ध्यान चला जाना, क्योंकि ये ही भारत की वर्तमान दुर्दशा के बड़ में थे। पर उनकी यह भावना मुस्लिम-विरोधी प्रचार की नहीं थी। उनका यह ज्ञान्ति-ज्ञान मात्र मुस्लिम अत्याचारों के विरुद्ध था।

राष्ट्रीय-ज्ञान्ति का उन्मेष हिन्दू-मुस्लिम द्वेष से सम्भव नहीं था, बल्कि इससे फूट पड़ जाती। और भारतेन्दु राष्ट्रीय ज्ञान्ति की भावना से भीरु हुए थे। उस युग के अन्य कवियों में भी यही भावना थी। इसीलिए उन्होंने साम्प्रदायिकता को नहीं उभारा, बल्कि एकता का जाह्वान किया। उन्होंने एकता की दुरावस्था का उल्लेख किया साथ ही हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए भी वाकानें उठायीं। 'प्रेमधन' ने राष्ट्रीयता के लिए जैन, पारसी, ईसाई सब के एक झुंड में बंधने की कामना की :

हिन्दू मुसलिम जैन पारसी ईसाई सब जात ।

झुंटी होय हिय मर प्रेमधन सकल मारती प्रात ।

स्वतन्त्रता के लिए सब सब कर भी ज्ञान्ति की आवश्यकता है, पुष्पाप केँड कर छात खाने की नहीं-- इसे लीकोलि शब्द में प्रतापनारायण मिश्र ने कहा --

१- वाङ्मयिक हिन्दी साहित्य-- डा० लक्ष्मीसागर वाष्णीय, पृ० २७२, १९४० ई०

२- वही, पृ० २७२

३- वही, पृ० २७२



सब तजि गहो स्वतंत्रता नहिं जुप लातैं साय ।

राजा करे सो न्याय है पासा परै सहे दाव ॥<sup>१</sup>

आर्यों के परतंत्र होने का कारण बताते हुए ये कहते हैं --

मायबू तक परापर नहिं जहं

सरल स्नेह न हरि बरनन मंह ।

जगत दास कस होहिं न आरज,<sup>२</sup>

निबर को बुझ्या सबके सरहज ।

अर्थात् परस्पर प्रीति का अभाव भाई-भारे का अभाव ही परतंत्रता का कारण है ।

केवल आर्यों को ही नहीं, बल्कि राष्ट्रीय झान्ति सफल हो सके, इसके लिए सब में एकता आवश्यक है । मैत्री-भाव से ही देश की दशा सुधर सकती है । एकता सबसे बड़ा बल है --

प्रीति परस्पर राखहु नीत ।

जहाँ सब जुल सहजहिं नीत ।

नहिं एकता सरिस बल कोय ।

एक एक मिलि ग्यारह होय ।<sup>३</sup>

स्पष्ट है कि तत्कालीन कवियों में मुस्लिम विरोधी भावना नहीं थी । अपनी दीनता के वर्णन-प्रकरण में प्रकारान्तर से वे यही उसका प्रकाशन हुआ ही । धर्म के आधार पर मुसलमानों का विरोध वे नहीं करते । देश-उत्थान उनका सर्वोपरि लक्ष्य था, वह उपर्युक्त वर्णित एकता की बातों से स्पष्ट है । वे राष्ट्रीय झान्ति के उन्मेष के लिए तत्पर थे । पर उनकी झान्ति का रूप उग्र नहीं था, बल्कि वे दीनादर्या का वर्णन कर वैचारिक झान्ति उत्पन्न करने में संवष्ट थे । और इसके लिए उन्होंने जन समूह की एकता का संदेश दिया था । इसीलिए भारतेन्दु कुंज के कवियों ने आर्थिक दुर्बला की कर्षा अधिक की, इसलिए कि देश की दीन-दशा मिटे ।

१- लोकोक्ति संग्रह--प्रतापनारायण मिश्र, पृ० ३

२- वही, पृ० २-३

३- वही

अंगरेजों की फुट डालने की नीति के कारण ही मारतेन्दु-युग में कहीं-कहीं पर धार्मिक विद्वेष की मलक मिलती है -- हिन्दु-मुस्लिम बेर नहीं है । दोनों जातियां अंगरेजों द्वारा शोषित थे, पीड़ित थे । दोनों ने एक साथ मिल कर १८५७ के गदर में अंगरेजों के समस्त जकड़ी तरह अपना बल प्रदर्शित कर दिया था । इसीलिए अंगरेज दोनों में फुट डालने की कोशिश करते रहते थे जिससे वे बलवान न हो सके । अपने इस उद्देश्य में उन्हें सफलता भी मिली । मारतेन्दु गुप्तिन कवि इस तथ्य को समझ चुके थे । उन्हें यह मर्म भी ज्ञात हो गया था कि राष्ट्रीय क्रान्ति तभी सफल हो सकेगी, जब दोनों जातियां एक होकर विदेशियों के मुकाबिले में लड़ी होंगी ।

स्वतन्त्रता की पुकार के अतिरिक्त, अपनी कष्टपूर्ण दशा का वर्णन कर, ईश्वर से प्रार्थना करके भी, तत्कालीन कवियों ने राष्ट्रीय क्रान्ति की मावना को उद्वुद्ध करने का प्रयत्न किया है । भारत डूब रहा है -- इसलिए मारतेन्दु नाथ से जागने की प्रार्थना करते हैं --

डूबत भारत नाथ बेगि अब जागो अब जागो ।  
बालस-दब सहि दहन हेतु कहं दिसि सौं लागो ॥  
महा मूढ़ता बाधु बद्धावत तेहि अुरागो ।  
कृपा-दृष्टि की दृष्टि उक्तावहु बालस त्यागो ॥  
बपुनो जपनायो जानि के कहहु कृपा निरिबर-धरन ।  
जागो बलि केहि नाथ अब देखु दीन हिंदुन सरन ॥१७॥<sup>१</sup>

श्री राधाकृष्णदास भी पेश-प्रेम से भर कर ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि भारत भारतवासियों पर दया करें --

"हम भारत भारतवासिन ये अब दौन दयाल दया करिये ।"

भारत दुर्दशा के मंगलाचरण में भारत के उद्धार के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं--कि हुए मारतेन्दु उनसे अवतार वारण करने को कहते हैं :--

अब उतारुन बापन करन, नासन म्हेच्छ अवार ।  
कठिन बार सरबार कर, कृष्ण कल्कि अवतार ।<sup>३</sup>

कहनाचर कहा वीर ईश्वर प्रार्थना के इन चित्रणों द्वारा वैचारिक क्रांति की लड़कियों के साथ ही तत्कालीन कवियों ने कहीं-कहीं उग्र क्रांति का संकेत भी दिया

है :--

जागो जागो रे माई .....

अबहुं बेति फकरि राखो किन जो कुछ बची बड़ाई ।

होली गाते हुए मो मारतेन्दु कंधर बांध कर शस्त्र धारण करते हुए जागे पांव बढ़ाने का संदेश देते हैं --

उठी उठी सब कस्म कसरन बांधो शस्त्रन सान धरो री ।

किज्य -निसान कजाइ बाबरे जागेइ पांव धरो री ।।<sup>१</sup>

भारत-युद्धों को जीतने के लिए वे राम, युधिष्ठिर और विष्णु की याद भी बिछाते हैं --

उठो उठो मेया क्यों हारो अपुन स्म री सुमिरो री ।

राम युधिष्ठिर विष्णु को तुम कटपट मुरत करो री ।<sup>२</sup>

दीनता डर धरो री ।

जागरण की प्रेरणा, वे लोगों के कायरता की मर्खना करते हुए भी करते हैं । कायर पुत्र उत्पन्न करने वाले माता-पिता को भी धिक्कार है और वह बड़ी मो धिक्कारपूर्ण है, जब ऐसे कायर पैदा हुए --

धिक धिक मात पिता किन तुम सों कायर पुत्र जन्मो री ।

धिक वह धरी जन्म मयी यह कलंक प्रगटो री ।

कस्ततहि क्यों न धरो री ।<sup>३</sup>

प्रतापनारायण मिश्र ने भी सब तबि कही स्वतंत्रता नहिं जुप छाते साध के द्वारा मुक्तः कौरवों के बत्याचार को ही दर्शाया है । प्रयास और कार्य से दयनीय

(पिछले पुस्त की टिप्पणी संख्या--३)

१- मारतेन्दु जन्मावली, पृ० ४६०

१- वही, पृ० ४६०-४०६ दूसरा भाग, दूसरा संस्करण, सं० २०१०

२- वही, पृ० ४०६, दूसरा भाग, दूसरा संस्करण, सं० २०१०

३- वही, ४४ ४४ ४४ ४४ ४४

दशा को छुटकारा मिल सकता है। राष्ट्रांत्याज हो सके, राष्ट्र गुलामी से छुटकारा पा सके, इसके लिए क्रान्ति आवश्यक है -- यह विभिन्न प्रकार से तत्कालीन कवियों ने प्रकट किया। उन्होंने कर्म के संदेश द्वारा स्वाधीनता की ओर ज़रूर होने का आह्वान किया, जिसके परिणामस्वरूप सारे देश में जागरण की दुंदुभी बनी।

जन्मभूमि के प्रति मातृत्व की भावना प्रदर्शित करना, अपनी समस्याओं को अंगरेजों के समक्ष रखना, तत्कालीन दयनीय दशा का करुण चित्रण करना -- ये सब वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न करने के साधन रहे हैं। इन सारी भावनाओं की अभिव्यक्ति द्वारा तत्कालीन कवियों ने राष्ट्रीय क्रान्ति को उद्बुद्ध किया, उसे व्यापक और विस्तृत बनाया।

### हिन्दी युग

मारेन्दु युग की अवस्था द्विवेदी-युग में राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर और तीव्र हो उठा। राष्ट्र के प्रति क्रान्तिकारी विचार विभिन्न तरह से प्रदर्शित हुए। हिन्दी काव्य भी इन विभिन्नताओं से स्पन्दित होता रहा और विभिन्न रूपों में विचारों में क्रान्ति-भावनाएं प्रस्फुटित होती रहीं।

व्याय रू में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि क्रान्ति वैचारिक चेतना है। साथ ही यह भी कि क्रान्ति मूलतः राष्ट्रीय चेतना से हो उभरती है। ऐसे एक-दूसरे के साथ ही अन्य चेतनाएं भी उभरती हैं।

### अतीत मान द्वारा क्रान्ति

राष्ट्रीय चेतना की भावना उस काल में अति तीव्रता से हुई। अतः क्रान्ति की भावनाएं भी मारेन्दु-युग की अवस्था इस युग में अधिक प्रबल हुईं।

क्रान्ति की वैचारिक चेतना को उद्बोधित करने के लिए कवियों ने जन-मात्र की भारत के गौरवशाली अतीत का स्मरण कराया। भारत का अतीत गरिमायुक्त रहा है। यह अतीत हमारे सामने है। वर्तमान की इसी दयनीय दशा की तुलना के बिना अतीत को नहीं समझ सकते। अतीत की गरिमा का वर्णन किया।

अतीत गौरव गान की सर्वोत्कृष्ट तथा प्रसिद्ध रचना 'भारत भारती' है ।  
 उसके माध्यम से गुप्त जी ने भारत के अतीत गौरव का दर्शन कराया और हिन्दुओं  
 को उत्थान के लिए आन्तिकारो प्रेरणा दी । इनका उद्देश्य था हिन्दुओं में सोई  
 हुई राष्ट्रीय भावना और गौरव भावना को जगाना । इसीलिए उन्होंने ऐसी को  
 संबोधित करते हुए कहा है --

स्वच्छन्दता से कर तुफे करने पड़े प्रस्ताव जो,  
 जग जायं तेरी नौक से सोये हुए हों भाव जो ।<sup>१</sup>

ये हिन्दुओं को केवल अतीत दर्शन ही नहीं कराना चाहते थे, बल्कि  
 वर्तमान दशा का बोध और भविष्य को सम्भावनाओं को भी बताना चाहते थे ।  
 इसीलिए उन्होंने सारी समस्याओं पर विचार किया है और पुस्तक को तीन खण्डों  
 में विभाजित किया है -- अतीत खण्ड, वर्तमान खण्ड और भविष्यत खण्ड । अतीत  
 खण्ड भारत के परमोज्ज्वल अतीत का गौरवमय गुनगान है । आज का बृद्ध भारत कभी  
 संसार में अग्रणी था ।

हां, बृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिमर है,  
 ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है ?  
 महाबान की भवभूतियों का यह प्रथम माण्डार है,  
 विधि ने किया नर सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है<sup>२</sup> ।

कौन प्रकार से भारत वर्ष की भेद्यता का गौरवमय वास्त्यान कवि ने  
 किया है --

झूलक का गौरव, प्रकृति का पुण्य ठीला-खल कहाँ ?  
 फैला मनोहर विरि हिमालय और गंगाजल जहाँ ।  
 सम्पूर्ण देशों से अधिक किन्न देश का उत्कर्ष है ?  
 उसका कि जो कवि भूमि है, वह कौन ? भारतवर्ष है<sup>३</sup> ।

१- भारत भारती -- वैष्णोहरण गुप्त, पृ० १, सं० २००६

२- वही, पृ० ४

३- वही, पृ० ४ नवम संस्करण, १९५३

इस तरह 'भारत-भारती' द्वारा भारत की प्राचीन सुषमा, भारत का प्राचीन गौरव याद दिला कर काव्य ने वर्तमान के प्रति असंतोष पैदा करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया और असंतोष की चिंगारियां ही क्रान्ति के सुलगने में सहायक होती रही हैं।

गुप्त जी के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी भारत-भारती का गुनगान करते हुए प्राचीन वैभव को याद दिलाया। गोकुल चन्द्र शर्मा ने जनता को जाग्रत सन्तान कहते हुए आगे बढ़ने को कहा --

उठो जाग्रत सन्तान आगे बढ़ो, पड़ कुप में ज्यों न ऊंचे बढ़ो।

विलोको अवस्था हुई क्या यहां? कला प्रोत देखो तुम्हारे कहां।

इसी प्रकार रामनरेश त्रिपाठी, रामचरित उपाध्याय, सियारामशरण गुप्त, त्रिशूल आदि कवियों ने भी भारत की प्राचीन गरिमा का गान किया और राष्ट्रीय चेतना जागृत की।

### मातृभूमि के देवीकरण द्वारा क्रान्ति

जन-मानस में क्रान्ति की भावना का प्रस्फुटन हो, इसके लिए कवियों ने राष्ट्रीय भावना को उद्बुद्ध करने के लिए मातृभूमि का देवीकरण किया है। राष्ट्र के प्रति प्रेम हो और उसका उदात्तीकरण हो, इसके लिए उसमें श्रद्धाभाव का समावेश भी आवश्यक है। माता के प्रति मनुष्य को असीम श्रद्धा होती है। इसीलिए मातृभूमि को माता मानकर पूजा जाता रहा है। और जब इसी मातृभावना में उदात्तीकरण के फलस्वरूप देवीकरण हुआ।

यों तो देवीकरण की परम्परा का प्रारम्भ भारतेन्दु युग में श्रीधरपाठक की 'भारत-वन्दना' शीर्षक कविता से ही हो गया था। पर वह भावना पुष्ट नहीं हो पाई थी। द्वितीय युग में उसे पुष्टि तब हुई, जब क्रान्तिकारियों के कारण मातृभूमि को दुर्गा, काली आदि वाराह्य देवियों की गरिमा मिली। कहीं-कहीं पर उसी आदि भी कहा गया है।

माता सम्प्रदाय के क्रान्तिकारी विश्वरूप से मातृभूमि को शक्ति का प्रतीक मानने लगे। कंठा उपन्यासों में विश्वस्तः बंकिमचन्द्र के उपन्यासों में यह भाव



उभरा है । हिन्दी-काव्य में मातृभूमि की शक्ति के अवतार रूप में तो उतना नहीं, पर श्रेष्ठ, पूजा और आराध्या के रूप में अधिक पूजा गया । बंकिम बाबू ने 'आनन्द मठ' में 'वन्देमातरम्' नामक जो गीत लिखा था, वह राष्ट्रीय गीत बना और उसके आधार पर हिन्दी में मातृ वन्दना के अनेक गीत लिखे गए ।

भारत भूमि के देवी-करण के माध्यम से क्रान्ति-भावना जाग्रत करने वालों में मुख्यतः मैथिलीशरण गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, राय देवी प्रसाद पूर्ण, गिरधर शर्मा, गोपाल शरण सिंह, रुपनारायण पाण्डेय आदि हैं । वर्तमान राष्ट्रीय शोषण के प्रति क्रान्तिकारी भावना उत्पन्न हो, इसके लिए राष्ट्र-प्रेम आवश्यक है और राष्ट्र-प्रेम उदीप्त हो सके, इसके लिए राष्ट्र के सुरम्य रूप-चित्रण की भी आवश्यकता है । श्री गिरधर शर्मा ने 'भारत माता' शीर्षक में 'भारत माँ' का एक ऐसा ही सुरम्य चित्र उपस्थित किया है —

‘सुजल सुफल है मही यहाँ की  
सस्य श्यामल मही यहाँ की  
मलयज शीतल मही यहाँ की  
विजय मनोहर मही यहाँ की

— सरस्वती, १९०५ ई०

श्रीधर पाठक ने देश को 'जगत-मुकुट' बताया है —

जय जय प्यारा भारत-देश  
जय जय प्यारा जा है न्वारा  
शोभित सारा देश हमारा  
जगत-मुकुट कादीश दुलारा  
जय सौभाग्य सुदेश  
जय जय प्यारा भारत देश

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी 'वन्देमातरम्' के आधार पर हिन्दी में 'वन्देमातरम्' गाया । मैथिलीशरण गुप्त ने भारतमाता के और भी उदात्त रूप

को कल्पना की है --

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,  
सूर्य-चन्द्र गुण मुकुट मैसला रत्नाकर है,  
नदियां प्रेम-प्रवाह फूल तारे मण्डल हैं,  
बन्दी विविध विहंग, शेषफन सिंहासन है ।

माधव कुल ने भी देश के देवों रूप का विविध वर्णन किया है ।

'देश वन्दना' शीर्षक कविता में उन्होंने एक सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रत्येक अंग का वन्दना की है --

जयति जयति हिन्द देश, जय स्वराज जय स्वदेश ।  
जयति महाराष्ट्र का, सिंध राजस्थान संग ।  
भद्र पंचनद मुशान्त, पुण्य भूमि युक्त प्रांत ।  
जयति जयति हिन्द देश ।

भूमि के गुणगान के साथ इन कवियों ने भारतभू की समन्वित जनशक्ति को भी उद्बुद्ध किया है --

जब तीस करीड़ यहाँ गिन के,  
कर साठ करीड़ हुए जिनके ।  
जब में वह कार्य मिला जिसको,  
यह देश न साथ सके जिसको ।

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि भारत की जन-वैतना का गौरव गान करते हुए उनकी सहज शक्ति को उद्बलित करने का प्रयत्न किया करता है । इस प्रकार तत्कालीन कवि जन-भावना से संयुक्त मातृभूमि के रूप की प्रबल महिमा का गुणगान प्रस्तुत करते हैं और स्वतंत्रता का आह्वान करते हुए राष्ट्रीय-शान्ति को प्रोत्साहन देते हैं ।

राष्ट्र के भूमि और जन के गुणगान के साथ ही कवियों ने उसके देवी रूप का वर्णन किया है और उस देवी के चरणों में अपना सर्वस्व न्योछावर करने की

१- जागृत भारत-- माधव कुल, पृ० २, १६२२ ई०

२- स्वर्ण सहोदर-- मैथिलीहरण गुप्त, सरस्वती, अगस्त, १९०८ ई०, पृ० ३६२

कामना को है । भारत धर्मप्राण देश रहा है । इसलिये देश-भक्ति को उमड़ती श्रद्धा को प्रकट करने का एक सशक्त माध्यम था-- देवी रूप का वर्णन । रामनरेश त्रिपाठी ने मातृभूमि के दुर्गा रूप का वर्णन किया है --

जय दुर्जया शक्ति-धारिणि,  
निमिष में जरि उर विदारिणि,  
सङ्ग हस्ता तेज अपिणि,

देवि दुर्जन दलनि ।

जन्मभूमि को लक्ष्मी रूप में चित्रित करते हुए श्री सियारामशरण गुप्त ने उसके दैन्य दुःख निवारिणी रूप का वर्णन किया है --

जय अनिल कंपित मनोरम श्याम अंकल धारिणी  
व्योमजुम्बी माल स्निगिरि है तुषार किरीट है  
जय जयति लक्ष्मी स्वल्पा दैन्य-दुःख निवारिणी ।

द्विवेदी युग के अन्य कवियों ने भी, जैसे माताप्रसाद गुप्त ने जन्मभूमि, मन्मथ द्विवेदी ने 'मातृभूमि', रामनरेश त्रिपाठी ने 'जन्मभूमि', लोचन प्रसाद पाण्डेय ने 'हमारा देश', गोपालशरण सिंह ने 'मातृभूमि' शिवनारायण द्विवेदी ने 'मातृभूमि' सियारामशरण गुप्त ने 'जननी' शीर्षक कविताओं के माध्यम से जन्मभूमि का गौरवान्वित किया । इन कवियों के वाङ्मय के परिणामस्वरूप हिन्दी-भाषी जन-जीवन में जाति भावना का व्यापक प्रचार हुआ ।

### वर्तमान चित्रण द्वारा ज्ञान्ति

वर्तमान की कल्पना यथा हो कतिपय का स्मरण दिलाने में सहायक होती है । और कतिपय का गौरव ही वर्तमान दुर्दशा से टकराकर दायम स्वं वाङ्मय बनाती है । कतिपय और वर्तमान के असामन्वय से असन्तोष उत्पन्न होता है और यह असन्तोष ही ज्ञान्ति-व चेतना के मूल में है ।

राष्ट्रीय-ज्ञान्ति-भावना से परिपूर्ण कवियों ने वर्तमान के दयनीय रूप का भी मार्मिक वर्णन किया है । 'वर्तमान दुर्दशा से उत्पन्न दायम तथा वाङ्मय सत्ता रूपों में प्रकट हुई है कहीं पर वह तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं के

सन्धर्म में शासन की दूरता और बर्त्याचार पर प्रकाश डालती है तो कहां जागरण-  
प्रेरणा तो कहां उत्साह और उद्बोधन बनकर और कहां बलि होने की इच्छा बनकर  
प्रकट हुई । इस प्रकार राष्ट्रीय-क्रान्ति भावना विविध रूपों में फुट पड़ी ।

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' में तत्कालीन करुणा दशा का  
हृदयग्राही मार्मिक चित्रण किया है । एक ओर वे वर्तमान की दयनीय दशा देखते हैं  
और दूसरी ओर अतीत का वैभव । तब वे और अधिक दुःख और करुणा से मर उठते  
हैं --

वह बोधि द्रुम कहां गया है ?

महावीर की दया कहां है ?

जो कुछ है सब नया यहां है,

वही पुराना भारत हूं मैं ?

हूं या था, चिन्ता-रत हूं मैं ?

जागे वे और भी दुःख प्रकट करते हैं कि आज भारत में मात्र पंक ही  
बच रहा है, कमल तो क्या, जल भी नहीं है --

भारत, कहां तो आज तुम क्या हो वही भारत वही ।

हे पुण्यभूमि ! कहां गई है वह तुम्हारी श्री कहां ?

जब कमल क्या, जल तक नहीं, सर-मध्य केवल पंक है,

वह राजराज कुंजर अब हा । रंक का भी रंक है ।

आज भारत की दशा इतनी दयनीय है कि वहां मात्र शूद्रत्व और  
पशुत्व ही शेष बचा है --

भारत तुम्हारा आज यह कैसा मयकेरवेष है ?

है और सब निःशेष केवल नाम ही अब शेष है ।

भ्रतत्व, राजन्यत्व युक्त वैश्यत्व भी सब नष्ट है,

शूद्रत्व और पशुत्व ही अवशिष्ट है, हा । कष्ट है ।<sup>2</sup>

१- भारतभारती -- मैथिलीशरण गुप्त

२- वही, पृ. १५२

देश-दशा के ऐसे हो करुण चित्रणों कर से देश-प्रेमियों के हृदय में करुण-माप जग उठते हैं, दारोम जागता है और तब आक्रोश उत्पन्न होता है। यह दारोम और आक्रोश दयनीय दशा के कारण तो उत्पन्न होता ही है साथ ही शासन को अनेक दूर और अन्यायपूर्ण दमन-प्रक्रियाओं के कारण भी उत्पन्न होता है। अतः तत्कालीन राजनीतिक हलकों के और हिन्दी काव्य में उनकी प्रतिक्रिया के अध्ययन से भी यह स्पष्ट होगा कि किस प्रकार क्रान्तिकारी भावनाएं प्रकट हो रही थीं।

देश जब जागता है, तब शासन को दूरताओं का विरोध होता है। शोषित जब राष्ट्र विरोधी क्रियाओं का विरोध करते हैं और अपने कल, शौर्य द्वारा परतंत्रता को दूर हटा देना चाहते हैं। इसके लिए उनमें क्रान्ति की ज्वाला सुलगने लगती है।

भारतेंदु-युग में राष्ट्रीय-क्रान्ति-भावना की जी चिनगारी जली थी, वह अब ज्वाला बनकर मड़कने लगी। द्विवेदी-युग में स्वतन्त्रता के लिए समवेत कंठ से हुंकार निकलने लगा। विद्रोह एवं विध्वंस की बाणी स्पष्ट उमरने लगी। स्वतंत्रता के लिए बलिदान तक होने की आकांक्षा जग उठी।

द्विवेदी-युग में कां-कां प्रथम व्यापक राजनीतिक घटना हुई। सारा देश इससे दुःख हुआ, आन्दोलित हुआ। यत्र-तत्र हिन्दी काव्य में भी इस भावना का प्रकटीकरण हुआ है। कां-कां जैसे साम्प्रदायिक आन्दोलन से प्रेरित होकर मुसलमानों ने भी मुस्लिम लीग की स्थापना की। राष्ट्रीयता की भावना से भी कवियों ने देखा कि हिन्दु-मुस्लिम फूट से देश कभी भी स्वतंत्र नहीं हो सकता। इसलिए कवियों ने यह अनुभव किया कि हिन्दु-मुस्लिम एकता की बहुत आवश्यकता है। इसलिए उन्होंने काव्य में भी प्रान्तीयता के मूलोच्छेद की आवाज उठाई। राय देवीप्रसाद पूर्ण ने लिखा --

मुसलमान हिन्दुओं । वही है कौमो दुस्मन,  
बुदा-बुदा भी कर फाड़कर चौली दामन ।

इसी प्रकार नीधर पाठक, मैथिलीहरण गुप्त, गिरिधर शर्मा, माधव शुक्ल आदि कवियों ने भी हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिए पैतना फेलाई और इसके

माध्यम से राष्ट्रीय-क्रान्ति-भावना को कल प्रदान किया ।

इस समय लोकमान्य तिलक देश के अग्रणी नेताओं में से एक थे ।

१९१४ई० में ये क्रान्ति केल से बूटकर जाए और स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है की घोषणा द्वारा देश में नूतन क्रान्ति-भावना को स्थापित किया । इस नवीन क्रान्ति-भावना को हिन्दी-कवियों ने भी स्वर प्रदान किया ।

'भारत संतान' शीर्षक कविता में कवि त्रिशूल अपने जन्मसिद्ध अधिकार की दुहाई से मांग करते हैं और स्पष्ट करते हैं कि यदि कोई हमारा जन्मसिद्ध अधिकार छीनेगा तो कब तक मन मार कर बैठा जा सकता है --

हमारे जन्मसिद्ध अधिकार । अगर होनेगा कोई यार ।

रहेंगे कब तक मन को मार । रहेंगे कब तक उत्थावार ।

कभी तो आकेगा यह ध्यान । सकल मनुजों के स्वत्व समान ।

इस प्रकार तिलक द्वारा उत्प्रेरित होकर भारतीय जनता निर्भीक होकर स्वातंत्र्य की मांग करने लगी । उसमें अभिमान जागृत हुआ । वह अपने अधिकारों के लिए तत्पर हो उठी ।

प्रथम विश्वयुद्ध का आरम्भ इन्हीं दिनों हुआ । अन्य देशों के स्वातंत्र्य की मांग का प्रेरणादायक प्रभाव भारत पर भी पड़ा । इस समय देश में आतंकवादी कार्य भी जोरों पर थे । एक प्रकार की हलकल और उछल-पुछल से भारतीय जनता जाकांत थी । इसीलिए भारतीय जन-जीवन में क्रान्ति तथा युद्ध-भावना जोरों से स्थान ले रही थी ।

इसी भावना से प्रेरित होकर गयाप्रसाद हुक्ल सेही कर्म की तलवार उठाकर और उस पर ज्ञान की शान बढ़ाकर स्वाभिमान के साथ युद्ध में बूढ़ पड़े--

लेक कर्म-भूषाण, ज्ञान की शान बढ़ावो ।

कल-विद्या-विज्ञान किलम उर पर कलकावो ।

स्वाभिमान के साथ सार में समुच्च जावो ।

कलौ कल की पाठ कल कौशल दित्तावो ।



श्री हरिराम पुजारी ने 'वन्दे मातरम्' में बलिदान होकर भी  
'वन्दे मातरम्' को हुंकार की इच्छा की है --

टांग दो सुनो पै मुझको साल मेरी सँभ लो ।

जब निकलते तक सुनो हुंकार वन्देमातरम् ॥

देश से हमको निकालो भेज दो यमलोक को ।

जीत लें संसार को गुंजार वन्देमातरम् ॥<sup>१</sup>

होमरुल स्वराज्य आन्दोलन का एक अन्य जबर्दस्त कदम था ।

१९१६ में श्रीमती स्पोर्ट्समैन ने अपना नेतृत्व किया । उसी भी सारा देश आंदोलित  
हो उठा और स्वराज्य की मावना और कलवती हो गई । 'लै होमरुल अपना'  
शीर्षक गुजल में श्री माधव गुजल ने सर्वस्व त्यागकर करके भी होमरुल लै की  
आकांक्षा व्यक्त की है --

बुझी से हीन ली घर बार जोवन प्राण धन मेरा ॥

ये जाहें फौड़ कर सारा जला दो तन बदन मेरा ॥

+ + +

न छोड़ें न छोड़ें कभी यह टेक हन अपना ।

निकलती सांस तक बोले लै होमरुल अपना ॥<sup>२</sup>

स्वराज्य की यह आकांक्षा होमरुल से भी अधिक कलवती होकर क  
कोटि-कोटि कंठों से फूट पड़ी थी । हरिराम पुजारी ने 'असहयोगी की प्रतिज्ञा'  
में उद्घोषणा की कि वे नौकरशाही के घमण्ड को चकनाचूर करके अपने 'जन्मसिद्ध  
अधिकार' की लै --

नौकरशाही के घमण्ड को जब कर दें चकनाचूर ।

'जन्मसिद्ध अधिकार' प्राप्त कर हन होंगे सुख से मरपूर ॥

जन्मभूमि जननी के दुस्सह दुःखों को कर दें दूर ।

जन्म सफल तब ही समझेंगे असहयोगी सेना के दूर ॥<sup>३</sup>

१- स्वतन्त्रता की कनकार-- प्रथम भाग--हरिराम पुजारी, १९२२ द्वितीय संस्करण

२- जानूत भारत-- माधव गुजल, प्रथम संस्करण, १९२२, पृ० १५

३- स्वतन्त्रता की कनकार--हरिराम पुजारी, द्वितीय संस्करण, १९२२ ई०, प्रथम

उपर्युक्त पंक्तियों में भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति का समय स्वर गूँब उठा है ।

तिलक की मृत्यु का भी देश पर व्यापक असर हुआ । उनके निधन को राष्ट्रीय क्षाति समझा गया और शासकों का अत्याचार समझा गया । माधव हुक्ल ने इस अत्याचार की प्रतिक्रिया स्वरूप कहा --

सारी दुनिया कांप उठेगी दोषी दिल हिल जायेगा ।  
आज भारती हुंकारों से लन्दन भी थहरायेगा ।  
आज पर्व दिन है स्वराज्य का गांधी युग का मेला है ।  
उठो भारती जल्द नहा लो स्वतंत्रता की बेला है ।

शासकों का दमन प्रारम्भ हो चुका था । पर राष्ट्र-मन भी बलिदान के माध्यम से क्रान्ति के लिए कटिबद्ध थे । 'उग्र' ने 'दमन नीति का स्वागत' किया - ठर कर दबे नहीं --

दमन नीति के घुत मयंकर ।  
तू हमको होधेगा- सं- कर ॥  
प्रकटित होगा तुम से ही सत-  
स्वागत । स्वागत ॥

+ + +  
कारागार स्वर्ण-स्र जाना,  
अत्याचार सँझे,-- ठाना ॥  
इससे हुनी होगी ताकत ।

स्वागत । स्वागत ॥

कविगण स्वयं तो जाने ही । अपनी बीजस्त्री बाणी द्वारा जनता-जगद्वेन का जाह्वान भी किया । माधव हुक्ल ने जाह्वान करते हुए कहा --

१- जागृत भारत -- माधव हुक्ल, पृ० २५, सन् १९२२ ई०

२- स्वतन्त्रता की कानकार, प्रथम भाग-- उग्र, द्वितीय संस्करण, १९२२ ई०, पृ० १८

बाहती है माता बलिदान-जवानों, उठो हिन्द सन्तान ॥  
 हंसेत हुए फुल से जाकर होश कुका दो मां के पक्ष पर,  
 कटता ही कट जाने दो सर तनिक न होना म्छान ॥  
 जवानों, उठो हिन्द सन्तान ।<sup>१</sup>

सम्पूर्ण भारत को जान उठने का संदेश देते हुए मेक्सिकोशरण मुक्त  
 ने कहा —

जोर भारत उठ वासें सोठ ।  
 उड़कर यंत्रों से, लगील में छूत रहा कुलील ।  
 कवसर धेर लिये सड़ा है,  
 फिर भी तू दुफवाप पड़ा है ।  
 तेरा कर्म पात्र बड़ा है,  
 फल-फल है अमौल ।

-- पैतना : स्वदेश संजीत

इस प्रकार बलि होकर भी ज्ञान्ति का संजनाय कुंजके बाठे दिव्यदी  
 युगीन कवियों ने मात्र बलि की ही नहीं बल्कि कर्मुक्त बलिदान की जाकांता  
 की, क्योंकि कर्म से ही ज्ञान्ति सम्भव है —

कर्म है अपना जीवन-प्राण,  
 कर्म पर ही बाबी बलिदान ।  
 कर्मवीर कर्म की प्रेरणा देते हुए मुक्त भी ने कहा है —  
 बर वीर न कर वाप अपनी चिह्न बाचारं धरो ।  
 बर कर कियो, बन्धन विषय फल-फल न जीते की धरो ।

इस प्रकार दिव्यदी कुल में बलिदान की चिन्तारी ज्ञान्ति की अदम्य  
 ज्वाला बकर बक पड़ी, चिह्नं अन्नाचार, सुरता, परतंत्रता सब के फल जाने की  
 व जायना है । भारतीय-कुल की अधिकतर वीर दलीय ज्ञान्ति-जायना, सब कुल  
 तक स्पष्ट और जीवन्ती जहाँ में अधिकतर होने लगी थी ।

### झायावाद युग

पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है कि झान्ति मूलतः राष्ट्रीय चेतना से उमरती है। राष्ट्रीय-चेतना देशभक्ति से उत्पन्न होती है। प्रारम्भ से ही देशभक्ति की भावना मनुष्य में रहती है और परतंत्रता में यह देशभक्ति और भी सुन्नर हो उठती है।

द्विवेदी-युग में जो राष्ट्रीय-झान्ति-भावना पैदा हुई थी वह झायावाद युग तक और भी प्रज्वलित हो उठी। मारतेन्दु-युग में जिस वैचारिक झान्ति का प्रारम्भ हुआ था, वह द्विवेदी युग में विकसित हुआ और झायावाद युग में उसका उत्कर्ष हुआ।

#### कवीत गान द्वारा झान्ति

पूर्व दो युगों की भांति इस युग में भी कवीत के गौरवमय वर्णन द्वारा कवियों ने वर्तमान के प्रति चेतना पैदा की। राष्ट्रीय-भावना की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम कवीत गौरव-गान इस युग में भी रहा। जयसंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', रामचरित उपाध्याय, डुरेन्द्र, हरिकृष्ण प्रसी, विनकर, सीतलाल द्विवेदी आदि कवियों ने वर्तमान की दयनीय दशा की पृष्ठभूमि पर कवीत गरिमा का जीवन्त चित्रण कर राष्ट्रीय-झान्ति-भावना का उत्थन्त प्रसार किया।

प्रसाद में कवीत गौरव-गान की भावना सर्वोच्च रही है। उनके नाटकों में यह भावना विशेषतः दिखती है, पर काव्य में थो कम नहीं। 'कामायनी' महाकाव्य की रचना द्वारा जातीय उत्कर्ष की ओर उन्होंने उन्मुख किया। नाटकों के भीत द्वारा यह भावना की बहुत अधिक पुष्टि दी। 'सन्ध्याभुषण' के एक भीत में उन्होंने कहा है कि हिमालय के आंगन में क्या महान् प्रकाश किरणों का उपकार भाकर भीरावान्वित है। भारत ने ही उन्मुख पितृव को जनाया है --

जो हम लौ जाने विश्व, विश्व में फैला फिर जालीक ।

व्याप्तम पुंन हुआ तब नष्ट, वसिष्ठ संस्कृति हो उठी बहोक ॥

‘पेशोला की प्रतिध्वनि’ में भी महाराणा प्रताप के त्यागमय चरित्र के माध्यम से कृतीत का ही गौरव-गान प्रसाद जो ने किया है ।

निराला ने भी कृतीत-गौरव-गान के माध्यम से ज्ञान्ति-भावना की कल प्रदान किया है । ‘जागो फिर एक बार’ शीर्षक कविता में उन्होंने लिखी को उद्बोधन किया है ।

‘हजपति शिवाजी का पत्र’ शीर्षक कविता ११ उन्होंने १९२२ ई० में लिखी और शिवाजी के शौर्य को भारत-जन-मानस में प्रतिष्ठापित किया —

स्त्रीभूत शक्तियों से एक हो परिवार,

फैले समवेदना,

व्यक्ति का सिंघास यदि जातिगत हो जाय,

बेसी परिणाम फिर,

स्थिर न रहे धैर,

पस्त होसता होना

ज्वस्त होना साम्राज्य ।

‘तुलसीदास’ में भी निराला ने राष्ट्र के सांस्कृतिक गौरव का गुणगान किया है । ‘तुलसीदास’ के रूप में निराला ने बाहुनिक कवि के स्वाधीनता सम्बन्धी भावों के उदय और विकास का चित्रण किया है ।

कुम्हार कुमारी चौहान और दिनकर भी राष्ट्रीय ज्ञान्ति के उन्मेष के लिए कृतीत चरित्र का एकल चित्रण करते हैं । कुम्हार कुमारी चौहान की ‘मांसी की रानी’ शीर्षक कविता पुनः-पुनः एक ज्ञान्तिकारियों की प्रेरणा बनी रही —

१- सत्य युग-वसुदेव प्रसाद, पृ० ११० सं० २०११

२- कवरा -- निराला, द्वितीय संस्करण, पृ० ८०-८१, सं० २००६ वि०

सिंहासन छिड़ उठे, राजवंशों ने मुकुटी तानी थी,  
 झड़े भारत में भी फिर से जाई नई जवानी थी,  
 गुमी हुई जाड़ादी की कीमत सब ने पहचानी थी,  
 दूर फिरंगी को करने को सको मन में ठानी थी,

काक उठी स्रु सत्तावन में

बह तलवार पुरानी थी ।

हुन्धेले हरबोलों के मुंह

छमने सुनी कहानी थी ।

हूब छड़ी मरवानी बह ती

फांसो बाछी रानी थी ।<sup>१</sup>

मुमूझा कुमारी बौहान को उपर्युक्त पंक्तियां जन-जन के कंठ से झूट  
 पड़ी थी ।

‘हिमालय’ हमेशा हमेशा से गर्वान्वित सिर उठाये कब्ये उड़ा है ।

यिनकर ने कभी ‘हिमालय’ के माध्यम से क्रान्ति मावना प्रकट की है --

जुन-जुन कब्ये निर्बन्ध, मुक्त

जुन-जुन गर्वान्वित, नित महान,

निस्सीम ज्योति में तान रहा

जुन से किस महिला का वितान ।<sup>२</sup>

पर देश के स्वातन्त्र्य का यह हिमालय वाच मौन है । इसलिए कवि  
 उसे उन राष्ट्र-नायकों को याद करने को कहता है, जिनमें भारतवर्ष की गरिमा  
 सम्निहित है --

तु मूल कव्य है, राम कहाँ,

मुन्हा । बीछी, बनस्याम कहाँ

की ममय । कहाँ मेरे कहीक

यह पन्ध्रपन्ध्र कहामय कहाँ ।<sup>३</sup>

१- मुमुझा-मुमूझाकुमारी बौहान, पृष्ठ ६४, वर्ष १९४०

२- हिमालय-राष्ट्रवादी कवि विमलद, पृष्ठ ४, वर्ष १९३९

३- बीछी, पृष्ठ ६



वर्तमान स्वतन्त्रता के रणमतवालों को उद्बोधन करते हुए मोहनलाल विवेदी ने मेवाड़ देश को जगाया है —

ऐ रण मतवाले जाग-जाग ।

जोहर व्रत वाले जाग-जाग ।।

हे स्वतन्त्रता को वाग जाग,

हे देश मुकुट मणि जाग-जाग ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार इस युग के अन्य कवियों ने माँ ज्ञात-गोरव-गान और ज्ञात स्मरण के माध्यम से राष्ट्रीय-ज्ञान्ति की भावनाओं को स्वर दिया है । रामचरित उपाध्याय ने 'पूर्व रूप' (सरस्वती, जुलाई, १९२५ ई०) और 'देशिक कर्' (सरस्वती नवम्बर, १९२५ ई०) शीर्षक कविताओं में, श्री सुरम्भने 'सारनाथ के सण्डहरों' से (विशाल भारत, जनवरी, १९३४ ई०) शीर्षक कविता में ज्ञात स्तवन किया है ।

#### मातृभूमि के देवीकरण द्वारा ज्ञान्ति

राष्ट्रीय ज्ञान्ति के उन्मेष के लिए प्रत्येक युग के कवि मातृभूमि का देवीकरण भी करते रहे हैं । आयावाद युग में माँ यह प्रवृत्ति रही है । इस काल में भारत को प्राकृतिक शोभा वर्णन की ओर कवियों का ध्यान अधिक रहा । गिरिधर शर्मा 'राष्ट्रीय गान' शीर्षक कविता में (१९२०) में अपने देश को सुषमा का उल्लेख यों करते हैं —

जय जय प्यारे देश । रम्य स्नारि देश ।

दून के तारे, जन उजियारे, हिय के प्यारे देश ।<sup>२</sup>

कण्ठीप्रसाद 'दुन्दुभ' ने जन्मभूमि के 'देश-दुल-दम-दुरित-बहनी' स्वस्व का वर्णन किया है । साथ ही उसके मध्यस्वस्व का वर्णन भी प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ किया है —

१- मेवाड़ के प्रति— मोहनलाल विवेदी, चांद, नवम्बर १९३१, पृ० १२०

२- राष्ट्रीय गान — गिरिधर शर्मा, सरस्वती, दिसम्बर, १९२०, पृ० २५२

तेरे पद-नल-वारु-बन्धमणि-मंजित मौलि जलेश्वर का,  
 तेरे काश्मीर-कुंज-कण-वंकित का महेश्वर का ।  
 वन्य-वन-धुरी धर्म-धनना ।

श्री ध्वजेन्द्र ने भी भारत के शौर्य और निर्भय का चित्रण किया है -  
 पद तल पर विस्तृत है सागर  
 दाण-दाण में मोषण निनाद कर  
 फैलाता वातक जगत पर  
 किसी का सह्य नहीं वाम<sup>२</sup>र्ध ।

लोक प्रसाद पाण्डेय ने भारत-जननी से स्वतन्त्रता के लिए हुंकार  
 करने की प्रार्थना की है -

तु स्यात् मुक्तिदायिनी जहो त्रिभुवन में,  
 रक्षेगा तुमका कौन अब बन्धन में ?  
 तू स्वतन्त्रता हुंकार प्रसार हुंकारे ,  
 तू सत्य वात्मनिर्णय का नियम सुधारे ।

‘भारति जय-विजय करे’ शीर्षक कविता में निराजा ने मातृभूमि के  
 उदात्त रूप के चित्रण द्वारा श्रान्ति-भावना प्रकट की है --

मुकुट छत्र छि-सुधार,  
 प्राण प्रणव वोंकार,  
 ध्वनित विशारं उदार,<sup>४</sup>  
 शतमुख- शत मुखरे ।

प्रसाद ने अपने नाटकों में नीतों के माध्यम से मातृभूमि का अत्यन्त  
 रम्य गौरवमय चित्रण किया है । ‘चन्द्रशुप्त’ में कोर्नेलिया के मुख से मातृभूमि के

१- चक्रवर्त कार- बन्धी प्रसाद दुबेयल, नाट्यरी, दिसम्बर, १९१३, पृ० १५३

२- भारतवर्ष - ध्वजेन्द्र, सरस्वती, जनवरी १९२१, पृ० २६

३- भारत स्तुति- लोक प्रसाद पाण्डेय, नाट्यरी, दिसम्बर, १९२३, पृ० ५२७

४- नीतिका - निराजा, पृ० ७९, १९६३ वि०

सौष्ठव को व्यञ्जना हुई है --

वरुण यह मधुमय देश हमारा ।

जहाँ पहुँच जनमान पातिज को मिलता एक सहारा<sup>१</sup> ।

सुमित्रानन्दन पंत, रामचरित उपाध्याय आदि कवियों ने भी भारत-माता के विराट् रूप का ज्जन किया है । इस प्रकार हायावादी कवियों ने जन्मभूमि के इस विराट् गरिमाभय पावन-रूप चित्रण द्वारा राष्ट्रीय-ज्ञान्ति-भावना को अभिव्यक्ति का है ।

### वर्तमान चित्रण द्वारा ज्ञान्ति

गांधीजी के पदार्पण के साथ ही भारतीय राष्ट्रीयता एक नवीन दिशा को और बढ़ी । सत्याग्रह और असहयोग के सहारे उन्होंने राष्ट्रीय-केतना में कर्मयोग को ज्ञान्ति का वारम्भ किया । द्वितीय-युग तक राष्ट्रीय-ज्ञान्ति-भावना उतनी अधिक सक्रिय नहीं हो सकी थी, जितनी अब हुई । अब उसे जन-जीवन का सम्पर्क मिला, लोक ज्ञान्ति मिली और कर्म की नतिमयता प्राप्त हुई । इसलिए इस युग में ज्ञान्ति-भावना एक नवीन शक्ति के साथ अभिव्यक्त होती रही ।

इस काल के पूर्व तक की राष्ट्रीय-केतना में ब्रिटिश राज्य के प्रति वास्या के स्वर मिलते रहे हैं । यही कारण है कि लोग औपनिवेशिक स्वराज्य को मांग करते थे । पर ब्रिटिश राज्य के कारनामों ने इस वास्या को तोड़ दिया । इस वास्या के टूटते ही राष्ट्र में ध्वंसात्मक ज्ञान्ति का वारम्भ हुआ । लोग परिवर्तन की मांग करने लगे । और परिवर्तन की वाकांक्षा ज्ञान्ति को जन्म दिया करती है । जन और अत्याचार के विरोध को नयी प्रक्रिया वारम्भ हुई । यह थी सत्य और अहिंसा की । उन्हें गांधीजी ने राष्ट्र को प्रदान किया था । पर सत्य का प्रयोग बहुत वाचान नहीं था । यही बात अहिंसा के सम्बन्ध में भी है । फिर भी गांधी जी की प्रेरणा इतनी क्लमती थी कि सत्य और अहिंसा की

यह विधि जन-जन के मन में स्थान बनाने लगी । रक्तपात को जगह सत्याग्रह में स्थान बनाया और इस प्रकार बलिदान को क्रान्ति से राष्ट्रीय चेतना को नवीन दिशा मिली । इस नवीन चेतना से अनुप्राणित हिन्दी-कवियों ने क्रान्ति के विविध स्वरों को ग्रहण किया तथा लोक-जीवन में अनुस्यूत स्वतन्त्रता का इच्छा को अधिक विद्रोही और शक्ति सम्पन्न किया ।

वर्तमान की जैसी और जितनी अभिव्यक्ति हायावाद-युग में हुई, उतनी अन्य युगों में नहीं । इस काल में हिन्दी काव्य में विद्रोह को व्यंजना हुई । यह विद्रोह अहिंसक-क्रान्ति के स्वर में फूटा ।

क्रान्ति की यह भावना हिन्दी काव्य में सर्वप्रथम असहयोग के रूप में प्रकट हुई । वर्तमान जनित दायम की प्रतिक्रिया स्वयं ही असहयोग का वारम्भ हुआ दिनकर ने इस दायम को अमोत होकर प्रकट करते हुए कहा --

‘वर्तमान की जय अमोत हो झुल कर मेरी पीर को,  
एक राग मेरा भी रण में, बंदीकी जंजोर बने ।’

त्रिभुव ने भी ‘असहयोग’ करने का संकेत देते हुए कहा --

‘गुलामी में क्यों बक्त तुम हो रहे हो,  
जाना जग हाथ तुम सी रहे हो ।  
क्यों क्या धे पर जाब क्या हो रहे हो,  
बही केह हर बार क्यों बो रहे हो ,  
असहयोग कर दो असहयोग कर दो ।’<sup>२</sup>

असहयोग की यह भाषी निकलता के कारण नहीं, बल्कि सकलता के रूप में गुंजित हो रही थी । इसमें कर्मण्यता भी नहीं थी, बल्कि विद्रोह तथा क्रान्ति धरो हुई थी । असहयोग क्रान्ति ही थी । पर यह क्रान्ति हिंसात्मक नहीं गांधी की प्रेरणा से अहिंसात्मक बन चुकी थी । हिंसा और अहिंसा का यह युद्ध जीता था । बत्त्याचार के प्रति नीचण क्रान्ति हिन्दी काव्य में फूट पड़ी थी

१- हुंकार-- राधवारी सिंह दिनकर, पृ० २, सं० १६५२ ई०

२- राष्ट्रीय मंत्र-- त्रिभुव, पृ० ३०, १६२९ ई०

पर वह बलिदान के रूप में हो । इसीलिए श्री मातलाल बजुर्वेदी 'पुष्प' के रूप में प्रकट होकर, केवल यही चाहते हैं कि वे उस मृ-पथ पर फेंक दिए जाएं, जिस पर वे मातृभूमि के लाल अपने शोश बढ़ाने जाएं --

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गुंथा जाऊँ  
चाह नहीं, प्रेमी माला में बिंघ प्यारी को ललचाऊँ ।  
चाह नहीं, मझाटों के शय पर हँ हरि । जाला जाऊँ  
चाह नहीं, देवों के सिर पर बहूँ माग्य पर ठठलाऊँ ।  
मुझे तोड़ लेना बनमाली ।  
उस पथ में तुम देना फेंक ॥  
मातृ-भूमि पर शोश बढ़ाने ।  
जिस पथ जायें वोर अनेक ॥<sup>१</sup>

असहयोग जन्य इस क्रान्ति का चित्रण सुमझा कुमारो चौहान ने यों किया है --

पन्द्रह कोटि असहयोगिनियाँ,  
दहला दें ज़लाण्ड सही ।  
भारत लक्ष्मी लौटाने की  
रव दें लंकाकाण्ड सही ।<sup>२</sup>

सत्याग्रह असहयोग का मूल अंश है । सत्याग्रही क्वर-क्वर है । कताः वह निर्भीक है । सत्याग्रह रूपी तलवार में चारों वोर तीव्र धार है --

सत्याग्रह प्रेमास्त्र मनो को हरने वाला,  
किन्धि परम विरोध उन्हें बल करने वाला,  
क्या मनुष्य, वह नहीं काल से हरने वाला,  
क्वर-क्वर वह, नहीं किन्धी से मरने वाला ।

१- मरण -अवार -- मातलाल बजुर्वेदी, पृ० १५, प्रथम संस्करण, मार्च १९६३

२- सुझाव -- सुमझाकुमारो चौहान, पृ० ६४, १९४७ ई०

कहते थे गौतम सत्याग्रह तलवार है ।

जिसमें चारों हो तरफ, घरी तो ब्रतर बार है<sup>१</sup> ।

और आगे सत्याग्रहों के कर्तव्यों को बतलाते हुए वे कहते हैं कि सत्याग्रहों वही हैं, जो 'अन्यायी कानून' और 'असत्यादेश' को नहीं माने । ऐसे सत्याग्रहों को 'सत्य के रण' में अवश्य विजय होती है --

'उसका है कर्तव्य जो कि सत्याग्रह ठाने,

अन्यायी कानून असत्यादेश न माने ।

बड़े हरकत रहे प्रेम, आनन्द तराने,

निश्चित अपनी विजय सत्य के रण में जाने<sup>२</sup> ॥

सत्याग्रह को कुकलन के लिए दमन का नीति अपनाई गई । पर सत्याग्रहियों ने दमन का भी स्वागत किया । दमन के विरोध में माँ के रूप रहे । देश-स्वातन्त्र्य उनका लक्ष्य था । उसके लिए वे मर-मिटने को भी तैयार थे । दमन के अत्याचार को सहने के लिए वे कटिबद्ध थे --

दमन-नीति के घुत-मयंकर ।

तु हमको होकेगा - शंकर ॥

प्रकटित होगा तुमसे ही सत्--

स्वागत । स्वागत ॥

+ + +

कारागार स्वर्ण-स्रज जाना,

अत्याचार सँभो- ठाना ॥

कैसे हुनी होगी ताकत ।

स्वागत - स्वागत ।<sup>३</sup>

सत्याग्रही-क्रांति की प्रत्येक बड़का हिन्दी-कविता में बीठी है । शीत कटाकर भी वे अन्याय का प्रतिरोध करेंगे । उन्हें विश्वास है कि वे लंदन का

१- राष्ट्रीय मंत्र -- मिश्र, पृ० ५, १९१२ ई०

२- वही, पृ० ६

३- स्वातन्त्र्य की संस्कार -- प्रेम माध, उग्र, पृ० १८ सन् १९२२ ई०



द्वार मो दिला देगे --

नहों अब सहेगे हम अन्धाय,  
शोश यह रहे चहे कटि जाय ।  
करेंगे अस्वयोग सरकार,  
दिला देगे उन्दन का द्वार ।<sup>१</sup>

इतना ही नहीं, वे उसी प्रसन्न मो हैं, क्योंकि हथकड़ियां उनके लिए गहना है । कारावास में कोल्हू का चरमर बुं उनके लिए जीवन का तान है । मोट सींचकर वे ब्रिटिश राज्य को जकड़ का कूजा लाली करते हैं --

हथकड़ियां क्यों ? यह ब्रिटिश राज का गहना  
मिट्टी पर ? अंगुलियों ने लिखे गाने ।  
कोल्हू का चरमर बुं ? जीवन की तानें ।

हूं मोट सींचता छा पेट पर घुजां,<sup>२</sup>  
लाली करता हूं ब्रिटिश जकड़ का कूजा ।

इस प्रकार जालीय-काल की हिन्दी -कविता अस्वयोग और मत्स्याग्रह की अहिंसक-क्रांति-भावना से आच्छादित रही । दमन-वक्र की कटुता, मोचणता और अत्याचार ने क्रांति-भेतना को और अधिक गति प्रदान की । और इस राष्ट्रीय क्रान्ति-भेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति हिन्दी काव्य में हुई है । इस क्रान्ति का मूलधार स्वतन्त्रता है । स्वतन्त्रता से तात्पर्य है, सर्वस्व अपना होना । आकाश धरती सब पर जनता का अधिकार हो । 'निजीय चिन्ता' में रामनरेश त्रिपाठी ने ऐसा ही स्वराज्य वादा है --

अपना ही नम होगा अपने किमान होंगे,  
अपने ही यान जब सिन्धु पार जायेंगे ।  
जन्मभूमि अपनी को अपनी कहेंगे हम,  
अपनी ही सीमा हम अपने रक्षायेंगे ।<sup>३</sup>

१- जागृत भारत-- भाष्य कृष्ण, पृ० १३, सू० ११२२

२- क्षमिकीरीटिनी -- भास्कराज कटुबंदी, पृ० १५, सं० ११६८

३- निजीय चिन्ता -- रामनरेश त्रिपाठी, सरस्वती, अस्त ११३०, पृ० १२१

क्रान्तिकारी निर्मय होता है । क्रान्ति के लिए निर्मयता आवश्यक है ।  
 इसीलिए निराला ने देशवासियों को निर्मय रहने की प्रेरणा दी । निर्मय को  
 स्वाधीनता का पर्यायवाची मानते हुए वे सम्पूर्ण देश को उद्बुद्ध करते हैं --

समता में  
 भय ही व्यवस्था का जनक है  
 निर्मय अपने को  
 और दुर्बल समाज को  
 करके दिताना है --  
 स्वाधीन का ही  
 एक और अर्थ निर्मय है<sup>१</sup> ।

परतन्त्रता के प्रति यह निर्मयता विद्रोह करती है और यही विद्रोह-  
 भावना क्रान्ति जाकर प्रकट होती है । जागो फिर एक बार में निराला इसी से  
 देश की जनता का आह्वान करते हैं कि तुम पशु नहीं, वीर हो । कालकत्र में पड़कर  
 मरे ही दबे हो, पर तुम 'स्मर सरताज' और हमेशा मुक्त रहे हो --

जाया है बाज स्यार-

जागो फिर एक बार

+ + +

पशु नहीं, वीर तुम,  
 स्मर-द्वार, शूर नहीं,  
 काल कत्र में हो दबे,  
 बाज तुम राजकुमार,  
 स्मर सरताज ।

मुक्त हो सदा ही तुम,  
 बाधा -विहीन-बन्ध इन्दु ज्यों,<sup>२</sup>  
 ऐसे बानन्द में सच्चिदानन्द रूप ।

१- स्वाधीनता पर -- निराला, संख्या ३, १९२४ ई०, पृ० ४१

२- उपरा-- निराला सं० २००६ वि०, पृ० ६-१०

उपर्युक्त विवेचन में एक बात और नष्ट है कि स्व युग की क्रांति-भावना के दो रूप हैं -- एक है, विध्वंसात्मक क्रान्ति और दूसरा है, त्याग द्वारा क्रान्ति । उन्हें ही हिंसक क्रान्ति और अहिंसक क्रान्ति कह सकते हैं । उनमें अहिंसक क्रान्ति का स्वर बलवान रहा ।

अहिंसक क्रान्ति रक्त लेना नहीं देना जानता है । स्वतन्त्रता के लिए भारतीय सत्याग्रहियों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया । वे न केवल अपने प्राणों को, बल्कि अमर भूमण्डल को मातृभूमि को बलिबेदी पर अर्पित करना चाहते हैं । हिन्दी-काव्य में यह स्वर यों अभिव्यक्त हुआ--

जय स्वतंत्रिणी भारत मां  
यों कलकर मुकुट लाने दो ।  
हमें नहीं, इस भूमण्डल को,  
मां पर बलि बलि जाने दो ।<sup>१</sup>

ऐसे स्वतन्त्रताकांक्षी रण-क्षेत्र में अपना शोश सहर्ष अर्पित कर देते हैं--  
बोते रण-क्षेत्र में हैं शोश वे सहर्ष, जिसे  
जाति है रक्षाती जागती, वे पड़े सोते हैं ।  
जग में उजाला करने को निज शोणित से  
दीपक स्वतंत्रता का सुरमा संजोते हैं<sup>२</sup> ।

बलिदान की महत्ता के प्रमुख गायकों में मासकाल चतुर्वेदी हैं । उनकी क्रान्तिमय कविताओं में देश में उत्सर्ग-यय का आयोजन की स्वतंत्रता पर मर मिटने वालों की एक सेना ही तैयार कर दी, जिसके समस्त साम्राज्यवाद के पांव ज़पमाने लगे । पुष्प की अमिताभों प्रत्येक जन-जनेन-की जन की अमिताभ थी । वे मिट जाने में ही हरिवाली देखते हैं --

१- मुकुट -- पुष्पा कुमारी चोहान, पृ० ६५, अ० १६४७ ई०

२- स्वतन्त्रता का दीपक -- रामवीर प्रियाठी, पुष्पा, नवम्बर १९२०, पृ० ३६९

मैंने मिट जाने में सीखा  
 है जग में हरियाना,  
 मेरो हरियाली दुनिया है  
 मिट्टी में मिल जाना ।<sup>१</sup>

‘मैं हूँ एक सिपाही’ में मो इन्होंने तत्कालीन स्वातन्त्र्य आन्दोलन के लिए बड़ी ही क्रान्तिकारी प्रेरणा दी है --

अम सीकर प्रहार पर जोकर बना लक्ष्य आराध्य,  
 मैं हूँ एक सिपाही, बलि है मेरा अंतिम साध्य ।

इसी प्रकार उत्सर्ग की भावना से उद्दीप्त मासनलाल चतुर्वेदी का काव्य है । उनके ये गीत क्रान्ति-जागरण के मसाले थे । उन्होंने स्वयं देश की उड़ाई में भाग लिया था और अपने गीतों द्वारा जनता को भी उद्वुद्ध किया था ।

एक युग के हिन्दी-काव्य में क्रान्ति के दूसरे सकल गायक बिनकर रहे हैं । पर इनमें क्रान्ति का ध्वंसात्मक रूप अधिक उभरा है । जैसे इन्होंने बलिदानियों की प्रशस्ति भी की । इसीलिए वे जीवनदानियों को मृत्यु से अभीत रहने को कहते हैं --

जो जीवन जीवन देता है, उसे मरण-संताप नहीं,  
 बलकर ज्वाला हुआ, उसे जलता ज्वाला का ताप नहीं ।<sup>२</sup>

राष्ट्रीय क्रान्ति के लिए अपने प्राणों की उत्सर्ग करने वाले वीरों की कीर्ति-गाथा बिनकर गाते हैं ।

जग मले ही उन्हें मूल जाए पर वे बेबाकि हैं । जननी धूमि के लिए मर मिटना उनका लक्ष्य है --

जग मूले , पर मुझे एक कस सेवा-कर्म निमाना है,  
 जिसकी है यह देह, उसी में इसे मिला मिट जाना है ।<sup>३</sup>

१- चित्तिरीटिनी -- मासनलाल चतुर्वेदी, पृ० २६, सं० १९६६

२- हुंकार -- रामचारी सिंह बिनकर, पृ० ५८, १९५२ ई०

३- यही, पृ० ६०

कवि अपनी कलम को उनको जयगान करने को कहता है, जो पुण्यवेदी  
पर अपनी गरदन का मोल लिए किता हो चढ़ गए --

कलम वाज उनकी जय बोल ।

जला वस्त्रियां बारी-बारो

क्षि्टकायी जिनने चिनगारी ,

जो चढ़ गये पुण्य-वेदी पर लिये किता गरदन का मोल

कलम वाज उनकी जय बोल ।

सौहनलाल द्विवेदी में भी क्रांति-स्वर बहुत उभरा है । राष्ट्रीय-  
क्रान्ति के प्रबल गायकों में थे रहे हैं । स्वतन्त्रता के लिए वे दासत्व से मुक्ति का  
कामना करते हैं और प्राणों की बाजा लगाने को कहते हैं --

मीम और जर्जुन के पुत्री,

को हुए हो दास ।

ऐसे पराधीन जीवन से

महार मृत्यु का पात ।

ऐसे वीरों की बाहुतियों से यज्ञ-हुंड जलने लगा है, पर कवि को मय  
है कि कहीं किता लक्ष्य प्राप्ति के हो यह ज्वाला मंद न पड़ जाए । इसलिए वह  
नए-नए बाहुतियों को बाहूत करता है --

बचक रही है यज्ञ हुंड में

वात्माहुति की शीतल ज्वाला,

होता । मंद न पड़े हुताशन

नव नव बधिनव बाहुतियां ला ।

इस प्रकार तत्कालीन युव के लोक कवियों ने बलिदान के गीत गाकर  
बहिंसक क्रान्ति की चिंगारी जलाई । यही बलिदान-भावना उग्र होकर हिंसक-  
क्रान्ति के रूप में भी उभरी है । वस्तुतः उस काल के कई हिन्दी कवि इस ऊहापोह

१- हुंकार-- रामबारी सिंह फिफर, पृ० २८, १९५२ ई०

२- जीनी हुवा बिकान -- जुमाभार-सौहनलाल द्विवेदी, पृ० ४२, सं० २००१

३- कैसी बेरी -- जुमाभार-सौहनलाल द्विवेदी, पृ० ५०, सं० २००१

में हैं कि कौन सी राह अपनाएँ । कारण, उन्होंने ही कमा बलिदान के गीत गाए तो कमी क्रान्ति के लिए हुंकार मरा । मूक बलिदान धैर्य मांगता है । पर धैर्य को पीसा होता है । सोलिस वे धैर्य से घबड़ाकर अहिंसक क्रान्ति का वाह्वान करते हैं मूक प्राणियों को हुंकार कर जागने को प्रेरणा देते हैं । दिनकर युग के मूक शैल को पुकारते हैं --

नए प्रात के अरुण । तिमिर-उर में मरीचि संधान करो,  
युग के मूक शैल । उठ जागो, हुंकारो कुछ गान करो ।

दिनकर मूलतः हिंसक क्रान्ति के ही गायक रहे हैं । क्रान्ति कुमारी को वे स्पष्ट ज्ञाते हैं --

उठ वीरों की नाव तरंगिणिके  
दलितों के पिल को विनगारी  
युगमर्दित यौवन की ज्वाला  
जाग-जाग सी क्रान्ति कुमारी ।

नए युग की मवानो को प्रलय बेला में पुकारते हैं --

हृदय की वेदना बोली छह कठ लोचनों में,  
उठाने मृत्यु का घुंघट झारा प्यार बोला,  
नये युग की मवानो वा गई बेला प्रलय को ।  
दिगम्बरि । बोल, अम्बर में किरण का तार बोला ।

कवि के इस वाह्वान पर 'विपक्वा' वा पहुँचती है --

जब हुई हल्लात बाँधों पर, जन्मी जुफे में बाँधों में,  
कोड़ों की साकर नार फली पीकित की दबी कराँछों में,  
सोने-सी निहार जवान हुई तप कड़े वपन को बाँधों में,  
छे जान हथेली पर निकली में नर पिटेने की बाँधों में,  
मेरे बरणों में लीज रहे नय-कंपित तोनों ठीक तरण ।

१- रेणुका-- रामवारी सिंह दिनकर, पृ० २२, १९३६ ई०

२- हुंकार -- " " " " पृ० २६, १९५२ ई०

३- यही, पृ० ७५



इसी प्रकार दिनकर ने ताण्डव, जालोक्यन्वा, स्वर्ग-महन आदि कई, कविताओं में हिंसक-क्रान्ति का अभिव्यक्ति की है ।

बालकृष्ण शर्मा नवीन भी हिंसक-क्रान्ति के गायक हैं । वे स्पष्ट क्रान्ति का आह्वान करते हुए कहते हैं --

क्रान्ति ? क्रान्ति ? मेरे बागन में

यह कैसा हुंकार मचा ?

बोलो तो यह किसने कहे--

श्वासी का फुंकार रचा ?

+ + +

बाजो क्रान्ति, कलायें ठे ठूँ,

ज्वाला जल जा गयी मली,

वास करो मेरे घर बागन,

बिचरो मेरा गलो-गली,

+ + +

नयी अग्नि ज्वाला मझका दो तुम मेरे अन्तरतर में

वरी, नये, नयात्र जगा दो मेरे झुमिल अम्बर में ।<sup>१</sup>

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि स्पष्टतः क्रान्ति से अग्नि-ज्वाला मझाने की प्रार्थना करता है ।

कवि को धैर्य नहीं है । वह शान्ति से घर जुका है । अब परिवर्तन चाहता है । परिवर्तन की यह चाहना ही उसे क्रान्ति की उत्प्रेरणा देती है और वह विस्फोट नाटक<sup>२</sup> कर उठता है --

कवि, कुछ ऐसी तान तुमझी बिलो उफल पुफल मच जाये,

एक छिछोर उधर से जाये एक छिछोर उधर से जाये ,

प्राणों के छलि पड़ जाएं, बाहि-बाहि स्वर नम में जाये,

नाह बीर सत्त्वानाहीं का झुवांधार का में हा जाये ,

१- इन विषयाधी कवि के -- बालकृष्ण शर्मा नवीन, पृ० ४४०-४४१, सन् १९६४

बरसे जाग, जलद जल जाये मसमसात मुषर हो जायें,  
पाप पुण्य सद् सद् भावों को धूल उड़ उठ दायें-बायें,  
नम का वसा-स्थल फट जाय, तारे टुक-टुक हो जायें,  
कवि कुछ ... ..

पष्ट है कि कवि आकाश, पुष्पो सब का विध्वंस कर क्रान्ति चाहता है ।

मास्नलाल चतुर्वेदी में भी क्रान्ति का यह विद्रोहो अप यत्र-तत्र है ।

वे नित नवीनता चाहते हैं, रुढ़ि नहीं --

हम हैं नहीं रुढ़ि की  
पुस्तक के पयरीले भार,  
नित नवीनता के हम हैं  
जग के मौलिक उपहार ।

यही कारण है कि उनकी विद्रोहिणी सिपाहिनी बुद्धियां त्यागकर क्रान्ति के युद्ध में कूदना चाहती है । जब उसका झुंजार तीर कमान और बिरह बस्तार होगा --

बुद्धियां झूत हुई कलाश्यों पर  
प्यारे, कुबदण्ड सजा दो,  
तीर कमानों से सिंगार दो,  
बुरा बिरह बस्तार पहना दो ।

नरेन्द्र झा भी क्रान्ति के लिए शिव का आह्वान करते हैं । वे चाहते हैं कि शिव निर्दय संसार पर ताण्डव नृत्य करे, बिछोड़े धरती मरघट का रूप धारण कर ले --

१- हम विजयायी जग के -- बालकृष्ण झा नवीन, पृ० ४२६, १६६४६०

२- लिमकिरीटिनी -- मास्नलाल चतुर्वेदी, पृ० ५७, सं० १६६८

३- वही, पृ० १२६, सं० १६६८

नाचो शिव, हसनिर्दय जग पर,  
 वन्यायी के बाहुम्बर पर,  
 ज्वाला के घुवर से नाचो  
 पहन बिता के चपल लपट-पट  
 निस्तुल विश्व हो अवघट मरघट ।  
 नाचो, रुद्र, नृत्य प्रलयंकर ।  
 नाचो ताण्डव नृत्य मयंकर ।<sup>१</sup>

श्री संजनाथ सिंह ने हायावाद-युगोन इस क्रान्ति मावना को 'वराजकलावादी प्रलय बाहुवान'<sup>२</sup> कहकर इसे लक्ष्यहीन घोषित किया है। वर्तमान की प्रतिक्रियास्वरूप इस क्रान्तिकारी कवियों ने प्रलयमान किया। तत्कालीन अत्याचार के फलस्वरूप यह विद्रोह प्रकट हुआ। इसलिए यह क्रान्ति उद्देश्यहीन थी, यह नहीं कहा जा सकता। यह क्रान्ति मूलतः दूर शासन के उन्मूलन के लिए हो प्रकट हो रही थी। वैसे इस क्रान्ति - मावना पर तत्कालीन आतंकवाद और वराजकलावाद का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा पर मूलतः इसमें स्वराज्य प्राप्ति का ही आकांक्षा है। अतः इसे वराजकलावाद और लक्ष्यहीन नहीं कह सकते। क्रान्ति नाश के बाद निर्माण चाहती है। तत्कालीन क्रान्ति में भी दूर शासन के विध्वंस के साथ ही साथ स्वराज्य स्थापना की कामना है, जिसे हिन्दी-काव्य में अभिव्यक्ति मिली।

### प्रतिवाद युग

राष्ट्रीय क्रान्ति की विचारधाराएं हिन्दी-काव्य में किस प्रकार हायावाद युग में अभिव्यक्त हो रही थीं, वैसी ही प्रतिवाद युग में नहीं रही।

१- प्रभाव केरी-- नरेश्वर झा, पृ० १०३, सन् १९३६ ई०

२- हायावाद युग -- संजनाथ सिंह, पृ० ६३, सन् १९५२ ई०

इस युग का परिवेश भिन्न हो गया था और इन्हीं के यह भिन्न आयामों से सम्बन्ध होकर अभिव्यक्त होने लगे ।

हायावादी कवि मूलतः अतन्त्रता को आकांक्षा और अस्तौष को भावना से ग्रस्त था । उसको यही भावना क्रान्ति-भावना के रूप में प्रकट हो रही थी । प्रगतिवाद में यह दौम, यह अस्तौष और उत्तेजित हो उठा, जिसे हिन्दो काव्य में बाणों मिलो । फलस्वरूप क्रान्ति को विचारधाराएं नई राहों से जाने बढ़ीं, जिनकी विवेचना प्रस्तुत है ।

### अतीत गान द्वारा क्रान्ति

अन्य युगों की भांति प्रगतिवाद में अतीत गौरव-गान की परम्परा नहीं रही । यों, ऐसा नहीं कि अतीत का स्मरण किया ही न गया हो, किन्तु पूर्व युगों की तरह अतीत को यश-गाथा न गाकर कुछ भिन्न ही प्रकार से अतीत-स्मरण किया गया । अतीत गौरव-गान वर्तमान की अवोगति के कारण होता रहा है । अतीत के स्मरण द्वारा वर्तमान के प्रति दौम और अस्तौष को अभिव्यक्त करना ही कवियों का इष्ट रहा है । हायावाद में अतीत-गान बहुत हुआ, पर प्रगतिवाद में कई कारणों से यह धारा मन्द पड़ गई । इनमें निम्नांकित मुख्य हैं ।

प्रगतिवादी आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी हैं । यथार्थ में अतीत की ओर नहीं, बरन् वर्तमान की कठोर धूमि पर रहा जाता है । इसीलिए प्रगतिवादियों की शीघ्रता, व्यापार, कमन लादि की दूर धूमि पर ही ज़रूर टकराना पड़ा कि उन्हें स्वर्णिम अतीत की ओर जाने का अवकाश ही नहीं था । वर्तमान चित्रण के द्वारा ही वे क्रान्ति के उन्मेष में लगे रहे ।

परम्परा के विपरीत हायावाद युग में ही आरम्भ हो चुका था । प्रगतिवाद में परम्परा को स्थान दिया गया । इसीलिए अतीत गान की परम्परा भी नष्ट हो गई ।

प्रगतिवाद प्रत्येक चीज में क्रान्ति लेकर आया । पुराने का अपने सर्वथा बहिष्कार किया । इसलिए अपने प्राचीन व्यवस्थाओं में भी विश्वास नहीं किया और इसीलिए प्राचीन गौरव-गाथा की ओर भी ध्यान नहीं दिया ।

इस काल में मुसलमान अपने अलग राष्ट्र का मांग के लिए बान्दोलन कर रहे थे । पर राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के लिए यह आवश्यक था कि हिन्दू-मुस्लिम एकता हो । इस स्थिति में यदि हिन्दी कवि हिन्दुओं को अतीत महिमा गाते रहते तो स्वभावतः मुसलमानों के मन में गृध्रत्व की भावना जागती । इसीलिए हिन्दी काव्य धारा ने अतीत गान के मोह को छोड़ दिया ।

इस युग में विद्रोह बहुत अधिक था । सम्पूर्ण परिवेश उबाने वाला था और ऊब के कारण क्रान्ति भावना बरम सीमा पर पहुँच चुका थी । जवानों ने सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व को पसन्द किया—गांधी के समझौतावाद को नहीं, क्योंकि सुभाष का प्रेरणा विद्रोही थी । इस विद्रोही मनःस्थिति में परम्परा गान का अवकाश नहीं था ।

प्रगतिवादियों का यह भी कहना था कि अतीत का और लौटना फलान्न है । वर्तमान संघर्ष हो उनका प्रधान लक्ष्य रहा । असंतियों को मिटाना ही उनका ध्येय रहा था । वर्तमान के प्रति वे अत्यधिक जागरूक थे । इसलिए वर्तमान चित्रण ही उनका लक्ष्य रहा और अतीत-गान को वे भुल गए ।

उपर्युक्त कारणों से इस युग में अतीत-गान परम्परा का लोप हो गया ।

### वर्तमान चित्रण द्वारा क्रान्ति

युगीन सोम और आक्रोश को लेकर आयाबाद युग में ही राष्ट्रीय क्रान्ति-भावना का प्रस्फुटन हुआ था । पर आयाबाद-युगीन क्रान्ति-भावना एक सीमा तक आत्मनिष्ठ थी । प्रगतिवाद में यह भावना समाजनिष्ठ हुई । समाजनिष्ठ होने का एक प्रधान कारण था, इसका न केवल राजनीतिक दास्ता से मुक्त होने का प्रयत्न, बरन् आर्थिक दास्ता से भी ।

इस युग की क्रान्ति-भावना में प्रलय के आह्वान के साथ ही साथ एक नवीन मानवता के विकास की उच्छा भी प्रकट की गई है । दिनकर, मोरन्द लार्ज, नवीन वादि में अहिंसात्मक क्रान्ति है, पर नयी मानवता के लिए उतना वाग्रह नहीं । इस नवीन मानवता की आकांक्षा देश में व्याप्त वैश्य भावना के कारण हुई

इसलिए मुमित्रानन्दन पंत तीस कोटि भारत संतानों को नग्न तन, वर्ण दूषित, शोषित, मुढ़, वसम्य, अशिक्षित देखकर व्यथित हो जाते हैं --

तीस कोटि संतान नग्न तन,  
वर्ण दूषित, शोषित, निरस्त्र जन,  
मुढ़, वसम्य, अशिक्षित, निर्वन<sup>१</sup>

यही कारण है कि इस युग में प्राचीन को पूर्णतः नष्ट कर सर्वथा नवीन के स्थापन की बलवती आकांक्षा अभिव्यक्त हुई है --

नष्ट प्रष्ट हो जायें पुरातन  
ध्वंस प्रंस जा के बड़ बवन ।  
पावक पग धर जावे नूतन  
हो पल्लवित नवल मानवपन ।

मानवता के शोषण शोषण को फंकरता के अनुभव ने कवियों को प्रेरणा दी कि वे झुंझारें तोड़कर मूक मानवता के उत्थान के दर्शन करें --

कमन-शोषण-कड़ में काणित युगों तक पिस चुकी है,  
मूक मानवता न जाने कष्ट कितने सह चुकी है,  
मुक्ति का संकेत या यह आवाज सख्ता उठ रहा है-  
तोड़ने को झुंझारें, कंकड़<sup>२</sup> बिन्में रह चुकी है ।

इस युग तक राजनीतिक परिवर्तन ऐसा हो गया था कि स्वतन्त्रता की आस बंध गयी थी । कर्म-केतना भी बहुत हो चुकी थी । इससे शोषित जन जाग उठे थे । बहुत अधिक अपेक्षा थी । अपेक्षा से उत्पन्न क्रान्ति का स्वर दिनकर और नवीन में भी है । उसी स्वर को जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने भी बाणों दी है --

धीरे-धीरे युग-परिवर्तन की आहट आती जाती है,  
गहन घटा-सी क्षातिज-घटल पर धिर-धिर कर हाती जाती है ।  
क्या कलह तुफानों में तू अपना मार संभाळ सँगा ?  
स्वाधी अशहाय नाश की केला कब तक टाळ सँगा ?<sup>३</sup>

१- वास्तविक कवि-मुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ २०२ सं० २०१० वि०

२- नवयुग के नाम-जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, पृष्ठ ३ सं० १९६६

३- वही, पृष्ठ ६



क्रान्ति के द्वारा कवि को एक नयी आशा है कि अब बन्धन को, कड़ियां छिन्न हो रहा हैं --

बन्धन की कड़ियां छिन्न हुई जाती हैं,  
नूतन कविताएं मुक्ति गीत गाती हैं,  
आडम्बर, क्लृप्त्य भस्म सभी कर देगी  
मानव-उर से ऐसी ज्वाला निकलेगी  
कल्याण-क्रान्ति का मन्त्र मिला है प्यारा,  
जीवन-नायक वह तेरा एक इशारा ।

पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है कि प्रगतिवाद युग मार्क्सवाद से प्रभावित था । यही कारण था कि इस समय हिन्दी काव्य में यदि राष्ट्रीय स्वातंत्र्य के लिए क्रान्ति के स्वर हैं तो साथ ही पूंजीवादों के उन्मूलन का आकांक्षा भी है । इसलिए इस काल की कविताओं में क्रान्ति की प्रहार भावना है । कवि जानता है कि कड़ियां बहु-धारों से छिन्न नहीं होंगी । दर्द डुलार से दूर नहीं होगा और दास्ता मात्र पुकार से हो दूर नहीं होंगी ।

जंजीर टूटती कभी न बहु-धार से  
दुल-दर्द मागते नहीं डुलार से  
हटती न दास्ता पुकार से गुहार से  
इस गंगब तीर बैठ आज राष्ट्र शक्ति को  
तुम कामना करो किशोर कामना करो ।<sup>२</sup>

तत्कालीन क्रान्ति के विचारधाराओं के मूल में इसी मानवता का धौम मरा हुआ है । इसीलिए कवि कहता है --

जो बने बाणी नये युग की बही मेरी कला है  
मनुष्यता के व्यथित उर के धौम की हुंकार हूं मैं ।  
धीड़ियों के उबड़ते विद्रोह की अभिव्यक्ति हूं मैं,  
बंशियों का स्वत्व, दलितों का सत्ता, आभार हूं मैं ।<sup>३</sup>

१- कही, पृ० ४१

२- नवीन-- गोपाल सिंह नेपाली, पृ० १, सं० २००२

३- नवयुग के मान -- जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, पृ० १, सं० १९९६

रामदयाल पाण्डेय बलिदान के लिए तत्पर हैं, क्योंकि उन्हें अंधकार से उबर कर, नये प्रकाश से संसार भर जाए, उसको आकांक्षा है --

तिमिर ग्रस्त भव को, ज्योतिर्मय  
क्या प्रकाश का दान न दोगे  
कोटि कोटि जन्मों के बदले  
एक बार बलिदान न दोगे ।<sup>१</sup>

सोहनलाल द्विवेदी भी रक्तदान करने वालों के लिए मतवाले हैं, क्योंकि बलिदान के माध्यम से को गई क्रान्ति उन्हें प्रिय है --

हम तो हैं उनके मतवाले  
बलि पथ पर जो रक्त बहाते  
विजय मिले या मिले पराजय  
अपने शीश अर्प दे जाते ।<sup>२</sup>

कवि को विश्वास है कि ऐसे ही संघर्षों में राष्ट्र का निर्माण होता है । क्रान्तिकारी विजय और पराजय को परवाह नहीं करते, क्योंकि क्रान्ति धीरे-धीरे राष्ट्र-निर्माण करती है --

आज राष्ट्र निर्माण हो रहा  
अपना शत-शत संघर्षों में  
ह धुप-झाँह सी विजय-पराजय  
राष्ट्र फनफता है बर्षों में ।<sup>३</sup>

इस प्रकार इन कवियों ने बलिदान के माध्यम से अहिंसक क्रान्ति को कामना की है । लायाबाद युग में क्रान्ति की व्यक्तिगत केतना थी और इसीलिए बलिदान का माद रहा । प्रगतिवाद : युग का मो कोई-कोई कवि अहिंसा पर

१- गण देवता -- रामदयाल पाण्डेय, पृ० १३२, सं० २०००

२- उमता राष्ट्र -- सोहनलाल द्विवेदी, विशाल भारत, पृ० ५०६, मई १९३६ ई०

३- वही

विश्वास करके बलिदान द्वारा ही देशोद्धार की आकांक्षी रहा ।

पर अब तक अधिकांश जनता को श्रद्धा गांधीवाद से हटने लगी थी । इसीलिए अहिंसक क्रान्ति पर से भी उनका विश्वास झिग रहा था । परतंत्रता से अकबर ऊबकर अब वे किसी भी तरह स्वतन्त्रता पाना चाहते थे । साम्राज्यवाद के घोर विरोधी होने के कारण वे उसका विनाश किसी भी मूल्य पर चाहते थे । इसीलिए अब वे हिंसात्मक क्रान्ति की ओर अधिक झुकने लगे ।

इसीलिए आज के कवि फूल से पैदा होकर भी आग से खेलते हैं । वे जहर पी रहे हैं, फिर भी अमृत से घनिष्ठता है --

फूल से उत्पन्न हूँ मैं , आग से है तेल मेरा,  
जो रहा हूँ मैं गरल पी, है अमिय से मेल मेरा ।<sup>१</sup>

अब कवि स्वयं को क्रान्ति की हुंकार मानने लगे , शक्ति, जीवन और जागरण का सबल संहार मानने लगे --

हुंकार हूँ, हुंकार हूँ, मैं क्रान्ति की हुंकार हूँ ।  
मैं न्याय की तलवार हूँ ।  
शक्ति, जीवन, जागरण का मैं सबल संसार हूँ<sup>२</sup> ।

इस युग में भी कोई-कोई कवि थोड़ी देर के लिए द्विधाग्रस्त हो जाते हैं कि राष्ट्र के लिए विप्लव अच्छा है या बलिदान । मिलिन्द भी ऐसे ही कवियों में से एक हैं । पर वे दूसरे हो दाण आश्वस्त हो जाते हैं कि अबे दाने और विधान से काम नहीं चल सकता । इसीलिए वे क्रान्ति की ज्वाला जलाने का आह्वान करते हैं --

फिर उठो फिर क्रान्ति की ज्वाला जलाओ  
होइ यह पर्ये दाने और विधान का तुम ,  
राष्ट्र का इतिहास फिर उज्ज्वल बनाओ  
स्वत्व का, संघर्ष का, बलिदान का तुम ।<sup>३</sup>

१-जंगार है जंगार मेरे -- सुवीन्द्र, विशाल भारत, जुलाई १९४२, पृ० ६६६

२- नीत -- महेन्द्र, विशाल भारत, मार्च, १९४४, पृ० १५६

३- बलिपथ के नीत -- जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, पृ० ६५, अर १९५० ई०

विधा की यह स्थिति १९४६ में रही थी, क्योंकि देश स्वातंत्र्य के दावा बहुत नजदीक थे और विधान के माध्यम से लक्ष्य प्राप्ति नहीं होते देखकर वे विप्लव की तरह राह अपनाना चाहते थे ।

यही कारण था कि आज का कवि स्पष्ट कहने लगा कि हम वे नहीं हैं, जिन्हें कुचल-कुचल कर दुनिया चली जाएगी । इसीलिए वह ऐसा प्रलय गीत गाना चाहता है कि सारी दुनिया में जाग लग जाए --

हम वे नहीं कि जिनको दुनिया कुचल कुचल कर चली जाये ।  
हम वे नहीं कि जिनका मस्तक कभी न ऊपर उठने पाये ।  
बाँसों में, दिल में, प्राणों में, नस-नस में उन्माद जगा दें ।  
ऐसा प्रलय गीत गावें जिससे दुनिया में जाग लग जायें ।

झायावाद - युग के बलिदान के समर्थ पदाभातो कवि श्री मालनलाल चतुर्वेदी भी अब सुधार और समझौता पसन्द नहीं करते । उन्हें अब लगता है कि यह ठिठोली है । इसीलिए अब वे हिंसक क्रान्ति चाहते हैं --

अमर राष्ट्र उदण्ड राष्ट्र, उन्मुक्त राष्ट्र, यह मेरी बोली,  
यह सुधार समझौतों वाली, मुझको मातो नहीं ठिठोली ।  
यह मैं चला पत्थरों पर चढ़, मेरा दिलवर वहाँ मिलेगा,  
फूँक जला दे सोना-चाँदी, तभी क्रान्ति का सुमन सिलेगा ।<sup>१</sup>

दिनकर भी अत्याचार से ऊब चुके हैं । इसीलिए वे भी हिंसात्मक क्रान्ति चाहते हैं --

देश की भिंदी का असि वृक्ष, गान तरु होगा जब तैयार,  
सिले अंगारों के फूल, फलेनी डालों में तलवार ।  
कटकती चिंगारी के फूल, सजोले वृक्षों के शृंगार,  
विवशता के विषजल में झुकी गीत को, बाँस की तलवार<sup>२</sup> ।

१- गीत— भारतीय आत्मा, योगी, नवम्बर १९४५ई०, पृ० ६

२- फलेनी डालों में तलवार— दिनकर योगी, नवम्बर १९४५, पृ० ३

जाज के कवि को विश्वास है कि तरुण क्रान्ति में जग जीवन को  
क्रान्ति जल जाएगी और संसार की राख पर एक नए संसार को रचना होगी --

तरुण क्रान्ति की अग्नि शिक्षा में

जग-जीवन की प्राप्ति जलगी

जग की राखों पर सुलेगा एक नया संसार <sup>१</sup>

साम्राज्यवाद के मूलोच्छेदन के लिए १९४२ ई० में 'भारत छोड़ो' का  
नारा लाया गया था। इसी के लिए उस साल अगस्त क्रान्ति हुई थी और  
फलस्वरूप कई स्थानों से ब्रिटिश शासन को कुछ समय के लिए मिटाकर स्वतन्त्र  
शासन की स्थापना की गई थी। तब क्रान्ति-गीत के गायक 'मिलिन्द' ने गाया --

दृढ़ निश्चय के बाद हमारे हाथों में अब आजादी है।

टूटे बन्धन, मिटी गुलामी, सत्य सम्झ लो बरबादी है।

नयी जिन्दगी, नया बतन अब, नये विचारों को है धारा।

है स्वतन्त्र सब भारतवासी, भारतवर्ष स्वतंत्र हमारा <sup>२</sup>।

अगस्त आन्दोलन में माधव शुक्ल ने भी अत्यन्त प्रेरणाप्रद गीतों को  
रचना की। विवेक भिदी युग से लेकर प्रगतिवादी युग तक ये राष्ट्रीय-क्रान्ति  
के प्रबल गायक रहे। ब्रिटिश-शासन पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने कहा है कि मार्शल  
ला के बावजूद तरुण अपने रक्त द्वारा देश में क्रान्ति की लहर फैला रहे थे --

फगवान मला करे स्मरी का को यशस्वी ब्रिटिश निशान,

होय निहत्थों पर मारुतला शहरी गांवों के दम्याँ ।

नर नारी बच्चों को गोरे बत्याचारी हूब हनें,

भारत के कोने-कोने में जालियाँ वाला बाग बने ।

चिन्ता नहीं बहे लहराता चहुं दिशि हून जवानों का <sup>३</sup>

कि स्वराज के नहीं हटेने कौल रहे मरदानों का ।

१- नवीन -- दीपावलि सिंह नेपाली, पृ० २४, सं० २००२ वि०

२- बलिपथ के गीत -- जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, पृ० ५६, सन् १९५० ई०

३- भारत गीतांजलि -- माधव शुक्ल, पृ० ५६, सन् १९४० ई०

उदयशंकर मट्ट ने भी क्रान्ति के गीत गाए । वे स्वयं को महानाश की मूर्ति मानते हैं, और उन्हें विश्वास है कि उनके संकेत पर सब नष्ट हो जाएगा । उन्हें तत्कालीन शासकों लघु लगे हैं और राजतंत्र ब कीट लगता है --

ये और कीट से लघु शासक,  
ये और कीट से राज तंत्र,  
मेरे जागे कब ठहर सके  
में महानाश का महामंत्र ।

इस युग में साम्प्रदायिक-मतभेद अत्यन्त उग्र हो गया था । पर राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के लिए एकता की आवश्यकता थी । इसलिए प्रगतिवादी कवियों ने एकता-प्रेरक कविताएं भी की । इसी समय लोग ने जलज राज्य की मांग भी की । इसे कोई भी राष्ट्रवादी मानने को तैयार नहीं था । यद्यपि जागे चलकर पाकिस्तान के रूप में यह मांग प्रतिफलित हुई ही । तो भी हिन्दा-काव्य में राष्ट्रीय क्रान्ति को मानना वृद्धतर हो सके, इसके लिए कवियों ने एकता के गान गाए ।

क्रान्ति की सफलता के लिए सभी जातियों की एकता आवश्यक है । जन-जल में अपूर्व दामता है । पर उस जल का उपयोग सभी सम्भव है, जब एकता हो । इसीलिए हरिकृष्ण प्रेमी एकता का आह्वान करते हैं जिससे महाक्रान्ति का घुंघट छुले --

एक-एक रंजन की लकड़ी  
जल-जल क्यों जुलगे बोलों ।  
जलों साथ मिल लपेटें लपेटें  
महाक्रान्ति का घुंघट सौलो ।

‘जिन्ना और जवाहर’ शीर्षक कविता में सोहनलाल द्विवेदी ने दोनों नेताओं की जुलना की है । वे स्पष्ट समझते हैं कि दोनों नेताओं का विरोध देश

१- चित्र के दो रूप -- उदयशंकर मट्ट, विशाल भारत, फरवरी, १९३६ ई०, पृ० १४३

२- महाक्रान्ति का घुंघट सौलो -- हरिकृष्ण प्रेमी, विशालभारत, फरवरी, १९४९,



के लिए बड़ा घातक है । अतः वे वैमिन्त्र्य मिटा कर कस्त देश के सुत्रधार बनने की अपेक्षा करते हैं --

फिर भी क्या लायेगा वह दिन  
गत होगा अंतर - अंधकार ?  
ये बैठे मिल एक साथ  
बन कर स्वदेश के सुत्रधार ।<sup>१</sup>

इस प्रकार इस युग में राष्ट्रीय क्रान्ति के लिए कवि स्कता का गान भी करते रहे । मले ही व्यवहार में यह स्कता कायम नहीं हो सकी और देश का विभाजन हो गया ।

### मातृभूमि की वन्दना

अन्य युगों की तरह प्रातिवाद युग में भी भूमि का गौरव-मान हुआ । पर इसकी मात्रा अन्य युगों की अपेक्षा बहुत कम रही । ऐसा नहीं कि मातृभूमि के प्रति प्रेम और श्रद्धा नहीं रह गई थी या भूमिगत स्कता का भाव नहीं रह गया था, बल्कि यह भावना ज्यों की त्यों थी । तभी तो बलिदान और क्रान्ति के भाव उत्पन्न हुए थे । पर अत्यधिक बौद्धिकता के कारण इस युग में पूजा और बाराधना से लोगों का विश्वास हट रहा था । कारण, बौद्धिक चेतना द्वारा श्रद्धा के बाह्य उपचार कम हो जाते हैं । अतः जन्मभूमि की पूजा और बाराधना कम हुई ।

मातृभूमि की वन्दना कम हो जाने का एक कारण यह भी रहा कि साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण पाकिस्तान के निर्माण ने इस भावना पर ठेस पहुंचाई । भूमि की स्कता हिन्दू ही नहीं थी । हिन्दुस्तान मात्र हिन्दुओं का देश समझने लगा और ब्रिटीश भूमि के प्रति जगत् प्रेम की अभिव्यक्ति भी कम होने लगी ।

इस समय समस्याएं बहुत बढ़ चुकी थीं । अतः भारतीय समस्याओं में ही उलझे हुए थे । यथार्थ से उन्हें झुझना पड़ता था । अतः भावनात्मक कार्यों को ओर वे ध्यान नहीं दे पाते थे । अतः वे जन्मभूमि के देवों रूप के गीत भी कम गाते थे ।

पर इन सब कारणों के बावजूद मातृभूमि की बंदना द्वारा कवियों ने क्रान्ति के उत्थेय का प्रयत्न किया है ।

सुमित्रानन्दन पन्त भारतमाता के ग्रामवासिनी समतामयी रूप का चित्रण करते हैं --

भारत माता  
ग्रामवासिनी ।  
क्षेत्रों में फैला है श्यामल  
बुल मरा मेला-सा बाँवल,  
गंगा यमुना में बाँसू जल,  
मिट्टी की प्रतिमा  
उदासिनी

जैसे उन्होंने भारतमाता की दीनता का और भी करुण चित्रण किया है । दीनता के कारण वह विषण्ण नीचा सिर किए रहती है और अपने ही घर में प्रवासिनी की तरह है --

देव्य बह्नि अफक नत चितवन,  
बबरीं में चिर नीरव रोदन,  
युग-युग के तम से विषण्ण मन  
वह अपने घर में प्रवासिनी<sup>१</sup> ।

उपर्युक्त चित्रण बड़ा ही मार्मिक और हृदयग्राही है ।

१- वास्तुनिक कवि -- सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० ८०, सं० २०१०

२- वही

इसी प्रकार छिटपुट रूप में यत्र-तत्र बहुत ही अल्प मात्रा में मातृश्रमि की वन्दना के स्वर इस युग में भी मिल जाते हैं । पर इस प्रवृत्ति की धारा अत्यन्त क्षीण रही ।

१९४७ में देश की स्वतन्त्रता मिली । इसके साथ ही राष्ट्रीय ज्ञान्ति की आवश्यकता भी नहीं रही, क्योंकि राष्ट्रीय-ज्ञान्ति की भावना प्रधानतः विदेशी शोषण के विरुद्ध ही उत्पन्न होती है । इसे ऐसा नहीं समझना चाहिए कि देश-भक्ति के गीत नहीं गाए गए । देशभक्ति पूर्ववत् ही रही । पर स्वतन्त्रता के साथ ही राष्ट्रीय ज्ञान्ति की आवश्यकता नहीं रहने से हिन्दो-काव्य में भी इस ज्ञान्ति के स्वर नहीं रहे ।

अध्याय — चार

-0-

सामाजिक और धार्मिक विचारधाराएं

## अध्याय -- चार

### सामाजिक और धार्मिक विचारधाराएं

#### भारतेन्दु युग

#### वर्तमान दशा

भारतेन्दु-युग की क्रान्ति परक राजनीतिक विचारधारा की उत्पत्ति सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में भी आयी । बाह्य जगत के सम्पर्क में जाने के कारण और अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से उत्पन्न क्रान्ति-केतना सामाजिक और धार्मिक सुधार की ओर भी उन्मुख हुई । प्रबुद्ध भारतीय जन मानस ने इन क्षेत्रों में व्याप्त कुरीतियों को पहचाना । उनकी जड़ता से सामाजिक और धार्मिक मान्यताएं निर्जीव हो गयी थीं । जीवन बड़ हो गया था और सौख्ये, व्यर्थहीन, वारोपित मृत्यों के संदर्भ में वह अधिक निष्क्रिय था । मानसिक दृष्टि से देश अव्यपन्न के किनारे था और प्रभाव, बालस्य, भिक्षुवाचार का प्रभाव दिन-ब-दिन बढ़ रहा था । इसके फलस्वरूप सामाजिक जीवन अधिक दुर्बल हो गया था । ऐसी परिस्थिति में कई सामाजिक आन्दोलनों का प्रवर्तन हुआ । राजा राममोहन राय, केवलचन्द्र सेन, विद्यासागर, दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, तिलक आदि ने सामाजिक और धार्मिक पिछाई में क्रान्ति का बीज दिया । ब्रह्म विवाह, बाल विवाह, दहेज, दुवाहल, कर्मकाण्ड आदि की वर्जनाओं को दूर करना आवश्यक था । इन सब कर्मों से मुक्ति पाकर ही

राष्ट्र में नई स्फूर्ति और उत्थान का संसार हो सकता था ।

सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी विचार अंग्रेजी और अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों के माध्यम से विशेषरूप से आए । वे पाश्चात्य आचार-विचारों का अनुकरण करने लगे थे । कट्टर हिन्दू भी अपने समाज और धर्म की कुरीतियों से परिचित थे और उनकी बुराइयां दूर कर परिवर्तन और पुनर्जागरण ले आने के पक्षपाती थे, किन्तु वे पश्चिमी आचार विचार का अन्य अनुकरण नहीं चाहते थे । वे सनातन धर्म की परम्पराओं को जामूल हटाने के पक्ष में नहीं थे । जाहिर है कि इस युग की सामाजिक और धार्मिक विचारधारा में क्रान्तिपरक तत्वों का समावेश था ।

यह क्रान्तिपरक विचारधारा सामाजिक दिशा में सुधार के रूप में प्रकट हुई । सुधार की दिशा में दो प्रकार की स्थितियां इस युग में उभरीं । एक ओर पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित पढ़े-लिखे भारतीय सनातन परम्पराओं में जामूल परिवर्तन करने के पक्ष में थे । उन्हें विदेशी संस्कृति, सामाजिकता, वस्त्रधरा आदि अधिक आकर्षक लगे और उन्होंने इस दिशा में अनुकरण प्रारम्भ किया । दूसरी ओर ऐसे भारतीय सुधारक भी थे, जो सनातन परम्परा की रुढ़ियों को दूर कर परिवर्तन और सुधार चाहते थे । उन्होंने विदेशी सभ्यता का अनुकरण नहीं किया और न ऐसे लोगों को ही उन्होंने बर्दाश्त किया, जो भारतीयता छोड़कर विदेशी हो रहे थे । ऐसे लोगों की कटु आलोचना हुई । परम्परावादी सनातनधर्मी सुधारकों में अपने सामाजिक और धार्मिक मूल्यों को पुनरुज्जीवित करने का आग्रह दीखता है । इस प्रकार धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में, जिस परिवर्तन की कामना की गई, उसकी परस्पर दो विरोधी धाराएं दिखायी पड़ती हैं । अनुकरण करने वाले लोगों की मान्यता में राष्ट्रीयता का अभाव है, जब कि परम्परावादी धार्मिक सुधारकों में भारतीयता का अतिरिक्त आग्रह है ।

हिन्दी कवियों ने इस परिस्थिति का अनुभव किया । देश में फैले हुए मिथ्याचार, प्रवाद और बाधस्थ को उन्होंने समाज और धर्म के लिए घातक मन्त्रित्व किया । अपनी दुर्बलताओं और बुराइयों से वे अनभिज्ञ नहीं थे । भारतभू ने हिन्दुओं



को 'वार्थपरता', कैमनस्य और मृदुता के प्रति संद प्रकट करते हुए और अंगरेजों का सम्पर्क प्राप्त होने पर भी उससे लाम न उठा सकने के कारण मोठो फिट्का देते हुए कहा --

अंगरेजों के राज्य पाई के रहे बूढ़ के बूढ़

स्वार्थ पर विभिन्न मान भूले हिन्दू सब हवे मूढ़ १।

उन्होंने दुःख प्रकट करते हुए कहा, 'लिया मो तो अंगरेजों से तो अवगुन' । भारतवासियों को मुसलता पर बड़ा करारा व्यंग्य प्रतापनारायण मिश्र ने किया है --

कसी मुसलत देवी जायों के जी में,<sup>२</sup>

तुम्हारे लिए हैं मकां कैसे-कैसे ।

प्रतापनारायण मिश्र की झुटकियां बड़ी तीली और सटीक गीं । उन्होंने पढ़े-लिखे लोगों के बाहु बनने की इच्छा विदेशियों की सेवा का साधन बनने की आकांक्षा करने वालों पर तीली चोट की ।

तन मन सो उद्योग न करहिं,

बाहु कबके छित मरहिं ।

पर देविन सेवत अतुराग

सब फल साय बतुरान लागे ।

अंगरेजी वस्त्रमुखा का अनुकरण करने वाले पढ़े-लिखे शत्रियों पर चोट करते हुए बालमुकुन्द ने कहा --

सेल नई बरहि नई मयो तीर तलवार ।

घड़ी, बड़ी वस्त्रा मयो हत्तिन के हथियार ।

१- भारतेंदु ग्रन्थावली, भाग १

२- ब्राह्मण, संड बी, सं०४, पुन १८८४, पृ० ६

३- श्री राम स्तोत्र--बालमुकुन्द मुष्ता, पृ० ३८१ सं० २००० वि०

सभी वर्गों ने अपना-अपना कर्म छोड़ दिया । ब्रासणों ने होम,  
कात्रियों ने तलवार और वैश्यों ने अपना सद्व्यवहार त्याग दिया । भारतभूमि के  
सभी वर्ग दास हो गए । बालमुकुन्द गुप्त ने इस विघटन के प्रति दुःख प्रकट किया है--

विघ्न होइयो होम तत्र- तप अरु कृत्रिम तलवार ।

बनिकन के पुत्रन तज्यो अपनो सद्व्यवहार ॥

अपनो कहू उष्म नहिं तक्त पराई जास ।

जब या भारतभूमि में सबे बरत हैं दास ॥<sup>१</sup>

देशवासियों को अन्धपरम्परा का प्रतिवाद प्रेमचन ने भी किया ।

इस प्रकार भारतीय जायों को लज्जित ही किया --

प्रचलित हाथ अन्ध परिपाटी पर तुम चलते जाते,<sup>२</sup>

जायें वंश को लज्जित करते कुछ भी नहीं ल्हाते ॥

इसी प्रकार अन्य कवियों ने भी सामाजिक मिथ्याहम्बर तथा  
दुर्बलताओं को और जन-मानस को जाकृष्ट किया और सामाजिक कान्ति के विचारों  
को लहर देश में फैला दी ।

## नारी

नारी जाति की पतिततावस्था भी सामाजिक दुराद्यों की जड़ में  
था । अतः कवियों ने नारी के अहित के विरुद्ध भी क्रांति का स्तर उठाया ।  
इसलिए उन्होंने अन्मेल विवाह, बाल विवाह तथा विधवा विवाह जैसे अनाचारों  
पर भी चोट की । लोक जुन कबरी में अन्मेल विवाह की मर्त्सना करते हुए प्रेमचन  
ने कहा --

नेहर में देवे किताय बरु बिछा केस जवानी रामा !

हरि हरि का करै लैई छोटा सज्जा र हरी ।

१-वीराम सौत्र, बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली, पृ० ५६०, सं० २००० वि०

२- प्रेमचन सर्वस्व, पृ० ५४५, सं० १९६६ वि०

३- वही

छोटा वर और जवान दुलहिन । किन्ती विडम्बना है इस गठबन्धन में । बेवारी दुलहिन इसीलिए निश्चय करती है कि मैं नेहर में ही अपना जवानी बिता दूंगी । मला, छोटा पति किस काम का । और जब बारात दरबाजे पर आती है तो दुलहिन के प्राण दुलहा को देखकर झूट जाते हैं । रसपूर्ण किन्तु मार्मिक भाषा में प्रेमघन ने आगे कहा है --

जाय बरात दुआरे लागी वाली चढ़ी अटारी रामा ।  
हरि हरि । देखि दुलहा सुलस मोरा परनवां है हरी॥<sup>१</sup>

दुलहिन इस स्थिति की तुलना कसाई के हाथ गाय बेचने से करती है । यदि इस तरह के असामान्य सम्बन्ध को रोका नहीं गया तो वह जहर साकर मर जायगी अथवा कहीं निकलजायगी --

बरु विष लाय मरब । सूतब हति कारी करव कोरवा<sup>२</sup> रामा  
हरि हरि निकरि जाब काहु के गोहनवा रे हरि । ।

इसी तरह का असामान्य विवाह बालाबुद्ध विवाह है, जिसमें बर-जस्सी वर्षों का है और कन्या बारह की --

जसी बरिस के भयः बुढ़ तू जेस ह्वार परपाजा रामा ।  
हरि हरि हम बारि है बरिस के जवही बाला रे हरि॥

+ + + +

हरि जब लगि चढ़े जवानी हम पर तब तक तूं मरिजाव्यह रामा ।  
हरि हरि तब ह्वार फिर कौन होय हवाला रे हरि ।।  
बुढ़े प्रेमी झुज प्रेमघन, की झुनि सीस बिबारी रामा ।  
हरि हरि तजौ बुढ़ाई में तौ नइबड़ फाला रे हरि ।।

बालकृष्ण मट्ट ने भी बाल्य विवाह की सभी दोषों की तान बताया है । और उसे त्यागने का आग्रह किया है --

१- प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ५४५, सं० १६६६ बि०

२- वही, पृ० ५४७

३- वही, पृ० ५४८

सकल दोष की तानि वीर्य दूरन दारिद करन  
जालस की जड़ तानि, त्यागहुं बाल्य विवाह को ।<sup>१</sup>

विधवा-विवाह<sup>२</sup>समर्थन में हिन्दी कवियों ने अपना स्वर ऊंचा किया ।  
उन्होंने विधवाओं की वंदना का उद्घोष कर इस ओर जन-जीवन को आकृष्ट किया  
और विधवा विवाह की प्रेरणा दी । इस दृष्टि से सामाजिक क्रान्ति को विचार-  
धारा हिन्दी कवियों के माध्यम से प्रकट हुई है --

हम विधवा दुस्तियारी सुनो कोउ टेर हमारी

+ + +

बाप तौ व्याह करी दस चाहो, ताहु पै हो व्यभिचारी  
करी अन्याय बाल विधवा पर, अपनी ही अरथ निहारी<sup>३</sup>  
वाह क्या नींद प्रचारी ॥

सबसे अधिक विरोध प्रष्टाचारियों का हुआ और उनके आचार-  
विचार पर चोट की गई । तान पान का निषेध न करने वाले तथा म्लेच्छों के  
जुठन प्रशंसापूर्वक ताने वालों के व्यवहार से डा. व्य. बालमुकुन्द गुप्त ने कहा --

मुाडी म्लेच्छन की हहा, तात सराहि सराहि  
और कहा चाहो सुन्यो त्राहि त्राहि प्रभु त्राहि ।।<sup>४</sup>

देश में कुछ लोग ऐसे भी थे जो देशोद्धार का स्वांग रक्ते थे । ऐसे  
लोगों पर भी गुप्त जी ने व्यंग्य किया --

सड़ा सड़ा जो मारे धार सीई कर देशोद्धार  
यह देशो कलहुन का सेल तानइ धिन्ना नगर के।<sup>५</sup>

१- हिन्दी प्रदीप, सं० बालकृष्ण मट्ट, पृ० १ दिसम्बर १८८०

२- वही, पृ० २८, अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर, १८२६

३- बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली, पृ० ५८३, सं० २००७

४- देशोद्धार की तान

शराबखोरी के विरोध में मारतैन्दु हरिश्चन्द्र ने एक मुकुरी कही है,  
और शराब पीने के दोषों का उल्लेख किया है --

मुंह जब लागे तब नहिं छूटे  
जाति मान धन सब कुछ लैटे ।  
पागल करि मोहि करे शराब  
क्यों सखि सज्जन नहिं शराब<sup>१</sup> ।

गोरी भेष रखने वाले और भारतीय संस्कृति छोड़कर विदेशी वेशभूषा  
अपनाने वालों, शराब पीने वालों को प्रेमघन ने लंगूर की संज्ञा दी है । 'गोरी  
गोरिया' शीर्षक कविता में उन्होंने ऐसे लोगों का पर्दाफाश किया है --

झूठे निवाले सांय पियाले मद के पियहों  
पिआए गोरी गरबा ।

लोक लाज कुल कानि धाम धन सब पुस्त हि सार नसाय गोरी गोरब  
की लंगूर बंदरिजा के संग,  
नाबहिं नाच रिफाय गोरी गोरवा<sup>२</sup> ।

बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बहु विवाह, व्यभिचार, अशिक्षा,  
रूढ़िप्रियता, कुम्भजुक्ता, विलायतीपन आदि के सण्ठन और विरोध के से भारतीय  
कवियों ने सामाजिक क्रान्ति की विचारधारा प्रस्तुत की और जीवन की नयी  
स्फूर्ति और शक्ति देने को चेष्टा की ।

धर्म

धार्मिक रूढ़ियों का सण्ठन भी इस काल में हुआ । बहुत जगहों में  
धार्मिक मतभेद और कट्टरता के कारण देश का पतन हुआ । कट्टरता और मतभेद

१- मारतैन्दु ग्रन्थावली, पृ० ८१२, सं० २०१०

२- प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ५४१, सं० १९६६ वि०

बाहरी होते हैं । ये धर्म के मूल तत्त्व नहीं होते, बल्कि आचार के बाह्य आधार होते हैं । हिन्दी कवि धार्मिक दौत्र में भी आन्ति चाहते थे, क्योंकि धर्म हमारे जीवन का एक अंग था ।

हिन्दी कवियों को धार्मिक कट्टरता पसन्द नहीं थी । वे विविध मत-मतान्तरों का उलफाव पसन्द नहीं करते थे । अनेक मतों की तथा ऊँच-नीच के आधार पर जाति-बिधान की निन्दा करते हुए मारतेन्दु ने लिखा था --

रचि बहु विधि के वाक्य पुरातन माहि छुलार ।

शैव शक्त वैष्णव अनेक मत प्रकट बलार ।

जाति अँकन करि ऊँच अरु नीच बनायो ।

सान-मान सम्बन्ध सबनि सों बरज छुड़ायो ॥

विभिन्न प्रकार के मत वाले को मारतेन्दु ने मतवाले कहा, क्योंकि ये अपने-अपने मत की बाझ्यता पर लड़ते थे और सब कमकर लड़ते थे । ऐसे साम्प्रदायिक लड़ाकों को मारतेन्दु ने मठियारे कहा --

मये सब मतवारै मतवारै ।

अपना अपनी मत लें लें सब

कगल ज्यों मठिहारै ।

कोउ कहु कहत तरहि कोउ डूजौ

संझा निज छठ बारै ॥

धार्मिक मतभेद की निन्दा करते हुए मारतेन्दु ने कहा --

नाहि ईश्वरता कटकी केद में ।

तुम तो कम बनादि जाँचर

सो कैस मतभेद में ।

१- मारतेन्दु नाटकावली, पृ० ६०४

२- मारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, पृ० १३६, सं० २०१०

३- वही, पृ० १३४



भारतेन्दु ने प्रचलित और परम्परित मान्यता का सण्डन उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से किया है। यह निश्चित रूप से धार्मिक क्रान्ति को विचारधारा है, जो भारतेन्दु युगीन कवियों के काव्य में प्रकट हुई।

प्रेमघन ने पुरोहितों के मिथ्याचार और उनकी मूर्खता का उपहास किया है। यक्षमान को मूढ़ने वाले पुरोहित की निन्दा कर उन्होंने उसे झूड़े केल को उपाधि भोजन के उपरान्त छकारने के सन्दर्भ में की है --

केवल उपरोहित नहीं साधे अरथ स्नान ।

स्नान-पान अरु दान भिसि मूढ़त सिर यक्षमान ॥

भोजन के छकारत बलें झूड़े केल स्नान ।

पाय दच्छिना टेट में लोंसत कवरत पान ॥<sup>१</sup>

राधाकृष्ण दास ने मृत प्रेत आदि के वितण्डावाद में उलझने के कारण अपने को 'वैशाखनन्दन' कहा है। धर्म होड़कर झूठा विश्वास करने वालों की वशा पर दुःख प्रकट करते हुए उन्होंने शंकर की तरह अवतरित होकर उपधर्मों के भ्रम को भिटाने का निवेदन करते हुए कहा है --

करुणामय शंकर स्वामो सन् पुनि झूतल वपु वारो ।

मेटि सकल उपधर्म भ्रमित विश्वासहिं बड़ सों वारो ॥<sup>२</sup>

भारतेन्दु युग के कवियों की दृष्टि सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति की दिशा में पुरातनवादी थी। पुरातनवादी का तात्पर्य कि वे धर्म का परिष्कार कर उसकी पुनर्स्थापना चाहते थे। और वही दिशा में उनकी धार्मिक विचारों की क्रान्ति प्रकट हुई है। वे हिन्दू धर्म को मर्यादा को भिटाना नहीं चाहते थे, बल्कि उसके निर्वाह की आकांक्षा रखते थे --

दिय से नाथ न बीसरे कन्हू राम को राज ।

हिन्दू धर्मै बूढ़ रहे, निरपदिन हिन्दू समाज ॥<sup>३</sup>

१-प्रेमघन सर्वस्व, पृ० १४२, सं० १६६६ वि०

२-राधाकृष्ण ग्रन्थावली, पृ० ६२, सं० १६३०

३-वीररामस्तोत्र--बाबुबुन्द मुख्त निबन्धावली, सं० २०००

हिन्दू कुल की मर्यादा मिटाने वालों पर चोट करते हुए उन्होंने लिखा --

हिन्दू कुल मरजाद आज हम सबहि डुबोई  
पेट भरन हित फिरै <sup>१</sup> कुरुर से दर दर ॥

जैसा ऊपर कहा गया है, इस काल के कुछ धार्मिक सुधारकों ने धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में विदेशियों का अनुकरण लिया। वे इस दिशा में जामुल परिवर्तन के आकांक्षी थे, किन्तु उनका यह दृष्टिकोण भारतीय नहीं था। इसलिए सनातनवादियों ने उनका विरोध किया। सनातनवादो धार्मिक दोषों को मिटाकर नवीन मूल्यों के आधार पर धर्म की स्थापना करना चाहते थे। तीसरी ओर कुछ कट्टर सन्तान् सनातनधर्मी भी थे जो धर्म और समाज के मूल्यों में कोई परिवर्तन व्यक्त सुधार पसन्द नहीं करते थे। भारतेन्दु और उनके सहयोगी कवियों की दृष्टि मध्यम-मार्गी थी। उनकी वैचारिक क्रान्ति सुधार की ओर धुकी हुई दीक्षती है। वे न तो विदेशोपन चाहते थे और न सामाजिक और धार्मिक कट्टरता। दोनों अतिवादों की निन्दा करते हुए भारतेन्दु ने लिखा --

भारत में रहि समय मरु है सब कुछ बिनहिं प्रमान ।

होय दुहरंगी ।

बाबे पुराने पुरानहि माने बाबे मरु क्रिस्तान

होय दुहरंगी ।

क्या तो गवहा को जना बढ़ावे कि होइ दयानन्द दोइ जाय

होय दुहरंगी ।

क्या तो पढ़े कैसी कोतवालहि कि तो बेरिस्टर बाई

होय दुहरंगी ।

रहि से भारत नास गया सब, जहां तहां यही हाल

होय दुहरंगी ॥ <sup>२</sup>

भारतेन्दु युगीन वैचारिक क्रान्ति द्वारा उग्रवादी नहीं थी।

राजनीति की तरह ही सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में भी वे सुधार चाहते थे।

और यही उनकी इस दिशा में वैचारिक क्रान्ति थी। उन्होंने न तो पुरातनवाद का

१- श्रीराम स्त्रीक- बालमुकुन्द मुष्ताफि-भाषणी, सं० २००७, पृ० ५२६

२- भारतेन्दु मुष्ताफि, भाग २, पृ० ३००-३०१, सं० २०१०

समर्थन किया और न सर्वथा नवीन का । उनकी विचारधारा में समन्वयवाद दिखाई पड़ता है ।

### द्विवेदी युग

\*\*\*\*\*

इस युग में भी अनेक प्रकार के सामाजिक और धार्मिक दोषों को ने भारत को ग्रस्त कर रखा था । आंतद्वशी कवियों को यह कब सह्य हो सकता था । इसलिए उन्होंने समाज में व्याप्त सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों के विरुद्ध क्रान्ति के गान गाए । देश की पराधीनता का एक कारण सामाजिक और धार्मिक दोषों में व्याप्त मुढ़ताएं भी रहती हैं । अतः जब परतंत्रता को दूर करने के प्रयत्न आरम्भ होते हैं । तब स्वभावतः सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों को भी दूर करने के प्रयत्न कर होते हैं । मोह, बालस्य, वृद्धिज्ञा आदि में जकड़ी जाति का उत्थान सम्भव नहीं । अतः इनको दूर करने के लिए क्रान्ति की आवश्यकता होती है । इसीलिए सामाजिक जन-जीवन की विकृतियां दूर करने के लिए तत्सम्बन्धी क्रान्तिपरक विचारधाराओं की अभिव्यक्ति हुई ।

### वर्तमान दशा

द्विवेदी-युगीन सामाजिक क्रान्ति को कार्य समाज और राष्ट्रीय कांग्रेस से प्रेरणा मिलती रही थी । इसे प्रभावित होकर हिन्दी कवियों ने भी सामाजिक क्रान्ति को स्वर दिया । ये स्वर दो स्तरों में अभिव्यक्त हुए हैं । पहला, व्यंग्य रूप में सामाजिक कुरीतियों की आलोचना और दूसरा, कुरीतियों का न्याय कहनामय स्थिति का विमर्श और उनको दूर कर, वांछी प्रवृत्ति को प्रेरणा ।

'हरिवीर', मेथिलीहरण मुक्त, नागुराम झाँ 'हंकर' रामचरित कथा आदि द्विवेदी युगीन कवियों के नाम कब भी नहीं मिले हैं ।

नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने आर्यसमाजी दृष्टि से प्रभावित होकर क्रांति-परक विचारधाराओं को अभिक्रान्ति की है। उन्होंने लोभ, लालच, धर्म, पासंड, कुजाकृत, व्यभिचार, अनमेल विवाह आदि सामाजिक दोषों पर तीखा व्यंग्य किया है। उनको दृष्टि में अविद्या, फूट तथा परतंत्रता में जकड़ा भारत एक ऐसा माट है, जिसका गठबंधन दरिद्रता की दुलहिन से हुआ है --

अंत लों स्वतन्त्रता की सरत न देख पावे,  
बेड़ी परतंत्रता की पैरों में पड़ो रहे।  
विद्या की सहेली सीधी सम्यता के मारे मान,  
साथ है अविद्या की असम्यता जड़ी रहे।  
भेद के भुंके उठे ब बैर की झुंके न जाग,  
आपस की फूट सदा सामने सड़ी रहे।  
संकट की घुलाधार दुलही दरिद्रता से  
जाल मट्ट भारत भित्तारी की लड़ी रहे।<sup>१</sup>

समाज में रिश्ततस्तौर, पुलिस, पटबारी, प्लीडर आदि मनमानी करते रहते थे। कवि शंकर का ध्यान इस ओर मो गया। उन पर मो करारा व्यंग्य करते हुए उन्होंने कहा --

मोज उड़ाते रिश्तत सौजा, उमंग प्लीडर माल कमावा।  
जल पुलिसमैन पटबारी, बिचरे बरुवा चक्र सुतारी ॥  
सब ने गेल गहो गुमराही ।

मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' में सामाजिक बशाओं का चित्रण किया है। समाज के अनेकानेक दोषों पर उनका ध्यान गया है और उसके यथार्थ चित्रण के माध्यम से उन्होंने क्रांति की वैचारिक चेतना उत्पन्न की है। इस सन्दर्भ में वह प्राचीन भारत को याद करते हैं और तब वर्तमान भारत से पूछते हैं कि तुम्हारी वह नी कहाँ चली गई? जब कल तो क्या कल भी नहीं रह गया।

---

१- शंकर सर्वस्व-- नाथूराम शंकर शर्मा, पृ० २२८, सं० २००८  
वही, पृ० २०४

केवल पंक ही पंक बन रहा है । जो भारत कभी राज राज कुबेर था, अब वह रंक का भी रंक हो गया है --

भारत कहीं तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो ।

हे पुण्यभूमि । कहाँ गई है वह तुम्हारी ओ कहीं ?

अब कमल क्या, जल तक नहीं, सर-मध्य केवल पंक है,

वह राज राज कुबेर अब हो । रंग का भी रंक है ।

स्माज की यह दयनीय दशा शिक्षा की दुर्व्यवस्था से उत्पन्न हुई है । अब शिक्षा संकीर्ण हो गई है । वह सर्वांगीण है । इसीलिए सब उसे ग्रहण करने में अक्षम हैं --

हा । आज शिक्षा-मार्ग भी संकीर्ण होकर क्लिष्ट है,

कुलपति-सहित उन गुरुकुलों का ध्यान ही अवशिष्ट है ।

बिकने लगी विद्या यहाँ अब, शक्ति हो तो ब्रय करो ,

यदि शुल्क वादि न दे सकी तो मूर्त रह कर ही मरो ।

'हरिवंश' ने भी तत्कालीन भारत के सामाजिक पतन का चित्रण यत्र-तत्र किया है । स्माज की दशा देखकर वे दग्ध हैं । मतलब की दुनिया का एक चित्र उन्होंने इस प्रकार चित्रित किया --

जाति के हित की सभी तानें सुनीं

देश - हित के भी लिए सब राग सुन

लोक-हित की गिटिकरी कानों पड़ी

पर हमें सब में मिला मतलब की दुन ।

इस प्रकार द्विवेदी-युगीन कवियों ने स्माज की दयनीय दशा का चित्रण कर प्रबुद्ध जन-मानस में क्रान्ति की विचारधाराओं का उन्मेष किया ।

१- भारत-भारती -- मेथिलीहरण गुप्त, पृ० ८५, सं० १२८२

२- वही, पृ० १२६

## नारी

समाज की दयनीय दशा का एक कारण स्त्री-जाति की हीन दशा भी है। तत्कालीन समाज में नारी जाति की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। मारतेंदु युग से ही इस ओर लोगों का ध्यान जाने लगा था। नारी-उत्थान के लिए कवि-गण क्रान्ति के गीत गा रहे थे। इस युग में भी दशा में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। इसीलिए द्वितीय युगीन कवि भी नारी-जाति के उद्धार के लिए क्रान्ति के गान गाते रहे। नारी-जाति की दुर्दशा के कई-कई कारण थे। बाल-विवाह, ब्रूढ़ विवाह, जन्मेल विवाह, दहेज प्रथा, परदा, जादि मुख्य कारण थे। जतः इन्हीं दोषों के वर्णन द्वारा हिन्दी कवियों ने नारी उत्थान के लिए अपनी क्रान्तिकारी विचारधाराएं भी प्रकट की हैं।

पाण्डेय लोचन प्रसाद ज्ञानां नारी जाति की करुण दशा से इतने दुःख हैं कि वे नहीं चाहते कि अब भारत में कन्याओं का जन्म हो। कन्या जन्म से माता-पिता भी विविध दुःख पाते हैं। इसलिए वे विधाता से प्रार्थना करते हैं कि अब भारत में कन्याओं का जन्म हो न हो :-

कन्या हिते सहते विविध दुःख पितु माता ।

दे कन्या जन्म न भारत में तु बाता ।

श्यामबिहारी मिश्र, शुक्लदेव बिहारी मिश्र ने भी 'भारत विनय' में भारत के मुँह से कहवाया है कि जब तक मेरी दुखिताएं पुरुषों को तरह शिक्षा नहीं पायेंगी, मेरी उन्नति असम्भव है :-

जब तक बिना पुरुषों सरिस पावेंगी दुखिता न मन ।

तब तक मेरी उन्नति अल्प है अकास के कुसुम सम ॥

बाग़े व परदा-प्रथा की निन्दा करते हुए कहते हैं कि स्त्री-जाति की यह दशा इसी प्रथा के कारण है। यदि परदा उठ जाता तो बाग़ स्त्री-जाति की यह दशा एक दिन भी नहीं रहती :-

१- पद्य पुष्पांजलि -- पाण्डेय लोचन प्रसाद ज्ञानां, पृ० १०५, सं० १६७२ वि०

२- भारत विनय -- श्यामबिहारी मिश्र, शुक्लदेव बिहारी मिश्र, पृ० ५५, सं० १६९६



उठ जाती परदे की दुसद निंच चाल भी आज दिन ।  
तो प्रमदा गन को दुर्वसा सेष न रहता एक दिन ॥<sup>१</sup>

नारी जाति की इस पतितावस्था का एक कारण समाज में प्रचलित विवाह-परम्परा थी । बाल-विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह आदि के कारण स्त्रियों की ओर भी दयनीय दशा थी । इसीलिए इन कवियों का ध्यान इस दुसद स्थिति को ओर भी गया और तत् सम्बन्धी अपने क्रान्तिकारी विचारों के द्वारा उन्होंने जन-जोवन को सचेत करने का प्रयत्न किया ।

पाण्डेय लोचन प्रसाद शर्मा ने जब पतन के कारणों को बताते हुए कहा कि बाल-विवाह के कारण ही लोगों का राज्य रहता है । इसने सारे जाय गव को तोड़ कर गुणों को सा डाला है :--

कैसे निःसत्त्वकारी प्रचलित हममें, बाल-व्याह प्रथा है ।  
हा ! हा ! सर्वस्व हारी प्रतिफल, जिसको देत होती व्यथा है  
क्षीणायु प्राण रंक व्यथित कर हमें रोग से फांस सर्व  
लाया सारे गुणों को गिन-गिन इसने तोड़ के जाय गव ?

बाल विवाह और ठहराती से उत्पन्न दोषों को बताते हुए श्याम बिहारी मिश्र, कुन्दन बिहारी मिश्र ने कहा कि बाल विवाह के कारण ही स्त्रियाँ बेधव्य का दुत सकती हैं । पर किसी को इसकी चिन्ता नहीं :--

~~यदप्रि होय दुर्वसा तरुनि बिवा की मारी ।~~

नहिं बिवा ह के काल जाय वह कमी बिहारी ॥

बाल बंस में ही विवाह तनया का करते ।

बिवा होने का न परा चित में डर करते ॥<sup>२</sup>

\* भारत भारती में मैथिलीशरण गुप्त ने भी बाल विवाह पर कठिणत शीघ्र प्रकट किया है । बाल्य-वृद्ध विवाह के कारण ही प्रति वर्ष विवाहों की संख्या बढ़ती जा रही है । उनकी रुचन से इतना दाह उत्पन्न है कि बाकायद

१-भारत विनय— श्यामबिहारी मिश्र, कुन्दनबिहारी मिश्र, पृ० १६, १६१६

२-पद्म पुष्पांशु—पाण्डेय लोचनप्रसाद शर्मा, पृ० १६, १६७२

३- भारत विनय — श्यामबिहारी मिश्र, कुन्दन बिहारी मिश्र, पृ० १६, १६१६

रोता है, पृथ्वी फट पड़ती है । ऐसा दग्धकारी दाह सहा नहीं जाता । फिर भी हम बाल और वृद्ध विवाह को नहीं छोड़ते :--

प्रतिवर्ग विधवावृन्द की संख्या निरन्तर बढ़ रही,  
रोता कभी आकाश फटती कभी हिलकर महो ।  
हा । देख सकता कौन ऐसे दग्धकारी दाह को ?  
फिर भी नहीं हम छोड़ते हैं बाल्य-वृद्ध विवाह को<sup>१</sup> ।

तत्कालीन समाज में विधवाओं की दशा अत्यन्त दयनीय थी । इसलिए उनका पुनर्विवाह ही यह प्रबुद्ध व्यक्ति चाहते थे । यह विचार तत्कालीन समाज के सन्दर्भ में अत्यन्त क्रान्तिकारी था । हिन्दो-कवियों ने भी इस संबंध में अपने क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत किए । मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दू-विधवा को पवित्रता की करुण मूर्ति की संज्ञा दी । ऐसी करुण मूर्ति का शील यदि तल छल-बल से दृष्ट मंग कर देते हैं तो इसमें मरने की क्या बात है ? फिर इसका दायित्व तो उन्हीं लोगों पर है जो बुढ़ स्क के बाद स्क, अनेक व्याह कर डालते हैं । पर विधवाओं क्या वाह भी नहीं मर सकतीं :--

हिन्दू विधवा की शुचि मूर्ति,  
पवित्रता की सकरुण मूर्ति ।  
कर में तल छल-बल से मंग,  
तो मरने का कौन प्रसंग ?  
किस पर है इसका दायित्व ?  
यही तुम्हारा है न्यायित्व  
कि तुम करो व्याहों पर व्याह,  
पर विधवाएं मरे न वाह ।

कठिनप्रसाद जी खैर ने कहा कि यदि वृद्ध-विवाह नहीं रोका गया तो ऐसे पाप की कभी भी ईश्वर तक दामा नहीं करेगा । उस देश के वासी कभी भी बुद्ध

१- भारत मातल- मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १४०, सं० २००६

२- हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ११०, सं० १६५४

की नींद नहीं सो सकेंगे :--

न रोकी जायगी धारा, अगर झूठे विवाहों की ।  
 न ईश्वर भी क्षमा देगा, उन्हें ऐसे गुनाहों की ।  
 कभी उस देश के वासी, न सुख की नींद सोवेंगे ।  
 खुली हैं खिड़कियां जिसें, मयंकर पाप राहों की ।<sup>१</sup>

इस प्रकार ध्वेदी-युगीन कवियों ने नारी-जाति के उत्थान के लिए बाल-विवाह, वृद्ध विवाह का विरोध किया, साथ ही विधवा-विवाह का समर्थन भी किया । अपनी ऐसी क्रान्तिपरक विचारधाराओं के माध्यम से हिन्दी-कवियों ने समाज के दोषों को दूर करने में एक हद तक अत्यन्त क्रान्तिकारी सहयोग दिया ।

### जाति-पांति

तत्कालीन समाज जाति-पांति और कुआळत से भी बुरी तरह ग्रस्त था । इससे समाज का एक अंग ही विकृत बना हुआ था । सामाजिक उन्नयन के लिए उनका उद्धार भी आवश्यक था और इसके लिए क्रान्ति की आवश्यकता थी । प्रबुद्ध हिन्दी-कवियों ने भी परिवर्तन की इस आवश्यकता का अनुभव किया और तब क्रान्ति-परक विचारों का प्रतिपादन अपने काव्य में किया ।

मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' में, 'हिन्दू' में अङ्गुली की दयनीय दशा और फिर उनके उद्धार की कामना व्यक्त की है । 'जाति बहिष्कार' की अपेक्षा भी उन्हें है । उनका कहना है कि सभी जातियाँ एक ही परमपिता की सन्तान हैं । अतः सबको एक समझना चाहिए । सभी से श्रेष्ठमनुष्यत्व है । अतः गुण और कर्मों के आधार पर ही जाति माननी चाहिए, जन्म से नहीं ।

विजातीय भी विज्ञ वदान्य  
 समकौ सजातीय सम मान्य ।  
 हिन्दू मुसलमान ख्रिस्तान  
 परम पिता की सब सन्तान ।

समी बन्धु हैं लघु या ज्येष्ठ,  
मते से मनुष्यत्व है श्रेष्ठ ।  
लिखी नहीं माथे पर जाति  
गुण-कर्मों से उसको ज्ञाति ।<sup>१</sup>

आगे वे हिन्दुओं को उद्बोधन करते हैं कि संकीर्णता छोड़कर उन्हें  
उदार होना चाहिए । अन्यथा वे स्वयं ही जर्जर-जीर्ण रहेंगे । अछूत समाज के सपूत  
हैं । सब को पवित्र करते हैं । तब वे स्वयं ही क्यों अछूत हैं ?

रहो न हे हिन्दु, संकीर्ण,  
न हो स्वयं ही जर्जर-जीर्ण ।  
बड़ो, कड़ावो अपनी बांह,  
करो अछूत जनों पर बांह ।  
हैं समाज के वही सपूत  
रखते हैं जो सब को पूत ।  
क्यों अछूत जन दूर अछूत ?  
उनकी लगी हमारी छूत ।<sup>२</sup>

इस प्रकार वे भारतीय जन-मानस को जाति-पाति-विरोध के लिए  
क्रान्ति-सम्बन्धी प्रेरक विचारधाराओं से अभिभूत करते रहे । श्यामबिहारी मिश्र,  
दुर्गादेवबिहारी मिश्र ने भी इस सम्बन्ध में अपने क्रान्तिकारी विचार प्रकट किए हैं ।  
भारतमाता कहती हैं कि क्या ठोम, कमार, बादि मेरे पुत्र नहीं ? मैंने क्या सिर्फ  
ब्राह्मणों को ही बसेरा दिया है ? मेरे ही वन्न जल से क्या कमार बादि अछूत  
जातियां नहीं चलतीं ? तब यह दुराव कैसा ?

क्या है कमार या ठोम नहीं सुत मेरा ?  
क्या ब्राह्मण ही को मैंने दिया बसेरा ?  
क्या वन्न वायु जल से कमार की काया ।  
नहिं पाठी मैंने यवा देह डूजराया ?<sup>३</sup>

१- हिन्दु-- मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १६३-१६४, सं० १६८४

२- वही, पृ० १६४-१६५

३- भारत माता-- श्यामबिहारी मिश्र, दुर्गादेवबिहारी मिश्र, पृ० १५ १६१५ ई०

गिरिधर शर्मा ने शूद्रों को गंगा के सदृश पवित्र कहा । और उन्हें बाहृत किया कि तुम किसी से पीछे क्यों पड़ हो, अपना कर्तव्य पालन करो :

उत्पत्ति शूद्रों । प्रभु के पदों से

पवित्र गंगा - सम है तुम्हारी,

कर्तव्य पालो अपना, लड़ हो,

पीछे किसी से तुम क्यों पड़ हो ?

इस प्रकार द्विवेदी-युगोन कवियों ने जाति-पाति और कुवाहृत के सम्बन्ध में भी अपनी क्रांति-परक विचारधाराएं व्यक्त कीं । समाज को उद्वेलित किया और जातीय-उत्थान को प्रेरणा दी ।

धर्म

उस समय समाज में अनेक धार्मिक रुढ़ियां भी एकत्र हो गई थीं । प्रबुद्ध व्यक्ति देख रहे थे कि इनके कारण समाज कितनी हानियां उठा रहा है । धर्म के नाम पर पालण्ड, कर्मकाण्ड, आदि का बोलबाला था । अतः इनके विरोध में भी कवियों ने क्रांतिकारी विचारधाराएं अभिव्यक्त कीं । धार्मिक अन्धानुकरण के विरोध के लिए उन्होंने व्यंग्य का सहारा भी लिया । कवि शंकर ने देवों का आलस्य और पृथ्वी के जनदेवता की दयनीय स्थिति को विषमता को देखकर कहा --

महीनों पड़ देव सोते रहें ?

महीदेव हूँ बुबोते रहें ।

मैथिलीहरण गुप्त ने भी धार्मिक विषमताओं को मोषणताओं का अनुभव किया और उनके दूर होने की कामना की । 'मन्दिर और महन्त' में इनमें व्याप्त दोषों की कर्वां दे करते हैं । वे देखते हैं कि जो मन्दिर कभी पुण्य का मण्डार था, आज वही पाप की राशि बन गयी है । वहाँ के देवता आज महन्तमण ही हो रहे हैं और देवियां दासी हैं । ऐसी जगह जाकर हो मत बन

तन,मन तथा धन अर्पण किया करते हैं :--

हा । पुण्य के भाण्डार में हैं मर रही अब राशियां

हैं देव आप महन्त जी हो, देवियां हैं दासियां ।

तन,मन तथा धन मक्त जन अर्पण किया करते जहां--<sup>१</sup>

धे मण्ड साधु सु-कर्म का तर्पण किया करते वहां ।

गुप्त जी ने धार्मिक विकृतियों का चित्रण और भी किया है :--

अब मन्दिरों में रामजनियों के बिना चलता नहीं

अश्लील गीतों के बिना वह भक्ति फल फलता नहीं ।

ब्राह्मण जी इस युग में धर्म के ठीकदार को हुए थे, वे भी होन-दीन हो गए हैं । वे आज जड़ता पर मुग्ध हैं । कतः कवि का कहना है कि जो एक समय के पीर थे, आज वही मिश्री, बाबर्ची, सर हो गए हैं --

उन अजन्मा ब्राह्मणों की हीनता तो देख लो

सु-देव थे जो आज उनकी दीनता तो देख लो ।

धे ब्रह्म-मूर्ति यथार्थ लो अब मुग्ध जड़ता पर हुए ,<sup>२</sup>

जो पीर थे देखो, वही मिश्री, बाबर्ची सर हुए ।

इसी तरह अन्य कवियों ने भी धार्मिक रुढ़ियों के विरुद्ध जेहाद किया । मई, १९०८ ई० को सरस्वती में 'पंच पुकार' नामक व्यंग्य कविता<sup>३</sup> में कवि ने धर्म-जाल पर चुमता हुआ व्यंग्य किया --

वैतरणी का ढेका लूंगा देकर दाढ़ी मुँह

घर घर वाटर वाइसकिल पर बिना गाय की पूँछ

मरों को पार उताऊंगा । किसी से कमी न हाऊंगा ।

धर्मों के अपार्यव्य के सम्बन्ध में श्यामबिहारी मिश्र, हुकूमत बिहारी मिश्र ने भारतामाता के माध्यम से कहा कि मेरे लिए सभी गुरु एक स्मान हैं ।

१- भारत भारती-- मेथिलीशरण गुप्त, पृ० १२८, सं० १६८३

२- वही



न कोई तिल मर घट कर है , न बढ़कर है :--

मैंने सब गुरुओं को समान हो माना ।

तिल मर न किसी को घट बढ़ कमो बताना<sup>१</sup> ॥

इस प्रकार द्विवेदी-युगीन कवि समाज के साथ ही साथ धार्मिक रुढ़ियों पर भी आघात करते रहे । पर धर्म भी समाज का एक अंग है । धार्मिक प्रथाओं के कारण समाज में भी अनेक प्रकार के दोष आ जाते हैं । अतः तत्कालीन कवियों ने धर्म की आलोचना तो की हो, पर समाज को उससे ज्यादा । कारण, सामाजिक दोषों के अन्तर्गत ही धर्म में व्याप्त रुढ़ियों का विरोध भी समाहित हो जाता है । जैसे जाति-पांति, ब्रह्माकुल आदि कुरीतियों की व्याप्ति धार्मिक रुढ़ियों के कारण ही रहती है । इन कुरीतियों की जड़ पहले ही सामाजिक दोषों के सन्दर्भ में ही जुड़ी है । तात्पर्य यह कि द्विवेदी युगीन कवियों ने धार्मिक रुढ़ियों, पातण्डलाओं और विकृतियों के विरोध में आन्ति-मूर्ख विचारों की अभिव्यक्ति की और जन-मानस को उद्बुद्ध किया ।

#### हायावाद युग

हायावाद युग में भी कवियों ने सामाजिक और धार्मिक विकृतियों के विरोध में आन्तिमूर्ख विचारों की अभिव्यक्ति की । ब्रह्मवृत्तियों को त्याग कर नवीन युगानुसूल सामाजिक मूल्यों की स्थापना पर जोर दिया । और कहने को आवश्यकता नहीं कि प्रचलित परम्परा को मिटाकर नवीन को अपना आन्तिम है । इस युग में वैज्ञानिक यथार्थवाद का आलोक फैला और पुरानी मान्यताओं का संछेन हुआ । पर उस समय राष्ट्रीय भावना अत्यन्त तीव्र थी । अतः<sup>समूह</sup> परिवर्तन पर बहुत अधिक बल नहीं । फिर भी, ब्रह्मा और रुढ़ियों के त्याग पर बल रहा ।

### वर्तमान दशा

पूर्व-युग की भांति इस युग में भी अंग्रेजियत के मत्त, अंग्रेजों के मूल गुणों को नहीं पहचान कर, नकलची बन बैठे। ऐसे व्यक्तियों से समाज सस्ते स्तर की ओर उन्मुख होता है। उसके सुदृढ़ संस्कार हिलने लगते हैं और वह क्षिन्न होने लगता है। अतः श्री रामचरित उपाध्याय व्यंग्य द्वारा उन्हें चेतावनी देते हैं :—

हैट पेंट के हांकर मत्त  
फाड़ी धोती कर दें त्यक्त  
चन्दन न दें मलें बस सौप ।  
तब भारत का हो दुस लोप<sup>१</sup> ।

समाज बाह्य प्रदर्शन की ओर अग्रसर था। इसलिए वह सादगी को त्यागकर फैशन की ओर आकृष्ट था। इससे समाज अन्दर क से लोखला हो रहा था। सामाजिक उन्नयन के लिए इसमें भी परिवर्तन आवश्यक था। अतः 'फैशन' के विरुद्ध सादगी का गान रामचरित उपाध्याय करते हैं :—

पर सादगी को छोड़ हम जब फैशनेबुल हो गये  
धन-धान्य हम से लो गये, अविवेक-निशि हम सो गये<sup>२</sup> ।  
विदेशी शिक्का का विरोध भी कवियों ने किया --  
लैत रही विदेशी शिक्का ।  
करते नौकरी, मांगो मिक्का<sup>३</sup> ।

नाथूराम शंकर शर्मा ने भी अपनी संस्कृति का त्याग करने वालों पर करारा व्यंग्य किया है --

देश-देश-भाषा तजी, कुल की चाल बिसार,<sup>४</sup>  
मौजी बिस्तर हो गये, बब बिलायती वार ।

- १- बेड़ा पार -- रामचरित उपाध्याय, सरस्वती, दिसम्बर १९२६, पृ० ४४८  
२- फैशन को फांसी -- ,, ,, फरवरी १९२२, पृ० १५०  
३- बेड़ा पार -- ,, ,, दिसम्बर १९२६, पृ० ४४६  
४- बिस्तर -- नाथूराम शंकर शर्मा, नाथुरी, नवम्बर १९२८, पृ० ४५२

इस प्रकार तत्कालीन कवियों ने एक और समाज के नकलियों पर करारा व्यंग्य किया । विदेशी वेश-भूषण का विरोध कर इस दौर में परिवर्तन चाहा । पर दूसरी और वैयक्तिक स्वच्छन्दतावाद से अभिप्रेरित ह्यायावादों कवियों ने प्रचलित रुढ़ियों का भी सण्डन किया और नवीन को अपनाने का आग्रह किया ।

सुमित्रानन्दन मन्त ने जन-जीवन का उद्बोधन करते हुए जोर्ण विश्वासों संस्कारों, रुढ़ियों, रीतियों को दूर करने को कहा । उनकी आकांक्षा है कि जाति वर्ण, श्रेणि, वर्ग से मुक्त एक विश्व सम्यक्ता का शिलान्यास हो --

सौलो जीर्ण विश्वासों, संस्कारों के शीर्ण वसन,  
रुढ़ियों, रीतियों, आचारों के अवगुंठन,  
हिन करो पुराचीन संस्कृतियों के जड़ बंधन--  
जाति वर्ण, श्रेणि वर्ग से न्वमुक्त जन नूतन  
विश्व सम्यक्ता का शिलान्यास करें मव शोभन  
देश राष्ट्र मुक्त धरणि पुण्य तीर्थ हो पावन<sup>१</sup> ।

इसी प्रकार 'ग्राम देवता' में भी वे प्राचीन रीतियों-नीतियों को मृत बताते हैं --

उच्छिष्ट युगों का बाज स्नातनवत् प्रचलित  
कन गई चिरंतन रीति नीतियां, स्थितियां मृत ।  
गत संस्कृतियां थीं विकसित की व्यक्ति आश्रित,<sup>२</sup>  
तब वर्ग व्यक्ति गुण, जन समूह गुण अब विकसित ।

इस प्रकार इस युग में प्राचीन रुढ़ियों का सण्डन कर नवीन मूल्यों को अपनाने के लिए क्रांतिकारी विचारों को अभिव्यक्ति हिन्दी कवियों ने की ।

### नारी

सामाजिक संस्कारों के परिवर्तन के सम्बन्ध में नारी-जाति पर इस युग में भी कवियों ने विशेष ध्यान दिया । स्त्राव का बाधा जंग यदि

१- उद्बोधन-- सुमित्रानन्दन मन्त, ग्राम्या, पृ० ६६ सं० २००८ वि०

२- ग्राम देवता-- वही, पृ० ५६

विकृत रहेगा, धंधन ग्रस्त रहेगा तो कदापि समाज की उन्नति सम्भव नहीं । इसलिये कवियों ने उसके मुक्ति को कामना की ।

सुमित्रानन्दन पन्त ने उसे पूर्ण स्वाधीन करने की उद्घोषणा की --

योनि नहीं है न नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित  
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित ।  
द्वन्द्व दूषित मानव समाज पशु जग से भी है गर्हित,  
नर नारी के सहज स्नेह से सूक्ष्म वृत्ति हों विकसित ।<sup>१</sup>

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी विधवा को सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित किया । भारत की विधवा पूजा से पवित्र, दीप-शिक्षा हो शान्त, करुण दीन है --

वह दृष्ट देव के मन्दिर की पूजा-सी  
वह दीप-शिक्षा से शान्त, माव में लीन,  
वह दूर काल-ताण्डव की स्मृति देला-सी,  
वह फूटे तरु की छूटी छता-सी दीन-  
पलित भारत की ही विधवा है ।<sup>२</sup>

वेदव्य उत्पीड़न का चित्रण करते हुए बलभद्रप्रसाद गुप्त 'रसिक' ने एक विधवा की दशा के माध्यम से सहृदयों का ध्यान इस ओर सोंचा और इस क्रान्ति-परक विचारधारा को प्रतिपादित किया कि यदि पत्नी के मृत्यु के बाद पति विवाह के अधिकारी हैं तो पति के स्वर्णारोहण पर नारी क्यों दुःख सहती रहे ? --

मुझ देह सधवावीं को है जाने क्यों फटती छाती ?  
जाती हूँ जिस ओर उधर से ही हूँ दुत्कारी जाती ।  
हाय कुटुम्बी भी मुझको अपमान बिह्वन बलाते हैं ।  
बहन बचुब को दारुण शर मे मुझ पर नित बरसाते हैं ।

+

+

+

१- ब्राम्ह्या-- सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० ८४, सं० २००८ वि०

२- विधवा-- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', परिमल, पृ० १२६, सं० २००० वि०

पत्नी के मरने पर यदि, तति हैं विवाह के अधिकारी ।

तो पति स्वर्गारोहण पर क्यों रहें दुस सहती नारी ?

वे भी पुनः व्याह करने का स्वत्व नहीं क्यों पातो हैं ?

क्यों जीवन भर वे जग-सुख से वंचित रहो जातो हैं ?

द्विवेदी-युग तक नारी के आदर्शरूप का वर्णन ही अधिक होता आया था । लोग उसे देवित्व का गौरव प्रदान करते को उत्पुङ्ग थे । उनमें इतना साहस नहीं हो सका था कि उसे 'सखी' का पद भी दे सकें । पर छायावादी कवि स्वच्छन्दता के पक्षपाती थे । अतः उनमें यह साहस भी था कि वे अपने वैयक्तिक आन्तरिक विचारों की अभिव्यक्ति निवारणरूप में कर सकें । इसलिए छायावादी कवियों ने नारी को 'सखी' रूप में भी अपनाना चाहा । तत्कालीन वातावरण में यह अभिव्यक्ति तोड़ी क्रान्तिकारी मानी जाएगी । श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने स्पष्ट कहा कि नारी को मुक्त करो, जो जननि, सखी और प्रिया है --

मुक्त करो नारी को मानव

चिर बंदिनि नारी को,

युग युग की बर्बर कारा से,

जननि, सखी, प्यारी को ।

इस प्रकार छायावादी कवियों ने नारी-जाति की मुक्ति के माध्यम से सामाजिक उत्थान के लिए क्रान्तिकारी कदम उठाया ।

### जाति पांति

सामाजिक क्रान्ति के सन्दर्भ में इस युग में जाति-पांति और बहुतीक्ष्ण सम्बन्धी विचारधारारों भी अभिव्यक्त हुई । आर्य समाज की तथा गांधी जी की

१- वैषम्य-- उत्पीड़िता-- कलमप्रवाद गुप्त, 'ऐसिक', वांघ, अगस्त १९२६, पृ० ३४४-४५

२- नारी -- सुमित्रानन्दन पंत, युगपथ, पृ० ४६, सं० २००६ वि०

प्रेरणा के परिणामस्वरूप इस युग में अछूतों में अमृतपूर्व जागरण हुआ । वे अमिजात्यवर्ग से अलग अपने अस्तित्व की कामना करने लगे । पर ऐसी भावना राष्ट्रीय एकता के लिए घातक थी, जो उस युग के लिए आवश्यक थी । अतः हिन्दू जाति को एकता को सुदृढ़ बनाने के विचार से भी कवियों ने अछूतोंद्वारा बाधा --

समझ अछूतों को अछूतों के समान रहे,  
आपके ललाट पे कलंक हो का टीका है<sup>१</sup> ।

‘हरिऔध’ जी ने भी हिन्दुओं के माथे पर इस कुआकृत को कट कलंक का टीका बताया --

हाथ रहे उर में अग्नि के अछूते माघ,  
कत अपुत ना अछूत जन हूँ ते ।

शोमाराम धेनु सेवक भी हिन्दुओं को समझ रहेते वेत जाने को कहते हुए अछूतों को अपना बनाने को कहते हैं --

समय है हिन्दुओं अब मो  
तुम्हारे वेत जाने का ।  
हृदय विस्तीर्ण कर--  
संकीर्णता को अब नशाने का ।  
अछूतों को उठाकर प्रेम--  
से अपना बनाने का ।  
अछूतों को उठाने के लिए<sup>३</sup>  
तय्यार हो जाओ ।

---

१- अछूत-- अनुपसर्ग, नांद, मई, १९२७ ई०, पृ० ३७

२- अछूत --‘हरिऔध’ ,, ,, ,, पृ० ६६

३- अछूत -- आवेदन- शोमाराम धेनु सेवक, नांद, मई १९२७, पृ० १३



१९२३ ई० में ही माधुरी के संपादक ने भी अछूतों को अपनाने को कहा । उन्होंने अछूतों को समाज का एक अंग बताते हुए, उसे अपना बना लेने को कहा । साथ ही यह भी कहा यदि उन्हें अपना नहीं बनाया गया, तो जाति संड-संड हो मृत्यु-रुस्त हो जासी --

अपना ही अंग हैं ये अंत्यज असंख्य, उन्हें  
गले न लगाया तो अवश्य पकताओगे ।  
ममता के मंत्र से विषमना का विष जो  
उतारा नहीं, जाति कैतौ जीवित न पाओगे ।  
पदाघात पीड़ित समाज जो रहेगा पंगु,  
उन्नति की दौड़ में कहां से जीत जाओगे ।  
साधना स्वराज की सफल कभी होगी नहीं,  
अगर अछूतों को न आप अपनाओगे ।<sup>१</sup>

फंत में जाति-पांत की कड़ियां टूटने की कामना व्यक्त करते हुए

कहा --

जाति-पांत को कड़ियां टूटें,  
मोह डोह मद मत्सर छूटें ,  
जीवन के नव निर्मेर फूटें,  
वैभव को, पराभव<sup>२</sup>  
युग प्रभात हो अभिनव ।

इस प्रकार अछूतों को अपनाने की कान्तिकारी प्रेरणा देते हुए  
हायावादी कवियों ने समाज और राष्ट्र में प्रचलित सामाजिक परम्पराओं का  
विरोध किया ।

वर्ग  
---

पार्ष्विक रुढ़ियों के विरोध में भी, कवियों ने क्रांतिपरक विचारों को  
अभिव्यक्त किया । ई समाज की तरह वर्ग भी रुढ़िग्रस्त हो गया था । अतः उन्हें

क्रान्तिकारी परिवर्तन की उपेक्षा थी ।

सुमित्रानन्दन पंत ने ईश्वर का 'अबह-आवाहन' किया, क्योंकि संसार फिर धर्म ग्लानि से पीड़ित हो रहा था --

जात्री है, पावन हो भुतल ।

फिर धर्म ग्लानि से पीड़ित जग,

फिर नग्न वासना उच्छ्वल,

जन परित्राण करने उतरो

हे राम, परम निर्मल के कल ।<sup>१</sup>

धार्मिक मत-वैमिश्र्य को धुलकर मानव-धर्म अपनाने का सलाह भी पंत जी ने दी । मनुष्यत्व या मानव-धर्म सबसे महान् है । अतः धर्म के नाम पर रक्त बहाना अत्यन्त निन्द्य है । इससे अच्छा तो यही है कि हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई कहलाना छोड़कर सिर्फ मानव बनकर रहें --

होड़ नहीं सकते रे यदि जन

जाति वर्ग और धर्म के लिए रक्त बहाना,

बर्बरता को संस्कृति का बाना पहनाना--

तो अच्छा हो होड़ दें अगर

हम हिन्दू मुस्लिम और ईसाई कहलाना ।

मानव होकर रहें धरा पर,

जाति वर्ग धर्मों से ऊपर,

व्यापक मनुष्यत्व में बंधकर ।<sup>२</sup>

इस प्रकार इस युग में धार्मिक रुढ़ियों और मान्यताओं को दूर करने के लिए विचार प्रकट किए गए । पर धार्मिक सुधार की चर्चा, इस काल में उतनी नहीं मिलती । कारण, इस युग में हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य तथा हिन्दुओं की उपजातियों

१- आवाहन- सुमित्रानन्दन पंत, अनुपम, पृ० १२८, २००६ वि०

२- मनुष्यत्व- सुमित्रानन्दन पंत, स्वर्णश्रुति, पृ० ३१, २००४ वि०

में ऐक्य आदि पर राष्ट्रीय-हित के लिए बहुत अधिक ध्यान दिया जा रहा था ।  
 अतः यदि धार्मिक चर्चा बहुत होती तो उससे मानसिक पार्थक्य की जाशंका रहती ।  
 स्कन्ता को स्थापना के लिए बांझित था कि धार्मिकता पर कल न दिया जाय ।  
 युग की इस आवश्यकता से कवि परिचित थे । अतः धार्मिक सुधारों को विशेष  
 चर्चा उन्होंने नहीं की । स्काय अपवाद अवश्य हैं । जैसे श्यामनारायण पाण्डेय ने  
 हल्दी घाटा में साम्प्रदायिकता पर जोर दिया । पर ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं ।

### प्रगतिवाद-युग ~~~~~

था तो उपदेश द्वारा क्रान्ति उत्पन्न करने की भावना हायावाद युग  
 से ही समाप्त हो चली थी, पर इस युग तक यह प्रवृत्ति विराम पर जा गई ।  
 सामाजिक उत्थान के लिए उपदेशात्मक प्रवृत्ति नहीं रह गई थी । इस प्रवृत्ति के  
 मुख्यतः दो कारण थे । एक तो इस समय विदेशी परतंत्रता से मुक्ति पाना ही  
 प्रधान लक्ष्य था । दूसरे, शोषण से मानव की मुक्ति । इसके लिए साम्यवाद के  
 गुण गाए जाते थे, क्योंकि मानव-साम्य के आधार पर ही यह वाद स्थापित हुआ  
 था । वैसे, इसका दृष्टिकोण आर्थिक था । इसकी चर्चा आर्थिक विचारधाराओं के  
 अन्तर्गत हो चुकी है ।

पर सामाजिक परिवर्तन हेतु उपदेशात्मक शैली में मंल ही नहीं के  
 बराबर कहा गया ही, लेकिन सामाजिक क्षेत्र में नये मूल्य स्थापित हुए । जातीयता  
 का विरोध इस युग में भी हुआ । पर इसपर पहले ही उतना कहा जा चुका था कि  
 और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं थी । वैसे मानव-साम्य, विश्वबन्धुत्व, कुछ  
 अनित विमोचिका आदि के रूप जातीयता का विरोध व्यापक माने पर हुआ ।  
 पर यह कोई नवीन बात नहीं थी ।

### जाति-पांति

इस युग की सामाजिकता की चर्चा में एक विशेषता यह रही कि जातीय ऐक्य आदि की स्थापना पर भी बल, आर्थिक बाधा पर दिया गया । शिवमंगल सिंह पुनन के अनुसार जातिधर्म का भेद, मुस की डोर से बंधा हुआ है --

जाति धर्म के भेद यहां सब  
बैध मुस की डोर  
हिन्दू-मुस्लिम सोच रहे पर  
अपनी-अपनी ओर ।

जैसे ही उन लोगों को ललकारते हैं और घृणा करते हैं जो माई को बहुत समझकर, वस्त्र बचाकर मगाते हैं । बहनों को रोना छोड़कर, स्वयं जागे बढ़ते जाते हैं --

तुम जो माई को बहुत कह वस्त्र बचाकर मांगे,  
तुम जो बहिनें छोड़ किलती बढ़े जा रहे जागे ।  
रुककर उतर दो, मेरा है अप्रतिष्ठित बाहुवान-

जुनो, तुम्हें ललकार रहा हूं, जुनो घृणा का भान<sup>२</sup> ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने कुबाहुत और नारी-जाति के प्रति अपने विद्रोही विचारों को व्यक्त किया है । उसे ऐसे लोगों से घृणा है जो माई को बहुत समझते हैं और बहनों पर ध्यान नहीं देते । इसी प्रकार अन्य कवियों ने भी सामाजिक बैधर्म्यों को मिटाकर स्फुटा के लिए क्रान्तिकारी विचार प्रकट किए हैं ।

इस समय मानव-मंगल की भावना विशेष रूप से काव्य में अभिव्यक्त हुई । इसका तात्पर्य यह नहीं कि अन्य युगों में मानव-मंगल की भावना नहीं रही हो । वस्तुतः प्रत्येक क्रांति के मूल में मानव-मंगल की ही भावना रहती है । पर

१- प्रलय-सूजन-- शिवमंगल सिंह पुनन, पृ० ८२, १९४४ ई०

२- घृणा का भान-- जैय, इत्यल, पृ० ४२, १९४६ ई०

इस युग में मानव-मंगल की भावना को जैनेक जगों में न बांटकर, जैसे समाज उद्धार, जल्लूत-उद्धार, नारी जादि जादि, स्पष्टरूप से मानवता की ही बातें की गईं और इसी के माध्यम से क्रांति-परक विचारधाराओं का प्रस्तुतीकरण हुआ। वैसे ऐसा भी नहीं कि जल्लूत-जल्लूत नारी या जल्लूत<sup>जल्लूत</sup> या कि अन्य वर्गों के सम्बन्ध में कुछ कहा ही न गया हो। पर, उनकी संस्था अत्यन्त नगण्य है।

उदयशंकर मट्ट की जाकांजा है कि जीवन में विवेक, उस जादि हो साथ ही वे यह भी चाहते हैं कि मानव दूसरे के स्वार्थ का प्रतिवाद नहीं करें। चतुर्दिक साम्य, विश्वबन्धुत्व, हर्ष और उत्कर्ष का राज्य हो। कहीं विवाद न हो --

जीवन में विवेक हो, उस हो,  
परहित का प्रतिवाद न हो।  
साम्यवाद हो, विश्वबन्धुता,<sup>१</sup>  
हर्षोत्कर्ष, विवाद न हो।

इसी प्रकार और-और कवियों ने भी नयी जेतना से मानव को अनुप्राणित करना चाहा। पंत का नाम ऐसे कवियों में जगणी है। मानव-मंगल की भावना में उत्प्रेरित पंत के ये विचार 'ग्राम्या' में व्यापक पैमाने पर अभिव्यक्त हुए हैं।

### नारी

नारी जाति की अवस्था से उत्पीड़ित होकर क्रांति की कामना पहले से ही होती जा रही थी। इस युग में भी नारी की दयनीय दशा का चित्रण और उसके मुक्ति की कामना होती रही। पंत ने हायावाद युग में ही तत्सम्बन्धी अपने विचारों को व्यापक पैमाने पर व्यक्त किया था। इस युग में भी वे नारी-जाति के उत्थान-हेतु क्रांतिकारी विचारों को अभिव्यक्त करते रहे। उनकी कम्हा है

कि नारी जागकर, ज्वालामुखी बनकर जाए और शोषण के साधनों को ध्वंस कर दे --

क्रान्ति का सुफोन जब विश्व को हिलायेगा  
 ये बाजार को असंस्कृत निरंजना नारियां  
 जो कि न 'यौनि मात्र रहकर' बौंगी प्रदीत  
 उगलेगी ज्वालामुखी । (किरण बेला, पृ० ६०)

इसी प्रकार अन्य कवि भी नारी शोषण को समाप्त कर साम्य-स्थापन की आकांक्षा प्रकट करते रहे और नये सामाजिक मूल्यों की गतिशीलता प्रदान की ।

### धर्म

प्रातिवाद युग में पूंजी का विरोध तो हुआ हो । उसके विरुद्ध क्रान्ति-गान तो गाए ही गए । साथ ही परमेश्वर का भी विरोध हुआ । साम्यवाद से प्रभावित, प्रातिवाद के समर्थक कवियों को ईश्वर को सता में ही ब सन्देह होने लगा । उन्हें लगा कि धर्म की जाड़ में गरोबी का शोषण होता है । ये परमेश्वर को शोषण का माध्यम मानने लगे, जो शोषितों को बंजन में डालने की एक कुंजला है । उनके अनुसार ईश्वर वस्तुतः पूंजीवादी व्यवस्था के हृदय की कल्पना मात्र है । इसीलिए वह पीड़ितों के बाह्वान पर ध्यान नहीं देता । यदि उसका अस्तित्व रहता तो वह उनकी पुकार अवश्य सुनता । इसीलिए शोषितों, पीड़ितों, कुमुक्षितों के प्रति संवेदनशील कवि ईश्वर का विरोध करने लगे । ईश्वर के प्रति उनके मन में असंतोष रहा । इसलिए उसके अस्तित्व के विरोध में ही वे क्रान्ति-गान गाने लगे । कवि अंकुश को प्रतीत हुआ कि ईश्वर वात्स्य प्रसन्न है --

ऊपर बहुत दूर है शायद वात्स्य प्रसन्न एक  
 जिसके प्राणों में विलुप्त है उर में कुछ भी का अतिरेक ।



नरैन्द्र शर्मा को भी ईश्वर से बड़ी शिकायत है । उनकी दृष्टि में ईश्वर ही रोग, शोक, दुःख-दैन्य लाने वाला है । इसलिए वे ऐसे लोगों को फटकारते हैं , जो संकट के क्षणों में ईश्वर को पुकारते हैं --

जिसे तुम कहते हो भगवान् .....

जो बरसाता है जीवन में

रोग शोक दुःख दैन्य अपार<sup>१</sup>....

उसे सुनाने चले पुकार ?

ईश्वर के सम्बन्ध में पंत ने भी ऐसे ही क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत किए हैं । ग्राम देवता में उनके ऐसे विचार प्रकट हुए हैं । ग्राम देवता रुढ़ियों की शिला पर प्रतिष्ठित है । अतः वह जन-त्वात्न्वय के युद्ध को कैसे सहन कर सकता है । अतः वह ग्रामदेवता से हृदय धाम लेने को कह रहा है --

हे ग्राम देव, लो हृदय धाम

जब जन स्वातन्त्र्य युद्ध की जग में घुमना<sup>२</sup> ।

और फिर व्यंग्य करते हुए उससे कहता है कि तुम रुढ़ि-रीति की अफीम साकर चिर विराम करो --

तुम रुढ़ि रीति की सा अफीम लो चिर विराम<sup>३</sup> ।

अन्धविश्वासों के प्रति यह कटु व्यंग्य बड़ा मार्मिक है ।

भारतीय जन-जीवन के अन्धविश्वासों की आलोचना प्रभाकर भाबवे ने भी व्यंग्यात्मक शैली में की है । ककुवा भारतीय संस्कृति का प्रतीक है । जिस प्रकार ककुवा बाह्य प्रभावों के स्पर्श से अपने को अलग कर, स्वयं में आत्मसात रहता है, उसी प्रकार अन्धविश्वासों के आवरण में भारतीय संस्कृति अपने को छिपाए रखती है और नए ज्ञान को ग्रहण नहीं करती । इस प्रकार ककुवे के प्रतीक द्वारा अन्धविश्वास पर वे करारा व्यंग्य करते हैं --

१- प्रयातफेरी -- नरैन्द्र शर्मा, पृ०८

२- ग्राम्या -- पंत, पृ०५७

३- बड़ी

जो हो, मुझे दोसते हो तुम, कहूँ  
 मानो भारत संस्कृति के प्रतीक,  
 जैसे जरा भी हूँ ना हूँ  
 नए ज्ञान की सूक्ष्म सी लहर ।

इसी प्रकार अन्य प्रातिवादी कवियों ने भी ईश्वर के अस्तित्व में  
 सन्देह प्रकट किया । स्पष्ट है कि धार्मिक क्षेत्र में यह बहुत बड़ी क्रांतिपरक विचार-  
 धारा थी । अभी तक चली आती ईश्वर को सर्वोच्चता पर सन्देह कर, मानव को  
 सर्वोपरि बनाना, एक बड़ा क्रांतिकारी प्रयास था ।

अध्याय -- पांच

-0-

वार्षिक विचारधाराएं

## अध्याय -- पांच

-0-

आर्थिक विचारधाराएंभारतेन्दु युगवर्तमान चित्रण

भारतवर्ष में अंगरेजों का आगमन सर्वप्रथम व्यापारियों के रूप में हुआ था । अतः उनका मूल उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण था न कि किसी तरह से भारत की उन्नति में सहायक होना । अतः अपनी कुटिल आर्थिक नीति से उन्होंने भारत का अर्थ शोषण प्रारम्भ किया । शोषण के इस क्रम में उन्होंने इंग्लैण्ड में भारतीय वस्तुओं की बिक्री बन्द करवा दी । भारत का कच्चा माल सस्ती कीमतों पर लेकर इंग्लैण्ड भेजने लगे और उससे निर्मित वस्तुओं को भारत में महंगे दामों में बेचने लगे । अब भारतीय तैयार वस्तुओं के लिए इंग्लैण्ड पर निर्भर रहने लगे और भारतीय बाजार विदेशी सामानों से भर गया । भारत की मशीनी-प्रगति नहीं कर सका था । अतः ब्रिटिश मिल्स की प्रतियोगिता में भारत का उद्योग नहीं उठर सका कारण, मिल्स में बनी चीजें अपेक्षाकृत कम कीमतों की पड़ती थीं । फलस्वरूप भारत की सम्पत्ति विदेश पड़ने लगी ।

इसकी वैचारिक पैतृता के होते ही यह अर्थ-शोषण की और भी मशीनियों का ध्यान गया । ये ध्यान ही रहे । सारे और कसती-व आदि

की जननी है । तत्कालीन युगद्रष्टा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी विदेशियों द्वारा इस आर्थिक शोषण से बहुत असन्तुष्ट थे । अतः उन्होंने इन शब्दों में अपनी शोम-जनित क्रान्ति प्रकट की --

अंगरेज राज सुत साज सै सब मारी ।

पे घन विदेश बलि जात इहे जित स्वारी ॥<sup>१</sup>

प्रतापनारायण मिश्र भी भारतीय सम्पदा को विदेश जाते देखकर दुःख्य हैं --

सबंसु लिये जात अंगरेज

हम केवल 'ल्यक्वर' को तेज ।

अम बिन बातें का करती हैं ।<sup>२</sup>

कहुं टेंटकन नार्ने टरती हैं ।

इन्हें दुःख है कि हम केवल 'ल्यक्वर' में तेज हैं, अम नहीं करते ।

शोषण के विरुद्ध क्रान्ति की अभिव्यक्ति करने वालों कवियों में प्रतापनारायण मिश्र महत्त्वपूर्ण हैं । साम्राज्यवादी शक्ति परतंत्र राष्ट्र के शोषण पर ही बहती है । इसका सहज अनुभव हो कवि को हो जाता है । 'तृप्यन्ताम' नामक कविता में मार्मिक ढंग से कवि ने इसका चित्रण किया है --

बलकापुरी त्यागि स्त आये बड़ी दया कीन्हीं परनाम ।

कहु वनपति ने दियो होय तो भोजन को कीजै स्तनाम ।

तुम्हें स्मरणें कहा, हमारी भुंजी में नहिं एक ह्दाम ।

हां यह जल, यह जब, ये तंडुल छेहु यदागण तृप्यन्ताम ।<sup>३</sup>

यदागण बलकापुरी से बाहर हैं । पर उसकी भुंजी एक ह्दाम भी नहीं है । इसलिए वह स्वागत कैसे करे । उसके पास केवल जल और तंडुल है । उसी से वह उनका स्वागत करता है । आर्थिक शोषण का यह मार्मिक चित्रण अंगरेजी शासन के प्रति नवरी क्रान्ति है ।

१- भारतेन्दु नाटकावली - सं० ५० पृ० ५६८

२- लौकीकित्त कृतक -- प्रतापनारायण मिश्र, पृ० ३

३- भारतेन्दु कुल -- डा० रामकृष्ण शर्मा, पृ० १४६, १६५१ ई०

## व्यापार

अंगरेजों द्वारा आर्थिक शोषण का पहला माध्यम व्यापार था ।  
भारतेन्दु ने इस समस्या का और देश की जनता का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट कर  
करवाया था --

कल के कल कल डूलन सों हलै इत के लोग ।  
नित नित धन सों घटत हैं बाढ़त है दुख लोग ।  
भारतीन मलमल बिना चलत नहीं कतु काम ।  
परदेशी जुलहान के मानहु मये गुलाम ॥<sup>१</sup>

इस स्थिति में यह आवश्यक था कि विदेश में जाते हुए धन को  
रोकने का उपाय ढूँढ़ा जाय । भारतेन्दु का ध्यान इस ओर भी गया और उन्हें  
बोध हुआ कि यदि लोगों का काम भारतीय मलमल के बिना नहीं चल सकता तो  
उचित होगा कि यहां भी कलों की स्थापना हो, जिससे विदेशों में कच्चा माल  
नहीं जाए और भारत की पूंजी भारत में ही रहे --

कौं वस्तु कल को इत भिटे दीनता भेद ।<sup>२</sup>

उपर्युक्त पंक्ति में भारतेन्दु ने आर्थिक शोषण से मुक्ति का उपाय  
कहाया है कि परम्परा में परिवर्तन कर कल-कारखानों की स्थापना द्वारा आर्थिक  
स्वतंत्रता सम्भव है ।

प्रेमचन्द और भी तीसरी भाणी में इस आर्थिक शोषण के प्रति  
बेहाद बोलते हैं वे स्पष्ट कहते हैं कि विधायक भारत को लूट करके ला रहा है ।  
तरह तरह के माल फैलाता है, उसकी बगुली भी लूट जाती है । सारा घाटा  
भारत के सिर जाता है --

लूटि विधायक भारत लाय । माल ताल बहु विधि फैलाय ।

ताकी याबुली लूटि जाय । जामें लाने लाय दिलाय ॥<sup>३</sup>

देखी मालन कहां बिनाय । घाटा भारत के सिर जाय ॥

१- भारतेन्दु कृत्यावली, भाग २, पृ० ७१५, सं० २०१०

२- वही, पृ० ७१६

३- जनकमण्डप -- प्रेमचन्द सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ० १८५, सं० १९६६ वि०



ऐसा ही तीसा और व्यंग्यपूर्ण आर्थिक शोषण का वर्णन मारतेन्दु के 'नये ज़माने की मुकरी' में है --

भीतर भीतर सब रस चुसे ।  
हंसि-हंसि के तन मन धन मुसे ।  
जाहिर बातें में अति तेज ।  
क्यों ससि सज्जन नहिं अंगरेज ।<sup>१</sup>

आर्थिक शोषण के विरुद्ध क्रान्ति का ऐसा तीसा स्वर अन्यत्र देखने को कम मिलेगा । अंग्रेजी राज्य में हो अंगरेजों के प्रति इस प्रकार की उक्तों, जुमले हुए व्यंग्य को अत्यन्त क्रान्तिकारी माना जाएगा ।

टैक्स

अंगरेज केवल व्यापार के माध्यम से भारत का आर्थिक शोषण नहीं कर रहे थे, बल्कि उनके द्वारा आर्थिक शोषण का एक सक्षम माध्यम था--टैक्स । अंग्रेजों ने भारतीय जनता पर तरह-तरह के टैक्स लगाकर उनका आर्थिक शोषण आरम्भ कर दिया था । युगद्रष्टा कवियों को शोषण को मोषणता का बोध हुआ । वे शोषण के इस रूप को भी नहीं सह सके । इसलिए उन्होंने इन अत्याचारी टैक्सों का विभिन्न प्रकार से चित्रण कर, उसके विरुद्ध जाँम प्रकट कर उसके उन्मूलन के लिए क्रान्ति की आवाज उठाई ।

'भारत दुर्दशा' में मारतेन्दु ने टैक्स द्वारा व्यथित जनता की धेदना का चित्रण किया है --

सब के ऊपर टिक्कस की आफत आई ।  
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी आई ।<sup>२</sup>

१- मारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ८११, सं० २०१०

२- वही, पृ० ८१६

हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान में श्री मारतेन्दु बार्थिक दशा  
पर जाँच प्रकट करते हुए 'राज कर' की ओर ध्यान बाकृष्ट करते हैं --

कहु तो पैतन में गयो कहुक राज-कर मांहि ।

बाकी सब व्यौहार में गयो रह्यो कहु नाहिं ॥

निरधन दिन दिन होत है भारत भुव सब मांति ।

ताहि बचाइ न कोउ सकत निज भुज बुधि बल कांति<sup>१</sup> ।

प्रेमधन भी टैक्स के विरुद्ध क्रान्ति के स्वर को उठाते हैं । उनके  
काव्य में कई-कई जगह टैक्स के प्रति जाँच प्रकट है । वे इन्कमटैक्स की पीषणता  
के प्रति बहुत अर्थ चढ़ाकर उसका विरोध करते हैं --

रौखो सब मुंह बाय बाय ।

हय हय टिक्कस हाय-हाय ।

उन्हें लगतब है कि एक तो भारतवासी यों ही अपने महत्व को भूल  
जुके, ऊपर से टैक्स एक नाग है, जो एक-एक को टो टोकर डंस रहा है । --

टिक्कस नाग तापे डंस्यो, एक-एक टोय ।

'तुप्यन्ताम' कविता में मंहगाई और टैक्स से पीड़ित, शोषित,  
दीन, श्रीहीन जनता की परतंत्रता का करुण चित्रण प्रतापनारायण मिश्र ने  
किया है --

मंहनी और टिक्कस के मारे हमहिं दुआ पीड़ित तन डाम ।

साग पात लों मिलें न जिय मरि लेबो कृपा दूब को नाम ।

तुमहिं कहा ध्याये जब हमरो करत रहत जो वंश तमाम ।

केवल सुनि अलक उपमा लहि नाग देवता तुप्यन्ताम ॥

१- मारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ७३६ सं० २०१०

२- प्रेमधन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ० १८३, सं० १९९६ वि०

३- फितर प्रताप, बही, पृ० १५६

४- मारतेन्दु पुनः-हा० रावबिठास शर्मा, पृ० १४६, सं० १९५१ सं०

मंछी और टेक्स से पीड़ित जनता को साग-पात भी नसीब नहीं है  
गिर दुध का तो नाम लेना भी व्यर्थ है । अतः दुध से नागदेवता को तृप्त कैसे करे ।  
गायों को बलि रोज होतो है । अतः उनकी संतुष्टि के लिए कवि उन्हें मात्र सुंदरी  
के अलकों को उप्पा ही देता है ।

कवि परसन ने आर्थिक शोषण के विरुद्ध 'हिन्दी प्रताप' में  
यत्न तत्र क्रान्तिकारी विचार अपने काव्यों द्वारा प्रकट किया है । वे टेक्स के प्रति  
'सियापा' करते हुए उसका विरोध इन शब्दों में करते हैं --

हवै हवै टिक्सस हाय हाय । कहाँ से देवें हाय हाय ।

वामन कुह नहिं हाय हाय । सरब बढ़ा है हाय हाय ।

+ + +

कोई न छूट हाय हाय । जुंगी लाइसेंस हाय हाय ।

तापर टिक्सस हाय हाय । गई जमींदारी हाय हाय ।

जाई फकीरी हाय हाय । गई मातवरी हाय हाय ।

यह टिक्सस है बुरी बलाय । इससे नहिं छुटकारा हाय ।

हे ईश्वर तुम होहु सहाय । हवै हवै टिक्सस हाय हाय ।।<sup>१</sup>

कवि कभी इस पर चिन्तन करने बैठता है कि अंग्रेजों ने क्या-क्या  
लिया और क्या-क्या छोड़ दिया, तो देखता है कि 'भूतों' से भी टेक्स लिया है--

गौरी लिये जमीना किया । सर्वा भारत के सिर दिया । यह २

देन एक के दस २ किया । भूतों से भी टिक्सस लिया । यह २

सक तो मंछी है ही । उस पर से टेक्स । इतना ही नहीं भारत  
का सब गहूँ यूरोप को डोया जा रहा है --

मंछी कभी भारत भीतर को यह बिपत नई अति घोर ।

घट काट के टिसक लोखो तिहि पर मंछी जोर ।

+ + +

गोहूँ डोयी बात भारत की सब यूरोप की जोर ।

भुलन भारत प्रजा भारत की छैत उसास कटोर ।।<sup>३</sup>

१-सियापा--परसन, हिन्दी प्रवीण, पृ० १६-१७, जुलाई सन् १८८६

२-क्या २ छोड़ दिया २ लिया--परसन, वही, पृ० ५, १ फरवरी, सन् १८८६ ई०

३-कमंडी--परसन, वही, पृ० ६, मई सन् १८८६ ई०

इस प्रकार भारतेन्दु युगीन कवि, साम्राज्यवादियों द्वारा भारत का आर्थिक शोषण टेक्स द्वारा किस प्रकार हो रहा था, उसका यथार्थ चित्रण करने में कहीं भी नहीं हिचकिचाए। इस चित्रण द्वारा उन्होंने जन-जीवन में आर्थिक शोषण के विरुद्ध झान्ति की वैचारिक चेतना उत्पन्न की।

इतना ही नहीं, साम्राज्यवादी शक्ति के द्वारा शोषण के फलस्वरूप भारत आर्थिक दैन्य, मंहगी, अकाल आदि से भी ग्रस्त हो गया था। निर्धनता के कारण उदरपूर्ति का कोई उपाय नहीं था। भारत रोग व्याधियों का घर हो रहा था। अंगरेजों की शिक्का-विषयक - नोति भी इतनी कुटिल थी कि बी०२० पास करने पर भी बेकारी हो रहती थी। इन सारी विपत्तियों का भी हृदयस्पर्शी चित्रण कर इन कवियों ने आर्थिक-झान्ति की वैचारिक चेतना उत्पन्न की है।

भारतेन्दु ने बेकारी का बड़ा ही सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किया है --

तीन जुलाए तरह आँवें ।

निज निज विपदा रोव सुनावें ।

वाँसों फूटै मराव न पेट ।

क्यों सति सज्जन नहिं ग्रेजुष्ट ।<sup>१</sup>

बेकारी के परिणामस्वरूप भारत की दुर्दशा हुई और भारतीय जन-जीवन इतना निवृष्ट हो गया कि पेट भरने के लिए दर-दर कुत्ते की तरह भटकने लगा। जो ठोकर मारता था, वे उसी के पैर चाटते थे --

पेट भरन हित हाय फिरँ कूकर से दर दर ।

चाटहिं ताके पैर छनि छपकि मारहिं जे ठोकर ।<sup>२</sup>

भारत की इस दयनीय स्थिति से दुःख होकर ईश्वर से प्रार्थना है कि हे राम ! किस पाप के कारण भारत की यह दशा है कि हाइनों की चक्की चलती है और हाइनों का ही व्यापार होता है। अन्न और धुव का देश आज हाइ-नाम से प्रसिद्ध हो गया है --

१- भारतेन्दु कृष्णावली, भाग २, पृ० ८१०, सं० २०१०

२- राम मरीचा — बालकृष्ण गुप्त निबन्धावली, प्रथम भाग, पृ० ५८६, सं० २००७ वि०

हरे राम । केहि पापैत भारत भूमि मफार ।  
 हाइन की चक्की चलै हाइन को व्यापार ॥  
 अब या सुखमय भूमि मंह नाहीं सुख को लैस ।  
 हाइ कछ काम पुरित मयो अन्न दुध को देस ॥<sup>१</sup>

प्रताप नारायण मिश्र ने साम्राज्यवादी शोषण के अत्याचार का पर्दाफाश करते हुए व्यंग्य किया है । भारत मृत्यु के करीब पहुँच चुका था, क्योंकि अत्याचार सीमा पर पहुँच चुका था । अकाल और मंहगी का विरोध करने वालों पर शासन की बन्दूक तनी रहती थी । इसलिए कवि को प्रतीत होता है कि अब तो सब प्रकार से मृत्यु देवता के तृप्ति की तैयारी हो चुकी है --

लैस न इनकम जुंजी चंदा पुलिस अदालत बर्षा धाम ।  
 सब के हाथ असन बसन जीवन संसयमय रहत मुदाम ।  
 जो स्नह ते प्रान बने तो गौली बोलति हाय बहाम ।  
 मृत्यु देवता नमस्कार तुन सब प्रकार बस तृप्यन्ताप ॥<sup>२</sup>

राधाकृष्णदास ने भी 'भारत बारहमासा' में भारतीय आर्थिक दुर्दशा का करुण चित्रण किया है । कुंवार का महीना जा गया है । शीत बड़ गई है । लेकिन जब यूरोप भिदा देगा तभी काम चलेगा --

आयी कुंवार तुषार लाग्यो पास कपड़ा हू नहीं ।  
 जब देहिं मिच्छा यूरोपी तब काम कछु चलिहै सही ॥<sup>३</sup>

बस्त्रों के साथ ही अनाज की भी कमी है । पेट भर अनाज नहीं छुटता । कर पर कर लगता जाता है । सारा धन, अन्न विदेश बला जा रहा है, यहाँ एक छर तक नहीं बचा --

१- हे राम, वही, पृ० ५८०

२- भारतैन्दु कुं--डा० रामबिलास शर्मा, पृ० १४७, संव १९५२ ई०

३- भारत बारहमासा--राधाकृष्ण ग्रन्थावली, पृ० १५, १९३०ई०

पेट जुरै नहिं अन्न लगत नित प्रति कर पर कर ।

अन धन खिचत बिदेस रहत अत नाहिन एक तर ॥<sup>१</sup>

इस प्रकार भारत की दयनीय आर्थिक दशा के चित्रण के माध्यम से तत्कालीन हिन्दी कवियों ने आर्थिक-शोषण के प्रति क्रान्ति की वैचारिक चेतना उत्पन्न की ।

### स्वदेशी

आर्थिक शोषण के विरुद्ध क्रान्ति की वैचारिक चेतना उत्पन्न करने के साथ ही साथ तत्कालीन कवियों ने आर्थिक क्रान्ति के व्यावहारिक मार्गों का भी निर्देश किया । मारतेन्दु की दृष्टि में वे 'स्वदेशी' के द्वारा ही आर्थिक क्रान्ति में सफल हो सकते थे । सोलिये उन्होंने 'स्वदेशी' का नारा लगाया । आर्थिक उद्धार के लिए बली जाती परम्पराओं का त्याग कर औद्योगिक क्रान्ति द्वारा अर्थ स्तर ऊंचा उठाना एकमात्र उपाय था । यह औद्योगिक विकास तभी सम्भव था, जब 'स्वदेशी' की नीति ग्रहण की जाय । अंगरेजी राज्य की आलोचना के सन्दर्भ में ही मारतेन्दु ने आर्थिक शोषण को निर्मूल करने का मंत्र 'स्वदेशी' भी बतलाया था । हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान में 'कौ बस्तु कल को अत मिटे दीनता तेव' द्वारा मारतेन्दु ने बता दिया था कि 'स्वदेशी' की नीति ही आर्थिक क्रान्ति उत्पन्न कर सकती है ।

'प्रेमघन' ने भी 'स्वदेश विन्दु' में आर्थिक क्रान्ति के लिए 'चरता' अपनाने को कहा है । चरते के माध्यम से स्वदेशी वस्त्रों का निर्माण होगा और कवि को विश्वास है कि इससे 'मैनचिस्टर' मात हो जायगा —

कल कल चरता तु दिन रात ।

कलता चरत कलता निस दिन ज्यों ग्रीष्म बरसात ।

+

+

+

१- रहस्यन विठास, वही, पृ० ३१

२- चरते की कलकारी— प्रेमघन सर्वस्व- प्रकाशन, पृ० ६१३, सितम्बर १९६६



कात कात कर झूत मेनचिस्टर को कर दे मात १।

इतना ही नहीं, कवि को अच्छी तरह विश्वास है कि चरले के माध्यम से ही आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त होगी, जिससे दुखी निर्धन मरपेट दाल और मात खा सकेंगे। सस्ते, शुद्ध लहर से अपने शरीर को ढांक लेंगे --

कल तु जिससे लाय दुखी मर पेट दाल और मात ।

गस्ता शुद्ध स्वदेशी लहर पहिन क्षिपावे गात ॥ २

स्पष्ट है कि भारतेन्दु-गुप्त कवियों ने साम्राज्यवादी शोषण के विरोध में क्रान्ति के स्वर उठाए। उन्होंने न केवल राष्ट्रीय क्रान्ति को चेतना उत्पन्न की, बल्कि आर्थिक क्रान्ति पर भी उतना ही बल दिया। 'स्वदेशी' आन्दोलन को जन्म देकर उसके द्वारा राष्ट्र को अर्थ-शोषण से मुक्ति पाने का एक सशक्त अस्त्र दिया।

### द्वितीय युग

-----

#### वर्तमान चित्रण

इस युग में भी साम्राज्यवाद आर्थिक शोषण में पूर्व-युग की भांति ही संलग्न था। हिन्दू और मुसलमान दोनों स्मरण से शोषित थे। जनता और निर्धन हो गई थी। कहा जा चुका है कि बीसवीं सदी के आरम्भ से राजनीतिक मांगों में उग्रता बाने लगी थी। राजनीति के साथ ही आर्थिक क्षेत्र में भी उग्र कदम उठने लगे।

१- चरले की कतकारी -- प्रेमचन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृष्ठ ६३३, सं० १६६६

२- वही

दुर्मिदा का प्रकोप भारतेन्दु युग में भी था, इस युग में भी ज्यों का त्यों वर्तमान रहा । अन्न के लिए हाहाकार मचा हुआ था । मैथिलीशरण गुप्त को ऐसा लगा कि दुर्मिदा स्वयं मशीन चारों ओर घूमने लगा है । अन्न के लिए चारों ओर पुकार मची है । इस दुर्मिदा का हम इतना भयंकर है कि सम्पूर्ण विश्व में जितने व्यक्ति युद्ध में सौ वर्षों में मरें वहां इतने व्यक्ति इस वर्षों में हो भूख से मर चुके हैं --

दुर्मिदा मानो देह धर के घूमता सब ओर है,  
हा । अन्न । हा । हा । अन्न का रव गूंजता घनघोर है ।  
सब विश्व में सौ वर्षों में, रण में मरें जितने हों ।  
जन चौगुने उनसे यहां दस वर्षों में भूखों मरे ।<sup>१</sup>

वस्त्र संकट भी उतना ही अधिक था । लज्जा निवारण तक के लिए नारियों को भी वस्त्र अपर्याप्त थे --

नारी जनों को दुर्दशा हमसे कही जाती नहीं,  
लज्जा बचाने को जहाँ । जो वस्त्र भी पातो नहीं ।<sup>२</sup>

इस दुर्मिदा के फलस्वरूप लोग जाति, धर्म तक त्यागते जा रहे हैं । वे पेट भरने के लिए दूसरा धर्म अपनाने को मजबूर हैं । विधर्मी होना उनकी लाचारा है --

हमको दामा करि ये दुःखावश हम तुम्हें हैं सा रहे ,<sup>३</sup>  
होकर विधर्मी हाय । अब हम हैं विदेशी हो रहे ।।

देश को यह दयनीय वशा देखकर प्रत्येक सहृदय के हृदय में वर्तमान शोषण के प्रति क्रान्ति का उन्मेष होना स्वाभाविक है ।

१- भारत-भारती--मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ८७, १९८३

२- वही, पृ० ८६

३- वही, पृ० ८७

पाण्डेय लोचन प्रसाद शर्मा ने भी भारत की होली का करुण चित्र उपस्थित किया है। विदेशी बीजों ने दगा दी है। सारा धन विदेश चला जा रहा है। फसल बहुत कठिनार्थ से पैदा हो रहा है। अनाज की चारों ओर कमी है। इसलिए अब तो होली में देवगणों की भी माजी का भोग लगाना होगा। --

दगा विदेशी बीजों ने दे, इ मारी हमको गोली है  
धन सब जाय विदेश चला अब कहें कौन बल होली है ॥

+ + +

फसल दुःख में उपजावेँ बहु, परे अन्य की फौली है ।  
भोग लगाओ माजी की अब, अहो देवगण । होली है ।<sup>१</sup>

'स्वदशी कुण्डल' में राय देवी प्रसाद पूर्ण ने भी इस दशा का करुण चित्र उपस्थित किया है--

मुनौ स्नापति । हाय । प्रजा धन-हीन रत-दिन ,  
हैं अति ठ्याकुल वृन्द मुकुट के यथा चंद बिन ।

कवि ऐसे लोगों को धिक्कारता भी है जो बन्धुओं की आर्थिक स्थिति को देखकर भी उनकी ओर ध्यान नहीं देते --

लासो देशी बन्धु यहां भुलों मरते हैं,  
पर हम उनकी ओर नहीं दृग भी करते हैं ।<sup>२</sup>

किसानों की दयनीय दशा का भी चित्रण कर हिन्दी कवियों ने आर्थिक शोषण के प्रति आन्तिकारी विचारधारारें जगाई हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने भारतीय किसानों के दुस्त दैन्य का अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है --

बनता है दिन रात हमारा रुधिर फसोना,  
जाता है सर्वस्व सूब में फिर भी होना ।  
हा हा लाना और सर्वदा बांसु पीना ,  
नहीं चाहिए नाथ । हमें अब ऐसा जीना ।<sup>३</sup>

१- भारत की होली- पद्म पुष्पांजलि-पाण्डेय लोचन प्रसाद शर्मा, पृ० ३७, १९७२ वि०

२- किन जीवन- रामचरित उपाध्याय, सरस्वती, दिसम्बर १९१७, पृ० ३६७

३- किसान- मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ६, सं० १९७८

केशव प्रसाद मिश्र भी ऐसे किसान को दयनीय दशा का करुण चित्रण करते हैं । जो किसान धैर्य वश कमी दुःखों का अनुभव भी नहीं करता था, वही आज भूखों मर रहा है --

जो करता था पेट काट कर सरकारी कर-दान ,  
रहता था प्रस्तुत करने को जाम्ब्यागत का मान ।  
नहीं हुआ था जिस धैर्यवश कमी दुःख का मान,  
आज वही भूखों मरता है मातादीन किसान ।

इस प्रकार दीन दुखी भारतीय जनता की करुण दशा का बोध अनेक कवियों को हुआ । इस बोध से व्यक्ति होकर, अस्तुष्ट होकर, उन्होंने तत्कालीन आर्थिक परिवेश का यथार्थ ज्ञान कर जन-जागरण में आर्थिक-क्रान्ति की वैचारिक चेतना जाग्रत की ।

### स्वदेशी

भारतेन्दु युग की ही भांति इस युग के कवियों ने भी आर्थिक क्रान्ति का व्यावहारिक उपाय 'स्वदेशी' को बताया । शोषण के विरुद्ध जहाँ विरोध जागरण की आवश्यकता है, वहीं यह भी उतना ही आवश्यक है कि कोई ऐसा मार्ग निर्धारित किया जाए, जिसके आधार पर क्रान्ति व्यावहारिक होकर सफल हो सके । इसीलिए 'स्वदेशी' को अपनाने पर इस युग के कवियों ने भी अत्यन्त बल दिया । राष्ट्रीय कांग्रेस ने लगभग स्वदेशी का अस्त्र ग्रहण किया था । पर हिन्दी कवियों ने उसके पूर्व ही 'स्वदेशी' का नारा लगाया था । वे वस्तुतः क्रान्तिप्रष्टा थे । वे इस तथ्य को समझ चुके थे कि स्वदेशी के माध्यम से ही लोगों के चंगुल से मुक्त हुआ जा सकता है । १९०३ ई० में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने विदेशी वस्त्रों से हानि का उद्घाटन करते हुए स्वदेशी अपनाने का आग्रह किया --

विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे हैं ?

बुधा धन देश का क्यों दे रहे हैं ?

न झूक है और भारत मिलारी ।

गर्ह है हाथ तेरी बुद्धि मारी ।

✦ ✦ ✦

स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार कीजें,  
 विनय इतना हमारा मान लीजें ।  
 शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागो,  
 जावो पास, उससे दूर भागो १ ।।

पं० गिरधर शर्मा मो इस तथ्य से परिचित हैं कि 'स्वदेशी' के माध्यम से हो कल्याण सम्भव है । भारत का उत्थान औद्योगिक व्यापारिक उन्नति से हो सम्भव है --

औद्योगिक व्यापारिक उन्नति कर भारत को उच्च करो ।  
 माल विदेशी यहाँ न खपने पावे, सन्तत ध्यान धरो २ ।।

पं० हुकदेव तिवाड़ी दृढ़ता से कहते हैं कि वे अब 'स्वदेशी' हो बरतेंगे,  
 मल ही विदेशी वस्तुएं बहुमूल्य हों या कि वे कीमत हो मिल जाएं :  
 हों विदेशी वस्तुएं, बहुमूल्य, वे कीमत मिलें ।  
 पर स्वदेशी ही सदा, कर्तुंगा जब तो मैं जरूर ३ ।।

देश की दरिद्रता को मगाने का एकमात्र उपाय स्वदेशी है । ऐसा दृढ़ विश्वास पाण्डेय लोचन प्रसाद शर्मा को है । देशीदार के उपायों को प्रश्नबद्ध रूप में उपस्थित करते हुए वे कहते हैं--

प्रश्न -- हैं कौन आपके अतिथि बोलिये प्यारे ?

उत्तर -- भारत के प्रेमी जो कारीगर सारे ।

प्रश्न -- किस भांति देश की दरिद्रता यह भागे ? ४

उत्तर -- जब करें स्वदेशी ग्रहण विदेशी त्यागें ।

१- स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार- महावीर प्रसाद द्विवेदी, सरस्वती, जुलाई १९०३ ई०

२- कर्तव्य- पं० गिरधर शर्मा, स्वतन्त्रता की कानकार, प्रथम भाग, १९२२ ई०

३- असहयोगी के उद्गार- पं० हुकदेव तिवाड़ी, पृ० २१ वही, पृ० ४९, सं० १९७२

४- देशीदार सीपान- पद्म पुष्पांबलि- पाण्डेय लोचन प्रसाद शर्मा पृ० ४१, १९७२

कल-कारखानों की स्थापना भी स्वदेशी उत्थान के लिए आवश्यक है । कारण, तभी विदेशी अपने घर बैठ सकें और आर्थिक क्रान्ति का लक्ष्य पूरा हो सकेगा । इसीलिए पं० गिरिधर शर्मा कहते हैं --

व्यापार वाणिज्य यहां बढ़ा दो,  
जहाँ कला दो कल कारखाने,  
विदेशियों की प्रतियोगिता में  
प्यारों उन्हीं के घर में बिठा दो<sup>१</sup> ।

तत्कालीन कवियों ने इसका अनुभव मली भांति कर लिया था कि बिना औद्योगिक क्रान्ति के आर्थिक उन्नति सम्भव नहीं । शिल्प का प्रचार भी आर्थिक क्रान्ति के लिए आवश्यक है । इसीलिए भारतमाता कहती है --

बिना भी भैंर पुर्वा को नहीं उचित सिखाई जाती है ।  
यह वर्तमान सिच्छा वकील या नौकर उन्हें बताती है ॥

है तब से बढ़कर आवश्यकता मुझे शिल्प की आज ।

बानिज्य बिना नहीं कमी सैगा मेरा कुछ भी काज<sup>२</sup> ॥

स्पष्ट है कि भारतमाता के रूप में कवि अपने उद्गार प्रकट करता है कि --

सबसे बढ़कर उसे शिल्प की आवश्यकता है । इतना ही नहीं, वह देखता है कि केवल शैली की उन्नति से भी काम नहीं चल सकता, जब तक उसके पुत्र शिल्प-उपज के लिए विदेशों का मुंह ताकते रहें --

फिर केवल शैली की उन्नति से भी न काम चल सकता है  
जब तक सुतगन सब शिल्प अन्न उपज हित मुस बिदेस का तकता है<sup>३</sup> ॥  
उस समय भारत उद्योगधंधा बिहीन था । अतः परमुत्पादित था ।

“भारत भारती” में मैथिलीहरण गुप्त ने इस परमुत्पादितता ग्रहण करने पर कई जगह दायम प्रकट किया है । भारतीय वस्त्र आदि के लिए तो विदेशों के आश्रित थे ही ।

१- उद्घोषण-संक्षिप्त गिरिधर शर्मा, पृ० ४२२, सरस्वती, मई १९०६ ई०

२- शिल्प व्यापार शिक्षा-भारत विनय-श्यामबिहारी मिश्र, मुकदमबिहारी मिश्र, पृ० ४१, सन् १९१६ ई०

३- वही



यहाँ तक कि भारतीय ललनाओं का सौभाग्य-चिह्न चुड़ियां भी विदेशों पहना जातीं थीं । कवि को लगता है कि इसीलिए भारत अपने सौभाग्य से वंचित हो गया है ।  
जतः वह अपना दाँप प्रकट करता है --

कुल नारियाँ जिनको हमारी हैं करों में धारतः-  
सौभाग्य का शुभ चिह्न जिसको हैं सदैव विचारती,  
वे चुड़ियाँ तक हैं विदेशों देस लो, बस हो चुका,<sup>१</sup>  
भारत स्वकीय मुहाग भी परकीय करके लो चुका ।

इसलिए आर्थिक श्रान्ति की आकांक्षा से अभिप्रेरित होकर कवि देशों में देश में कल-कारखानों की स्थापना करने को कहता है , जिससे सम्पूर्ण वस्तु देशों हों, यहाँ से कच्चा माल बाहर न जाए और आर्थिक, श्रान्ति में सफलता मिले --

जब तौ उठौ है बन्धुजो । निज देश की जय बोल दो,<sup>१</sup>  
कने लो सब वस्तुएं , कल-कारखाने लोल दो ।  
जावे यहाँ से और कच्चा माल जब बाहर नहीं<sup>१</sup>--  
हो 'मेड इन' के बाद बस अब इण्डिया हो सब कहो<sup>२</sup> ।

### पूंजीवाद

इस प्रकार तत्कालीन कवियों ने विदेशियों द्वारा देश के आर्थिक शोषण के विरोध में क्रांति की । जन-मानस में शोषण के प्रति उत्तेजना उत्पन्न की । साथ ही इस युग के हिन्दी-काव्य में यदि एक ओर विदेशियों द्वारा आर्थिक शोषण के विरोध में क्रांति विचार प्रकट हुए हैं तो दूसरी ओर पूंजीवाद के प्रति भी आक्रोश प्रकट हुआ है । आर्थिक वैषम्य का एक कारण पूंजीवादियों द्वारा शोषण भी रहा है ।

कवि त्रिभुल वर्ध वैषम्य का चित्रण करते हुए कहते हैं कि कुछ लोग  
स्तना सा गर हैं कि कर्णोर्ण हो गया है और कुछ लोग मूल से मर रहे हैं --  
-----

१- भारत भारती-नेपिठीशरण गुप्त, पृ० १०३, सं० २००६ वि०

२- वही, पृ० १५८

कुछ मूखी मर रहे महा तनु शीर्ण हुआ है ।

कुछ इतना सा गये कि घोर अजीर्ण हुआ है ।

कैसा यह वैषम्य-भाव अवतीर्ण हुआ है,  
जीर्ण हुआ मस्तिष्क, हृदय संकीर्ण हुआ है ।<sup>१</sup>

इतना ही नहीं, वे असंख्य भी दुःख हैं कि अम कौन करता है और मौज  
कौन करता है । साता कौन है और उपजाता कौन है --

अम किसका है मगर मौजे हैं कौन उड़ाते ।

हैं खाने को कौन, कौन उपजा कर लाते ॥<sup>२</sup>

आगे कवि यह कामना करता है कि सांसारिक सम्पत्ति पर सबका  
समान हक हो --

सांसारिक सम्पत्ति पर सबका सम अधिकार हो ।

वह सेतो या शिल्प हो बिद्या या व्यापार हो ॥<sup>३</sup>

इस प्रकार कवि पूंजीवाद के प्रति क्रांति करते हुए साम्यवाद को  
स्थापना चाहता है ।

माधव शुक्ल भी 'संकेत अम जीवी' में पूंजीपतियों को चेतावनो देते  
हैं । वे स्पष्ट कहते हैं कि कमी जमींदार बन, कमी महाजन बन और कमी और  
और माध्यम से हमें दबाते रहे । पर सहने की भी सीमा है । ठोकर खाकर बाज  
आग मड़क स्फुरित उठी है । अब यह दबाने से नहीं दबेगी । अतः जल्दी जुमान लो,  
अन्यथा तुम्हारी भी तैर नहीं है --

लगी है अब आग फौपड़ों में मुसाहिबी । अपने घर संभालो ।

तुम्हारी भी तैर अब नहीं है महल दुमहलों के रहने वालों ॥

+

+

+

१- साम्यवाद-- राष्ट्रीय मन्त्र-- त्रिहल, पृ० १३, सन १९११ ई०

२- वही, पृ० १५ सन १९२१ ई०

३- संकेत अम जीवी -- जागृत भारत -- माधव शुक्ल, पृ० ५०-५१, सन १९२२ ई०

कभी जिमोदार बन सताया कभी हुकूमत में घर दबाया ।  
 महाजनी से कभी मिटाया गुरु कि हर भांति में सताया ।।  
 ठके हुए चीथड़ों से तन को सहा किये जुल्म थे बराबर ।  
 मगर कहाँ तक सहें आसिर भड़क उठी आग साके ठीकर ।।  
 दबाये माथों नहीं दैली जहाँ तलक जल्द हो जुफा लो ।  
 तुम्हारी हो सैर अब नहीं है ।<sup>१</sup>

स्पष्टतः उपर्युक्त पंक्तियाँ आर्थिक शोषण के प्रति मोक्षण क्रांति का नारा लगाती हैं । पूँजीवाद आर्थिक शोषण को एक पद्धति ही है । इसलिए आर्थिक साम्य के लिए इस पूँजीवाद पद्धति में भी परिवर्तन आवश्यक है ।

इस प्रकार द्विवेदी युगीन कवियों ने वर्तमान आर्थिक-वैषम्य का चित्रण कर, उस वैषम्य के प्रति जन-जीवन में आक्रोश पैदा किया, असंतोष पैदा किया और कहने की आवश्यकता नहीं कि असंतोष ही क्रान्ति को जननी है । असंतोष वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन चाहता है और परिवर्तन क्रान्ति है ।

परिवर्तन या क्रान्ति के लिए कवियों ने 'स्वदेशी' पर बल दिया, क्योंकि तत्कालीन विदेशी अर्थ-नीति में ही परिवर्तन की आवश्यकता थी । स्वदेशी के अन्तर्गत ही देश में उद्योगधंधों का विकास, कल-कारखानों की स्थापना भी अन्तर्निहित है । साथ ही उन्होंने पूँजीपतियों को भी चेतावनी दी कि आज शोषित जन क्रान्ति के लिए तत्पर हैं ।

### हायावाद युग

—————

पूर्व युगों की भांति हायावादी हिन्दी-काव्य में भी आर्थिक क्रान्ति की विचारवादाओं की बहिष्कृति होती रही । इस युग का आर्थिक परिवेश

१- संकेत मजबूती-- जागृत भारत--माधव शुक्ल, पृ० ५०-५१, सन १९२२ ई०

पूंजीवाद से जाचून्ना था । गमन्तो अर्थ-व्यवस्था टूट गयी थी और पूंजीवादी अर्थतंत्र प्रचलन हो गया था साथ ही उस दौर में विदेशी शोषण तो मौजूद था ही । अतः इस युग में व्यापक पैमाने पर आर्थिक पदा को अभिव्यक्ति का व्य में हुई । लोग आर्थिक-व्यवस्था में मूल परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे । विदेशी अर्थ परतंत्रता से मुक्ति पाने की कामना के साथ ही पूंजीवाद का भी विरोध हुआ । छायावादी उतराई -काव्य में शोषण के प्रति विरोध-भावना और साम्य की कामना व्यक्त हुई । परिणाम तत्पक्ष इस युग के काव्य में वर्ग-संघर्ष का चित्रण विशेष रूप से होने लगा ।

### स्वदेशी

विदेशी अर्थ-परतंत्रता से मुक्ति पाने के लिए इस युग में भी 'स्वदेशी' का आग्रह रहा । स्वदेशी आन्दोलन भारतभर युग में ही प्रारम्भ हुआ था । द्वितीय-युग में यह अत्यधिक विस्तृत हुआ और छायावाद युग में इसका व्यवहारिक रूप भी देखने लगा । स्वदेशी-आन्दोलन के फलस्वरूप देश के उद्योग-धंधों का विकास हुआ और पूंजीपति वर्ग की स्थापना बढ़ती गई । इसी निर्धन जनता और पूंजीपतियों के बीच लड़ाई बढ़ती गई । सहृदय कवियों की इस देशभक्त्य की मर्मन्तिक पीड़ा हुई और उन्होंने पूंजीवाद का विरोध कर आर्थिक आन्ति की कामना की ।

कहा जा चुका है कि इस युग में स्वदेशी की कामना तोत्रतम हो उठी थी । इस काल में चर्चा और लादी प्रचार ने स्वदेशी का रूप ले लिया था । अतः अभिव्यक्ति हिन्दी काव्य में अत्यधिक हुई है । बल्कि यों कहें कि इस युग में स्वदेशी का पर्याय लादी ही मानी जाने लगी । इसीलिए लीचन प्रसाद पाण्डेय की आकांक्षा है कि प्रत्येक घर में लादी हो, ताकि पवित्रता रहे --

कृषक रहें त्राण मुक्त सब हों शिक्षित सञ्चारिण;  
प्रतिमूर्ति को पावन कर, 'लादी' वस्तु पवित्र ।

कवियों को खादी पवित्रता का चिह्न, दुःख-दैन्य हरने वाली, साम्य की प्रतिष्ठाता, सर्वगुणों से भरपूर पद्म रानी लगता है --

क्रीमल कमल अति मंजुल मनोहर है,  
शुद्ध साधुता को सुचिता को या निसानी है ।  
दौलत प्रदानी दक्षि दारिद्र बिलानो जाहि  
बक्षता विवसता को दूर बिलानो है ।  
हीनता हेरानी दुःख दानता डुरानी सब,  
समता-स्वतंत्रता को तान मूडु तानी है ।  
सर्वगुन तानी कवि कैरव बल्लानो पट-  
पाट पटरानी यह खादी महरानी है ।<sup>१</sup>

इन्होंने खादी महात्म्य का वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया है ।  
इनके अनुसार खादी स्वतंत्रता की झुतिका, स्वराज्य की झुतिका और राष्ट्र की  
शोभा है । वह दरिद्रता को नाश करने वाली, भारत की बर्बादी मिटाने वाली,  
परतंत्रता को मारने वाली साथ ही भारत के आजादी की परिवारिका है --

पूरन स्वतंत्रता की झुतिका कौन है कैधों  
झुतिका स्वराज्य कैधों सौभा राष्ट्रवादी की ।  
कैधों दरिद्रताविनासिनी दवा है कैधों  
नासिनी है भारत की नीकी बरबादी की ।  
पाप परतंत्रता की मारिका बल्लूक कैधों,  
प्यारी परिवारिका है भारत आजादी की ।<sup>२</sup>

खादी के साथ ही चर्खे को भी लोग आर्थिक क्रान्ति का एक यशस्व  
अस्त्र मानते रहे । कारण, खादी-उत्पादन का आधार-अस्त्र चर्खा है । इसलिए  
चर्खा-महात्म्य के गुणगान द्वारा भी कवि लोगों को आर्थिक क्रान्ति के लिए प्रेरित  
करते रहे । कवि दीनदत्त का विश्वास है कि आर्थिक स्वतंत्रता के लिए यह अनिवार्य  
है --

१- खादी लहरी -- बुद्धिनाथ का कैरव, पृ० १, सं० १६२६

२- वही, पृ० ५

यदि चाहते सुख आप हैं तो शीघ्र चर्खा लीजिए ।

स्वाधीनता वार्थिक मिलेगी, दुःख चर्खा कीजिए । १

इतना ही नहीं, चर्खा वह सुदर्शन चक्र है, जिसका प्रयोग विश्वकर्मा  
गांधी ने जनता-जनार्दन के उद्धार के लिए किया --

यह चर्खा चक्र सुदर्शन है,

मनोहर जिसका दर्शन है ।

किया विश्वकर्मा गांधी ने इसका पुनः प्रचार,

दिया जनार्दन जनता के कर करने को उद्धार ।

यही सुख-स्वराज्य साधन है,

यह चर्खा चक्र सुदर्शन है । २

विदेश से प्रति वर्ष वस्त्र खरीदने के कारण, देश की सम्पत्ति  
चली जाती है । यदि चर्खा चले तो विदेशों वस्त्र नहीं खरीदना पड़े । अतः  
दरिद्रता दूर करने के लिए चर्खा द्वारा 'स्वदेशी' का आरम्भ अत्यन्त है :

चली जात परदेस अमित सम्पत्ति प्रति वर्षा,

दीन दीनता दूर करे चलि घर-घर चर्खा ।

कवि सुमित्रानन्दन पंत भी चर्खा के गीत गाते हैं उनके अनुसार चर्खा  
जीवन का सीधा साधा नुसखा है । साथ ही वह स्वदेश के धन का रक्षक है --

अम अम अम--

धूम, धूम, अम अम र चरता

कहता : मैं जन का परम रत्न,

जीवन का सीधा सा नुसखा--

अम, अम, अम ।

+ + +

१- चर्खा--दीनदत्त, पृ० ५, सन् १९२९ ई०

२- चरान-- कृष्णारायण पाण्डेय, पृ० ३५, सन् १९२४ ई०

३- चर्खा -- दीनदत्त, पृ० ६ सन् १९२९



सेवक पालक शोषित जन का,  
रदाक में स्वदेश के धन का,  
कातो है । काटो तन मन का<sup>१</sup>  
भ्रम, भ्रम, भ्रम ।

रामचरित उपाध्याय भी व्यंग्य के माध्यम से कहते हैं कि विदेशी वस्त्रों के उपयोग से देश का धन विदेश चला जायगा और सभी भारत दुःख दूर होगा --

वस्तु विदेशी का व्यवहार,  
करते रहिये बारम्बार ।  
कमी स्वदेशी वस्तु न हुना,  
हा बढ़ जायेगा दुल दुना ।<sup>१</sup>  
गम्पति जावे चली विदेश  
तब भारत को मिले न कैश --<sup>२</sup>

इस प्रकार इस युग में चर्चा 'सादी' का क वस्त्र रहा और स्वदेशी प्रचार का माध्यम चर्चा बना । स्वदेशी ग्रामोद्योग का पर्याय चर्चा को माना गया । अर्थ-परतंत्रता से मुक्ति पाने का साधन स्वदेशी वस्त्र था और इसके लिए सादी वपनाना आवश्यक था । इसीलिए इस युग के कवियों ने चरसा, सादी और स्वदेशी के गुणगान द्वारा वार्षिक क्रान्ति का वाह्वान किया ।

### वर्तमान चित्रण

वार्षिक परतंत्रता के कारण भारतीय जनता का शोषण मित्त-मित्त रीतियों से हुआ था । इस दयनीय स्थिति से जनता तड़प उठी और उसकी

१- चरसा नीत-- क्राम्या-- सुमित्रानन्दन पंत, पृ०५०-५१, सं०२००८ वि०

२- कैदा चार -- रामचरित उपाध्याय, सरस्वती, दिसम्बर १९२९, पृ०६४९

इस तड़पन की, जाह की अभिव्यक्ति कवियों ने वर्ग-चेतना के रूप में किया। कहा जा चुका है कि तत्कालीन युग में यदि एक ओर विदेशी-शोषण के प्रति आर्थिक क्रान्ति हो रही थी तो दूसरी ओर देश में औद्योगीकरण की चेतना के फलस्वरूप जिस पूँजीवाद का आविर्भाव हो रहा था, उसके प्रति भी विरोध-भावना आरम्भ हो चुका थी। हिन्दो-काव्य में भी पूँजीवाद के प्रति विभिन्न रूपों में क्रान्ति की विचारधाराएं अभिव्यक्त हुई हैं।

नाथूराम शंकर शर्मा पूँजीवाद के अत्याचारों का चित्रण करते हुए पूँजीपतियों पर व्यंग्य करते हैं --

न कंकाल का पिण्ड छोड़ा करौ  
लहू चीपड़ों का निचोड़ा करौ।  
कहो दाल यों हातियों पर दलो  
न विज्ञान फूला न विद्या फली।

तत्कालीन समाज में निर्धन जनता-शोषण के कारण अस्थि-पंजर मात्र रह गयी थी। पीड़ित होकर वह दर-ब-दर घूम रहो थी। नरेन्द्र के शर्मा ऐसी शोषित जनता का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर पूँजीवाद के प्रति क्रान्ति की भावना फैलाते हैं --

कूश कंकाल  
नसों के नोले जाल  
अस्थि-पंजर निष्प्राण,  
बून्य श्वासों के मार,  
यही हैं वे नादान  
मटकते झूल बाल,  
दीन कंकाल  
नर्म कंकाल ।<sup>१</sup>

‘बैरानाड़ी’ शीर्षक कविता में मणवतीचरण वर्मा ने शोषण के से उत्पन्न वक्रीय दशा का मार्मिक चित्रण किया है। मानव मानव नहीं रहकर पशु

जन गया है और मातारं गुलाम पैदा करती हैं । वे पैदा होते हैं और मरते हैं-  
यहो एकमात्र कारण है --

पशु बनकर नर पिस रहे जहाँ  
नारियां जन रही हैं गुलाम ,  
पैदा होना, फिर मर जाना,<sup>१</sup>  
बस यह लोगों का एक काम ।

निराला ने भी वर्ग-वैषम्य का चित्रण यत्र-तत्र किया है । उनकी  
'मिड्डा' के शीर्षक कविता शोषित मानवता का करुण और जीता-जागता चित्र  
उपस्थित करती है --

वह जाता --

दो टुक कल्ले के करता पकताता पथ पर जाता ।

पेठ पीठ दोनों मिलकर हैं एक,

चल रहा लछुटिया टैक,

मुदठी पर दाने को - भूस मिटाने को

मुंह फटी पुरानी फौली का फैलाता--

दो टुक कल्ले के करता पकताता पथ पर जाता ।<sup>२</sup>

इसी प्रकार 'दान' शीर्षक कविता में उन्होंने पुंजीपतियों का एक  
और अत्याचारी रूप प्रस्तुत किया है । वे बन्दरों को तो पुर खिलाते हैं पर मिड्डा के  
की और उलट कर <sup>तक</sup> नहीं । इस प्रकार कवि ने उनकी 'दान' मानवा पर तीखा  
व्यंग्य किया है --

फौली से पुर निकाल लिए

बढ़ते कपियों के हाथ दिए,

देता भी नहीं उधार फिर कर

जिस ओर रहा वह मिड्डा स्तर ,

१- मानव- मानवीकरण कर्मा, पृ० ७५, सन् १९४८ ई०

२- मिड्डाक -- निराला, परिमल, सं० २००७ वि०, पृ० १३३

दीनों को असीम सहन शक्ति की चर्चा मो घ करते हैं --

सह जाते हों

उत्पीड़न की क्रीड़ा सदा निरंकुश नग्न,<sup>१</sup>

हृदय तुम्हारा दुकूल होता मग्न ।

दिनकर की रचनाओं में वर्ग-वैषम्य और तीसरे रूप में चित्रित हुआ है ।

कवि उसे सहन नहीं कर सकता कि एक और कुत्तों को दूध मिले, वस्त्र मिले और बालक मूख से बाकुल ब रहें , वस्त्रहीन होकर जाड़े की रातों में मां की हड्डी से चिपक कर ठिठुरते रहें । व्याज जुकान के लिए युवतियों को लाज बेच दी जाती है और दूसरी औरमालिक तेल और फुलेलों पर पानी के समान द्रव्य बहाते हैं<sup>२</sup> । वर्ग-वैषम्य की यह स्थिति कवि से सहन नहीं हो पाती और तब वह क्रान्ति के लिए तत्पर हो उठता है --

श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, मूख बालक जड़लाते हैं,

मां की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं,

युवती के लज्जा-वसन बेच जब व्याज जुकाये जाते हैं,

मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं,<sup>२</sup>

पापी महलों का अहंकार देता तब मुझको आमंत्रण ।

‘हाहाकार’ शीर्षक कविता में शोषण के और भी अत्याचारी रूप का वर्णन कवि ने किया है और यह स्थिति उसे इतनी अप्रहय हो उठती है कि वह उस वैषम्य को समाप्त करने के लिए तत्पर होकर क्रान्ति का शब्दनाद कर उठता है --

हटो ज्यौन के मेघ, पंच से,

स्वर्ग लूटने हम आते हैं ,

‘दूध, दूध...’ जो बतल । तुम्हारा

दूध लौकिक हम आते हैं ।

१- दीन-दुर्लभान्त त्रिपाठी ‘निराशा’, पश्चिम, पृ० ४४, सं० २००७ वि०

२- हुंकार -- रामचारी सिंह दिनकर, पृ० ७९, १९५२ ई०

३- वही, पृ० २३

इस प्रकार लोक-मंगल से अनुप्राणित कवि दैन्य मिटाकर साम्य की स्थापना चाहता है ।

सुमित्रानन्दन पंत ने भी मानव-महत्त्व पर अधिक बल दिया और इसलिए वर्ग-वैषम्य के समाप्त होने की आकांक्षा व्यक्त की । धनपतियों को उन्होंने स्पष्ट नृशंस और जोक कहा --

ये नृशंस हैं ये जन के श्रमबल से पोषित,  
 दुहरे बनी, जोक जा के, धू जिनसे शोषित<sup>१</sup> ।

इस प्रकार आलोच्यकालीन कवियों ने आर्थिक-क्रान्ति के लिए एक ओर 'स्वदेशी' का नारा लगाया तो दूसरी ओर पूंजीपतियों के विरुद्ध भी आवाज उठाई ताकि वर्ग-वैषम्य दूर होकर, स्मान अर्थ तंत्र की स्थापना हो सके ।

### प्रगतिवाद युग

इस युग तक धनी और निर्धन जनता के बीच आर्थिक खाई और गहरी हो चुकी थी । साम्राज्यवादी शोषण का विरोध तो मारतेन्दु युग से ही हो रहा था, पर साम्राज्यवाद के पूंजीवादी रूप का विरोध लगभग १९३० के आरम्भ हुआ । छायावाद के पूर्वार्द्ध तक में साम्राज्यवादी शोषण के प्रति ही क्रान्ति मायना का आधिक्य था । पर उत्तरार्द्ध में प्रगतिवादी तत्त्व विकसित होने लगे और पूंजीवादी शोषण का विरोध आरम्भ हो गया । यों स्त्री क्रान्ति १९२०ई० में ही सकल हो चुकी थी और तभी से साम्यवाद का स्वर जन-जीवन में फैलने लगा था । पर लगभग एक दशक तक साम्यवाद की प्रशंसा ही होती रही थी, पूंजीवाद का विरोध उतना नहीं । १९३० के आस पास ही से पूंजीवाद का स्पष्ट विरोध आरम्भ हुआ । पर साहित्य में उसका स्पष्ट दर्शन प्रगतिवाद-युग से होता है । प्रगतिवाद से पूर्व का साहित्य, जिसमें साम्यवाद की चर्चा है, वह इस युग की पृष्ठभूमि ही है । इस प्रकार प्रगतिवाद-युग से ही साहित्य में स्पष्ट साम्यवाद का स्वर गूँजे लगा और पूंजीवादी-शोषण के प्रति विरोध स्वर फूटा ।

१- कवयित्री- सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ३१, सं० २००६ वि०

### वर्तमान चित्रण

आलोच्य-काल में पूंजीवाद के विरुद्ध क्रांति का श्लोनाद हुआ । वह पूंजीवादी चाहे विदेशी हो चाहे भारतीय । शोषण के प्रति भीषण आक्रोश और शोषित के प्रति सहानुभूति लेकर इन कवियों ने क्रांति-गान किया । शोषण का उत्पाचारो रूप इन कवियों ने उत्पन्न सफलता के साथ काव्य में चित्रित किया है । शोषकों को दृष्टि में शोषितों की बोरी की मांग विद्रोह है और अपने अमावों को पूरा करने का उनका प्रयास 'हाका' समझा जाता है --

रोटी की भी मांग किसी से, करना है विद्रोह कहावा ।

प्रिये अमावों को भी पूरा करना, 'हाका' समझा जाता ।<sup>1</sup>

सुमित्रानन्दन पंत ने वृद्ध भित्तारों के मार्मिक चित्रण के द्वारा पूंजीवाद की विभीषिका के प्रति दारोम प्रकट किया है । वृद्ध भित्तारों जब किसी के समक्ष लड़ा होकर याचना करता है, तो प्रतीत होता है कोई जानवर पिछले पैरों के बल चला जा रहा है --

मूला है कुछ पैसे पा, गुनगुना

लड़ा हो जाता वह घर

पिछले पैरों के बल उठ

जैसे कोई चल रहा जानवर<sup>2</sup> ।

झाधित मानव की हालत आज इतनी बदतर हो गई है कि वह गोबर से दाना बीनकर और कुत्ते के मुंह से रोटी छीनने को लाचार है । शिवमंगल सिंह 'सुमन' द्वारा चित्रित यह चित्र आर्थिक वैशम्य का ऐसा दृश्योद्भावक दृश्य<sup>3</sup> करता है, जो सख्त ही सख्तियों में आर्थिक-क्रान्ति के लिए उन्मीष करती है --

हंस मूख मानव बैठा

गोबर से दाने बीन रहा

और कपट कुत्ते के मुंह से

छूटी रोटी छीन रहा ।

छांच न बाहर भीतर जाती और कंठजा मुंह की जाती<sup>4</sup> ।

१-वैशम्य का दृष्ट दौड़ो-हरिकृष्ण त्रिणी, विशालनगर, फरवरी १९३६, पृ० २११

२-क्रान्ति -- सुमित्रानन्दन पंत, पृ० २६-३०

३- बीकन के दान -- शिवमंगल सिंह, 'सुमन', पृ० ७६, १९४५ ई०



इतना ही नहीं, उन्हें ज्ञाता है कि हर तरफ शोषण को विकराल ज्वाला फैली है । और इस ज्वाला में हर दिन कंकालों की आहुति पड़ती है । इस होम में रक्त क धी की तरह और हड्डी र्धन की तरह जलता है --

वाज रक्त घृत का कलता है

हड्डी का र्धन जलता है

कंकालों की आहुति पड़ती यह ऐसी मोषण विकराल ।

इस युग में द्वितीय महायुद्ध हुआ था । इस युद्ध के कारण मंहगई बहुत बढ़ गई थी । वस्तुओं के मूल्य दुगुने-तिगुने हो गये थे । साधारण जनता की क्रय-शक्ति क्षीण हो गयी थी । इस मंहगई से उत्पन्न स्थिति का चित्रण भी कवियों ने यत्र-तत्र किया । त्रिलोचन शास्त्री ने मोरइ केवट की मंहगी से उत्पन्न इस करुण दशा का चित्रण किया है --

बाहू, इस मंहगी के मारे किसी तरह जब तो

बौर नहीं खिया जाता

बौर कब तक चेली लड़ाई यह ? <sup>१</sup>

पर बेचारी भौली जनता इस विपन्नता को अपने पूर्वजन्मों का कर्म समझकर रह जाती थी । वड़े पूंजीपतियों की चालों को क्या समझती । मोरइ भी ऐसा ही था --

इस अकारण पीड़ा का मोरइ उपवार कौन सा करता

वह तो इसे पूर्व जन्म का प्रसाद कहता था

राष्ट्रों के स्वार्थ और कुटनीति

पूंजीपतियों की चालें

वह समझ तो कैसे । <sup>२</sup>

इस प्रकार तत्कालीन कवियों ने पीड़ित, शोषित, दुःखित जनता के जीवन नायिक चित्र प्रस्तुत किए । स्पष्ट ही ये चित्र हस्त सहज ही मनुष्य के हृदय में गहिरा और बाझीर उत्पन्न करने वाले हैं । इस गहिरा और तण्जित बाझीर के

१- बरली -- त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ८२, १९४५ ई०

२- वही

कारण ही मनुष्य वर्तमान नीति में परिवर्तन चाहता है, और कहने की आवश्यकता नहीं कि परिवर्तन ही क्रान्ति है ।

### मजदूर और किसान

पर इन कवियों ने दयनीय दशा के चित्रण मात्र से ही संतोष नहीं कर लिया, बल्कि क्रान्ति का शब्दनाद भी बजाया । इस शोषण के आधार हैं पूँजीपति । अतः कवियों ने उनके विनाश की कामना की है किसानों और मजदूरों का आह्वान किया है । मार्क्सवाद का गुणगान किया है ।

सौहनलाल द्विवेदी ने 'हलधरों' का आह्वान करते हुए कहा कि तुम जब जगोगे, तभी हिन्दुस्तान जोगा --

जब तक तुम न जगोगे, तब तक  
नहीं जोगा हिन्दुस्तान,  
हिन्दुस्तान क्या है तुममें  
क्या तुम हो इससे अनजान ?

कतना ही नहीं, वे जागे उसकी शक्तियों से उसे और भी परिचित करते हुए कहते हैं कि तुम्हारे हो कल पर शासन चलते हैं । तुम्हें मालूम नहीं क्या कि तुम्हारे हो धन पर सिंहासन भी निर्भर है --

तुम्हें नहीं क्या ज्ञात ? तुम्हारे  
कल पर चलते हैं शासन,  
तुम्हें नहीं क्या ज्ञात ? तुम्हारे  
धन पर निर्भर सिंहासन ।

मजदूरों को ज्ञाते हुए भी वे उसे शिव बताते हैं, जो अपने सिर पर बाकास लेकर घूमा करता है । जागे वे उसे प्रलयकर महेश कहते हुए तांडव करने को कहते हैं ताकि अत्याचारों का ध्वंस होकर फिर मंगलमय का सृजन हो सके --

१- हलधर है-- सौहनलाल द्विवेदी, युगाधार, पृ० ३३, सं० २००१ वि०

२- वही, पृ० ३४

मजदूर । मुजायें वे तेरी  
मजदूर शक्ति तेरी महान  
धूमा करता तू महादेव ।  
सिर पर लेकर के आस्मान ।

+ +

तू ब्रह्मा विष्णु रहा सदैव  
तू है महेश प्रलयकर फिर  
हो तेरा तांडव शंभु । बाज  
हो ध्वंस, सृजन मंगलकर फिर ।

शिवमंगल सिंह सुन भी मजदूरों और किसानों को निमंत्रित करते हैं  
कि तुम्हारी गरजन से बाज प्रलय हो जायगो । शोषकों का नाश हो जायगा ।  
वत्याचारियों की छाती पर चढ़कर तुम बागे बड़े चलो --

तुम गरजो बाज प्रलय होगी  
शोषक वर्गों की नाश होगी  
दुनिया के कोने-कोने से  
मजदूरों की जय जय होगी

वत्याचारी की छाती पर तुम चढ़े चलो तुम बड़े चलो ।  
मजदूर किसानों बड़े चलो ।

रामदयाल पाण्डेय के भी हलवर किसानों की सम्पूर्ण झुगल को  
हिलाने के लिए निमन्त्रण देते हैं, ताकि पाप का पीछा डुल जाए --

चलो दल के दल, हल के साथ, हिलाने को समूह झुगल,  
औ हंसिया डुरपी का जोर लौलें को पापों की पील ।

सुमित्रानन्दन पंत ने भी आजीवियों की स्तुति की है । उन्हें विश्वास  
है कि आजीवी ही लोक क्रान्ति का वरप्रद है --

१- मजदूर -- लोहनलाल त्रिवेदी, आवाज, पृ० ३८-३९, सं० २००१ वि०

२- जीवन के गान -- शिवमंगल सिंह सुन, पृ० ८४, १२४५ ई०

३- गण ध्वजा -- रामदयाल पाण्डेय, पृ० १७, सं० २००० वि०

वह पवित्र है : वह जग के कर्म से पोषित  
वह निर्माता : श्रेणि, वर्गधन, बल से शोषित

+ + +

लोक क्रांति का अग्रदूत, वर वीर, जन्माकृत  
नव्य सम्यक्ता का उन्नायक, शासक, शासित

चिर पवित्र वह : मय, जन्माय, घृणा से पालित,  
जीवन का शिल्पी, पावन श्रम से प्रक्षालित ।

बालकृष्ण शर्मा नवीन भी क्रांति के प्रसूत गायकों में रहे हैं । वे भी  
नगे-भूतों को जागने के लिए कहते हैं --

जागो, मेरे मानव, जिनके  
हाथ-पांव हैं सूखे-सूखे,  
जागो नरककाल करौड़ों  
जागो मेरे नगे-भूत ।

### साम्यवाद

शोषित वर्ग के प्रति यह भावना साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण प्रकट हो रही थी । साम्यवाद का उदय मार्क्स के द्वारा हुआ था । मार्क्सवादी पूंजीवाद का विरोधी है । उसके अनुसार मनुष्य-मनुष्य में आर्थिक समानता होनी चाहिए । प्रगतिवाद-युग में हिन्दी कवियों ने बहुतायत से मार्क्सवादी विचारधारा को अपनाया । कारण, आर्थिक-क्रान्ति के क्षेत्र में मार्क्सवाद एक बहुत बड़ी देन थी । इसीलिए हिन्दी-कवियों ने भी मार्क्स और मार्क्सवाद का गुणगान किया । साथ ही साम्यवाद से प्रभावित प्रगतिवादी कवियों ने स्पष्ट स्वरों में इस पूंजीवाद को नष्ट करने की बात कही ।

१- कबीरी --- सुविज्ञानम्भन पंत, युगवाणी, तृतीय संस्करण

२- आद्य क्रान्ति का स्रोत क्या रहा --- बालकृष्ण शर्मा नवीन, एक विषयाधी जनम के,

पृ० ४७८, १९६४ ई०

सुमित्रानन्दन पंत ने 'माक्स' की प्रशस्ति में कहा --

वर्गहीन सामाजिकता देगी सबको सम साधन ,  
 प्रुरित होंगे जन के नव जीवन के निखिल प्रयोजन ।  
 दिग् दिगंत में व्याप्त, निखिल युग युग का चिर गौरव हर  
 जन संस्कृति का नव विराट् प्रासाद उठेगा भू पर ।  
 धन्य माक्स ! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय क्षितिज पर,  
 तुम त्रिनेत्र के ज्ञान-चटु से प्रकट हुए प्रलयकर ।

दिनकर ने भी दिल्ली और मास्को में साम्यवाद की संस्तुति की है । वह साम्यवाद को अमरज्ञान्ति की विधायिका मानते हैं और वह नए युग की मवानी है, जो दलित, दुषित, पीड़ित मानवता का उद्धार करेंगे--

जय विधायिक अमर ज्ञान्ति की । अरुण देश की रानी ।  
 रक्त-कुसुम-धारिणि । जलारिणि । जय नव शिवे । मवानो ।  
 अरुण विश्व की काली, जय हो,  
 लाल सितारोंवाली, जय हो,  
 दलित, कुमुदा, विषण्ण मनुज की,  
 शिला रुद्र मतवाली, जय हो ।

निराला भी साम्यवाद के आकांक्षी हैं । उन्हें विश्वास है कि सामाजिक वैषम्य एक दिन समाप्त हो जाएगा । क्मीरों की हवेली किसानों को पाठशाला बन जाएगी । बौबी, पासी, चमार, तेली, सभी अक्षर दूर कर एक पाठ पढ़ेंगे --

जाब क्मीरों की हवेली  
 किसानों की होगी पाठशाला,  
 बौबी, पासी, चमार, तेली  
 लौलें खैर का ताड़ा,  
 एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछावों ।

१- माक्स के प्रति--सुमित्रानन्दन पंत, उपपद्य, पृ०२६, सं०२००६ वि०

२- दिल्ली और मास्को --दिनकर, सामवेनी, पृ०५६, १९४६ ई०

३- देश--सुमित्रानन्दन त्रिपाठी 'निराला' पृ०७७, १९६२ ई०

बालकृष्ण शर्मा नवीन 'निर्धन' की लाचारी देखकर जगपति का टट्टा घोंटने की आकांक्षा व्यक्त करते हैं। मनुष्य को झूठे पैसे चाटते देखकर वे ड्राव्य हो उठते हैं। वे सोचते हैं, क्यों नहीं ऐसी दुनिया को आग लगा दिया जाय --

और चाटते झूठे पैसे जिस दिन मैंने देखा नर को

उस दिन सोचा : क्यों न लगा दूँ आग आज इस दुनिया मरकों ?

यह भी सोचा : क्यों न टट्टा घोंटा जाय स्वयं जगपति का ?

जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया उस घृणित विकृति का ।

इन्हें इतने से ही संतोष नहीं है। वे शौचिनों को विद्रोह के लिए ललकारते हैं। इन्हें विश्वास है कि इन पीड़ित जनों में शक्ति का अलण्ड माण्डार है। इसलिए वे उनका आह्वान करते हैं कि अपने हुंकारों से जल-थल मर दे, अनाचार में आग लगा दे --

वो भिल्लम, और पराजित, जो मजदूर, और विरहोहित,

तू अलण्ड माण्डार शक्ति का, जाग, और निद्रा-सम्प्लोहित,

प्राणों को तड़पाने वाली हुंकारों से जल-थल मर दे,

अनाचार के अम्बारों में अपना ज्वलित फुलीता धर दे ।

पूंजीवाद का विरोध न होता रहा, क्योंकि पूंजीवाद का विनाश ही साम्यवाद लाएगा। देश की आर्थिक दुर्दशा का कारण पूंजीवाद की मुनाफा-तोरी है। हमेशा बहादुर सिंह काले बाज़ार का चित्रण करते हुए कहते हैं --

भूत ....

अनाज ....

मुनाफाखोर

अनाजखोर का

हिप्पा-सा निर्जन में

बैरा बाजार .... ।

---

१- झूठे पैसे—बालकृष्ण शर्मा नवीन, हम विषपायी जन के, पृ० ४६४



शिवमंगल सिंह सुमन मेहनतकशों की जीत के पदापती है । उन्होंने  
आर्थिक क्रांति का अत्यन्त तीव्र स्वरूप उपस्थित किया है --

मेहनत कश की मेहनत होगी जग का एक सहारा ।

मुट्ठी बांध कहें हम सब सारा विश्व हमारा ।

इस जागृति के स्वर में जन-जन-कण-कण आज शरीक है<sup>१</sup> ।

उदयशंकर मट्ट को लगता है कि विश्वशान्ति क्रान्ति द्वारा ही मिलेगी ।  
कारण, मूल और अशान्ति की समस्या क्रान्ति ही सुलझा सकेगी और तब संसार  
में शान्ति की स्थापना हो सकेगी --

मूल है, अशान्ति है, युद्ध और क्रान्ति है,

क्रान्ति विश्वशान्ति है -- हो न तु निर्बल ?<sup>२</sup>

सुमन इसी क्रान्ति को परिवर्तन कहते हैं । हम परिवर्तन से हो उत्कर्ष  
होगा । इसलिए नंगे-मिस्मंगों की टोली नवीन उत्साह से मर कर शोषकों के प्रति  
विरोधी आवाज उठाती है --

नयनों में नव उत्साह लिए

नंगों मिस्मंगों की टोली

शोषक जग के प्रति बोल रही

कुह-कुह परिवर्तित, सी बौली

मानव जीवन ही परिवर्तन परिवर्तन ही उत्कर्ष<sup>३</sup> सै ।

जाया है नूतन वर्ष सै ।

कैप्टेन पूंजीपतियों के विरुद्ध घुणा के गान गाते हैं व वे उन सत्ता-  
धारियों को छुकारते हैं, जो महलों में बैठकर आदेश देते हैं । शिशु के मरने की  
परवाह नहीं रहती और बाछों को सींचकर पकड़ मंगवाते हैं । ऐसे सत्ताधारी निर्बल  
के घर की मुट्ठी बान तक नहीं देख सकते --

१- बर्लिन अब नक़दीक है -- सुमन , वस, पृ० ६६, १९४१

२- कुनबीप--उदयशंकर मट्ट, पृ० ६, सं० २००१ वि०

३- घुणा का गान-- कैप्टेन, उत्कल , पृ० ५२, स० १९४६

तुम

तुम जो महलों में बैठे दे सकते हो आदेश,  
मरने दो बच्चे, ले आओ खोंच फाड़ कर केश ।  
नहीं देख सकते निर्धन के घर दो मुदड़ी धान  
सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान <sup>१</sup> ।

नरेन्द्र शर्मा हथौड़ा और दरांतीचारी मजदूरों का आह्वान करते हैं  
और उनके अधिकारों को बताते हैं । उनके अनुसार वे ही दुनिया के मालिक हैं,  
जो परिश्रम करते हैं --

आजो सब मेहनतकश साथी  
लिये हथौड़ा और दरांती ।  
जो मेहनत से पैदा करते  
मालिक हैं वे दुनिया भर के

तत्कालीन कवियों को दृढ़ विश्वास है कि एक दिन ज़माना बदल  
जाएगा । वह मूखों और नंगों से कहता है कि ज़ा का यह जनाचारी विधान अवश्य  
फलट जाएगा --

बदलेगा--

बदलेगा ज़माना बदलेगा

बदलेगा ।

कह दो मूखों और नंगों से

फलटेगा --

फलटेगा इस ज़ा का विधान

फलटेगा --

बदलेगा, ज़माना बदलेगा । <sup>२</sup>

और भी कवि का विश्वास है कि जब पुंजीपति निर्धन की रोटी और  
हज्जत नहीं छूट सकेगा, उसका आस ठोठ जाएगा । पर इसके लिए मजदूरों को उसकी

१- घृणा का गान -- कश्यप, इत्यल्लू, पृ० ५२, १९४६ ई०

२- बदलेगा ज़माना -- रामेश्वर उपाध्याय -- ईस, पृ० ६१६, सितम्बर १९४८ ई०

कीमत जुकानो होगी । रक्त की नदी बहानो होगी । और तब इस सड़े-गले शासन-विधान को ठोकर लैगो । पर इसके लिए साम्यवाद का प्रचार आवश्यक है, क्योंकि वही वरुण ज्योति है और उसके साथ ही वाशा सूर्य का उदय होगा--

नहीं लूट सकेगा पूंजीपति  
निर्धन की रौटी वो इज्जत  
डौलगा पूंजी का जासन  
डौलगा--

बदलेगा ज़माना, बदलेगा ।

किन्तु,

शोणित की नदी बहानो है  
कीमत मजदूर जुकानो है  
इस सड़े गले शासन-विधान  
को ठोकर एक लगानी है  
निकलेगा--

उस वरुण ज्योति के साथ शोघ्र  
वाशा का सूरज निकलेगा ।

१९४७ में भारत स्वतंत्र हो गया था । विदेशी शासन से उसे मुक्ति मिल गयी थी । तब: विदेशी धर्म-परतंत्रता भी नहीं रह गयी थी । पर पूंजीवाद की समस्या क्यों-की-त्यों की हुई थी । इसीलिए ये कवि पूंजीवादी व्यवस्था के नाश की कामना अपनी रचनाओं में करते रहे । जैसा कि उपर्युक्त उद्धृत उदाहरण से स्पष्ट है ।

इस प्रकार इन कवियों ने पूंजीवाद के नाश के लिए क्रान्ति का आह्वान किया और साम्यवाद की स्थापना चाही, क्योंकि तभी आर्थिक क्रान्ति की सफलता का लक्ष्य पूरा होगा । इसीलिए इस युग के हिन्दी काव्य में आर्थिक क्रान्ति का ऊँचा अत्यन्त तीव्र रूप में उभरा । कवि पूंजीवादी शोषण के विरोध में मजदूरों, किसानों, शोषितों का गुणगान करते रहे और साथ ही उन्हें क्रान्ति के लिए भी आह्वान करते रहे ।

-०-

१- बदलेगा ज़माना -- रामेश्वर उपाध्याय, हंस, सितम्बर, १९४८, पृष्ठ ६१६

उपसंहार

### उपसंहार

सम्पूर्ण विवेक के बाद प्रस्तुत प्रबन्ध के उपसंहार की अपेक्षा है। उपसंहार के रूप में प्रस्तुत तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं।

'क्रान्ति' शब्द का विस्तार विभिन्न विचारकों के अनुसार विभिन्न रूपों में है। पर इस शब्द के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि क्रान्ति प्राचीन के स्यान पर नवीन परिवर्तन को चोखित करती है। दूसरे शब्दों में परिवर्तन क्रान्ति का पर्याय है। जीवन में परिवर्तन की आकांक्षा स्वाभाविक है। मनुष्य नवीनता का सदा से प्रेमी रहा है। इस नवीन को प्राप्त करने की आकांक्षा ही उसे क्रान्ति की प्रेरणा देती है।

क्रान्ति की मूल प्रेरणा असंतोष है। इस असंतोष का कारण असमानता, उत्पीड़न, अत्याचार, झूठा आदि होते हैं। ये स्थितियाँ राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में या किसी भी एक क्षेत्र में हो सकती हैं।

क्रान्ति राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर होती है। एक राष्ट्र या जाति की समस्या ही क्रान्ति की प्रेरक होती है। क्रान्ति की मूलभावना मानवतावादी दृष्टि कही जा सकती है। कारण, मानवता जब अनेक प्रकार के शोषण से पीड़ित होती है, तब उसके उद्धार के लिए क्रान्ति का सहारा लिया जाता है। इसीलिए क्रान्ति की परिणति जन-कल्याण के कार्यों में होती है।

क्रान्ति मात्र हिंसा के माध्यम से ही नहीं होती, बल्कि अहिंसक आन्दोलन द्वारा भी होती है। अहिंसक क्रान्ति सशस्त्र क्रान्ति से कम तेज और प्रभावशाली नहीं है। भारत में अहिंसक क्रान्ति का ताजा उदाहरण स्पष्ट है। अहिंसक क्रान्तिवादी वैचारिक परिवर्तन, आग्रह, आन्दोलन, सहिष्णुता, त्याग आदि का सहारा लेकर अपने उद्देश्य की ओर बढ़ते हैं। अहिंसक क्रान्ति द्वारा वास्तव परिवर्तन

के साथ ही आन्तरिक परिवर्तन भी सम्भव है। संक्षेप में अहिंसक क्रांति अधिक, विस्तृत, प्रभावशाली और टिकाऊ है।

कुछ लोग सुधार को भी क्रांति के अन्तर्गत लेते हैं। पर यह उचित नहीं। सुधार द्वारा शोषण के विरुद्ध एक सीमा तक आंशिक परिवर्तन सम्भव है, पर क्रांति ऐसा परिवर्तन नहीं। वह तो दोषमयी व्यवस्था को पूर्णतः नष्ट कर नवीन को स्थापना चाहती है।

इस प्रकार क्रांति एक मानसिक चेतना है, जो अहिंसात्मक या अहिंसात्मक विरोधों द्वारा वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध प्रकट होती है। और वर्तमान परिवर्तन कर नवीन को स्थापना करती है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के विवेच्य विषय की सीमा सन् १८५० से १९५० तक में आकर है। अतः इस अवधि के परिस्थितियों को भी विवेचना अपेक्षित रही। कारण, परिस्थितियाँ ही क्रांति के उदय और विकास का कारण होती हैं। आधुनिक साहित्य युग-बोध से उद्भूत है। अतः युगोन् परिस्थितियों का क्रांति - मानना पर क्या प्रभाव पड़ा, उसका सांगोपांग विवेचन किया गया है।

राजनीतिक दृष्टि से विवेच्य-काल राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष का काल रहा है। देश पर अंगरेजों का शासन था। उनके शोषण की मात्रा असह्य होने लगी थी। इसलिए जन-मानस में उसके विरुद्ध क्रांति की चेतना फैली। हिन्दी-काव्य में भारतेन्दु युग से प्रातिवाद युग तक पीड़ा परक राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ है।

सामाजिक क्रांति की उद्भावना में सामाजिक परिस्थितियाँ प्रेरक रहीं। १९ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध-कई-कई धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलन हुए, जिनके फलस्वरूप भारतीय समाज में भी परिवर्तन हुआ। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में १८७५ ई० में ब्राह्मसमाज की स्थापना भी महत्वपूर्ण घटना रही। इस समय समाज में वर्ण-व्यवस्था, जाति, उपजाति, ब्रह्माहृत, परदा-प्रथा, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहू-विवाह आदि कई प्रकार की रूढ़ियाँ और कुरीतियाँ व्याप्त थीं। इनके विरुद्ध क्रांति आरम्भ हुई। पारश्वात्य शिक्षा और सम्पर्क भी भारतीय समाज के परिवर्तन में सहायक रहे। महात्मा गांधी के आगमन से इन प्रथाओं के विरुद्ध क्रांति को और भी बल मिला।



अठारहवीं शताब्दी का धर्म पूर्णतः रुढ़िग्रस्त हो चुका था। उसमें सजीवता और सप्राणता नहीं रह गयी थी। धर्म का रूप विकृत होने लगा था। उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध से पार्श्वात्य शिक्षा तथा नवीन संस्थाओं के प्रभाव से धार्मिक विकृतियों की ओर भी प्रबुद्ध व्यक्तियों का ध्यान गया। वार्य समाज ने धर्म की युगानुकूल वैज्ञानिक व्याख्या का प्रयत्न किया। धियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना से भी धार्मिक परिस्थितियां प्रभावित हुईं। द्विवेदी-युग में धार्मिक परिस्थितियां साम्प्रदायिकता से जौत-प्रौत रहीं। अंगरेजों ने भी अपनी कुटिल नीति द्वारा साम्प्रदायिकता को बल दिया। हायावाद युग में भी साम्प्रदायिकता की भावना रही। वार्य समाज भी हिन्दुत्व की भाव-भूमि पर आधारित था। द्विवेदी-युग और हायावाद-युग दोनों में धार्मिक परिस्थितियां वार्य समाज से अत्यन्त प्रभावित रहीं। महात्मा गांधी द्वारा भी धार्मिक क्षेत्र में अद्भुत क्रान्ति हुई। उन्होंने अहिंसा का प्रयोग व्यावहारिक क्षेत्रों में किया। प्रातिवाद-युग जो साम्यवाद से प्रभावित था, धर्म का रूप पूर्णतः मौक्तिक धरातल पर स्थापित होने लगा। इससे ईश्वर का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया।

आलोच्य-काल की वार्थिक परिस्थितियां विषम रहीं। अंगरेज भारत के वार्थिक शोषण में संलग्न रहे। अपनी कुटिल नीति द्वारा भारतीय उद्योग-धंधों को नष्ट करने लगे। अकाल के कारण भी जनता की वार्थिक स्थिति बड़ी बुराव हो रही थी। इसके साथ ही तरह-तरह के टैक्सों द्वारा भी अंगरेज भारतीय जनता का शोषण कर रहे थे। द्विवेदी-युग में भी भारतीय उद्योग-धंधों को नष्ट करने का क्रम जारी रहा। भारत के कच्चे माल से विदेशी उत्पादन बढ़ता रहा। फिर ये विदेशी वस्तुएं भारत में ही मंहंगे दामों में बिकती थीं। संक्षेप में, अंगरेजों का प्रधान उद्देश्य भारत का वार्थिक शोषण था। राजनीतिक चेतना के साथ ही वार्थिक दशा की ओर भी मनस्वियों का ध्यान गया था। लोगों ने देखा कि विदेशी-वस्तुओं के कारण ही भारतीय उद्योगधंधे नष्ट हो गए हैं। तब उन्होंने स्वदेशी का नारा लगाया। परिणामस्वरूप विदेशी वस्तुओं की होली जली। गांधी जी की प्रेरणा से किसानों में भी जागृति फैली। हायावाद युग में पूंजीवाद का आगमन हुआ। पूंजीवाद के आगमन के साथ ही भारतीय औद्योगिक-विकास प्रारम्भ हुआ। इसमें भी अंगरेजों की कुटनीति थी। पर उन्होंने भारतीय पूंजीवाद को भी एक सीमा तक ही बढ़ने दिया। ऐसे पूंजीवादी भी अस्तुष्ट होकर सरकार के विरुद्ध हो गए। कम्युनिस्ट पार्टी ने १९२८ के आस पास मजदूर और किसानों में फैला मरी।

मजदूरों ने कई हड़तालों की। इस काल में ही करबन्दी आन्दोलन शुरू हुआ और नमक कानून भंग किया गया। प्रगतिवाद-युग में आर्थिक स्थिति और दयनीय रही। महा-युद्ध के आर्थिक बोझ से भी देश को भारी क्षति पहुंची। मंहगी भी बढ़ गई थी। मजदूर-वर्ग का विकास हुआ। उनमें वर्ग-चेतना और प्रखर हो गई थी। वे संगठन द्वारा आर्थिक शोषण का विरोध करने लगे। १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद, भारत के विभाजन से अनेक आर्थिक अव्यवस्थायें उत्पन्न हुईं। मुद्रास्फीति के अनेक दुष्परिणाम हुए। विभाजन के कारण चावल, गेहूं, कपास और पटसन जैसे कच्चे मालों की कमी हो गई। पाकिस्तान से लाखों विस्थापित आए। इनके पुनर्वास और सहायता देने का विषय दायित्व भारत सरकार पर पड़ा। इन सब कारणों से आर्थिक स्थिति और दयनीय हो उठी। इस प्रकार विवेक्य-काल में भारत आर्थिक विपन्नता का भी शिकार रहा।

उपर्युक्त परिस्थितियां भारत में क्रांति-भावना के उद्भव और विकास का कारण रही हैं। कुछ जालोचकों ने अंग्रेजों के सम्पर्क को और अंग्रेजी शिक्षा को भारत में राष्ट्रीय - चेतना के उदय का कारण माना है। पर किसी जातिमात्र के सम्पर्क से क्रांति-भावना का उदय सम्भव नहीं। क्रान्ति असंतोष की छुटन से पैदा होती है। और अत्याचार, उत्पीड़न की वृद्धि से तीव्रतर होती जाती है। अतः क्रांति-भावना अंग्रेजों के सम्पर्क से उत्पन्न नहीं हुई, हां उदीप्त अवश्य हुई है। कार्य-समाज, रामकृष्णमिश्र, धियोसोफिकल सोसाइटी आदि ने पुनर्जागरण की प्रेरणा देकर क्रांति को अधिक सक्रिय बनाया। धार्मिक और सामाजिक क्रांति के साथ ही इन संस्थाओं द्वारा राजनीतिक क्रांति भी अधिक प्रबल हुई।

प्रारम्भ में भारत की क्रांति का रूप सुधारमुखक रहा। राजनीतिक क्षेत्र में कांग्रेस और अन्य संस्थाओं ने सुधार के लिए निवेदन और प्रार्थना किए। धार्मिक-सामाजिक क्षेत्र में भी यही स्थिति रही। पर सुधार की इस मांग में क्रांति-मूलक भावना भी निहित रही। सुधारों की इस मांग को हम क्रांति की पृष्ठभूमि कह सकते हैं। क्रांति और राष्ट्रीयता के प्रारम्भिक काल में इसी तरह की भावना पैदा होती है। सरकार मांगों और सुधारों की राह में जितनी ही अधिक बाधा उपस्थित करती है, क्रांति उतनी ही अधिक तीव्र होती जाती है। अतः यह सोचना

सही नहीं कि भारतेंदु युगीन राष्ट्रीय चेतना में क्रान्ति के तत्त्व और क्रान्तिमूलक भावना नहीं है। हाँ, भारतेंदु-युग में क्रान्ति का उग्र रूप प्रकट नहीं हुआ। कारण, परिस्थितियाँ उस योग्य नहीं थीं। ५७ की क्रान्ति में बेरहमीपूर्वक क्रान्तिकारियों का दमन हुआ था। क्रान्ति के उपकरणों का अभाव था। मानसिक दृष्टि से राष्ट्र तोड़ और उग्र विरोध के लिए प्रस्तुत नहीं था।

दिन-प्रतिदिन भारतीय जनता अपनी वर्तमान परिस्थितियों से अधिकाधिक असंतुष्ट होती गई। और असंतोष के साथ ही साथ राष्ट्रीय-चेतना भी तीव्र होती गई। इसलिए द्विवेदी-युग में क्रान्ति स्पष्ट और उग्र रूप में अभिव्यक्त होने लगी। शासकों द्वारा इसका विरोध दमन द्वारा हुआ। पर दमन होने से क्रान्ति उग्रतर होती गई। ब्रिटिश शासन की क्षमात्मक और कांग्रेस की उदारवादी नीति की प्रतिक्रिया से भारतीय नवयुवकों में क्रान्तिवाद और आतंकवाद का उदय हुआ। इनके आतंकवादी कार्यों से भी राष्ट्रीय क्रान्ति अधिक तीव्र और शक्तिशाली बनी।

महात्मा गांधी के राजनीतिक दौत्र में अवतीर्ण होते हो, भावना और व्यापक तथा उग्र हुई। यह समय हिन्दी साहित्य का हायावाद-युग था। उन्होंने क्रान्ति के लिए सत्याग्रह और अहिंसा को अस्त्र बनाया। अंग्रेजी तोपों का सामना उन्होंने इन्हीं अस्त्रों से किया। इससे सामान्य जनता में क्रान्ति की अपूर्व लहर फैल गई। हायावाद-युग के उत्तरार्द्ध में राजनीतिक चेतना में समाजवादी तत्त्व उभरने लगे। समाजवादी विचारधारा के प्रभाव से राजनीतिक और आर्थिक समानता की चेतना अधिक तीव्र हुई। पूँजीवाद का घोर विरोध हुआ। सामाजिक क्रान्ति भी अधिक संघटित हुई।

प्रातिवाद-युग में राष्ट्रीय क्रान्ति प्रसर होती गई। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी दिशाओं में क्रान्ति अबाध रूप से मिलती है। यह क्रान्ति जन-संघर्ष के रूप में प्रकट हुई। मजदूर वर्ग की संघर्ष नीति से क्रान्ति को नई प्रेरणा मिली। संघर्ष अधिक होने से विरोध में तीव्रता आयी। इस तीव्रता से ब्रिटेन भारत को स्वतंत्र करने की बाध्य हुआ।

स्वातंत्र्योत्तर काल में सामाजिक, आर्थिक दिशाओं में प्रगति के कार्य प्रारम्भ हुए। इसी पुराने मुद्दे पर अनेक विचारों से प्राचीन सामाजिक, मान्यताओं में परिवर्तन किया गया। इस प्रकार स्वतंत्र भारत में वैचारिक, आर्थिक, सामाजिक और

सामाजिक क्रांतियों के स्वरूप प्रकट हुए ।

उपर्युक्त परिस्थितियों से उद्भूत जो क्रांति-भावना सम्पूर्ण राष्ट्र में फैली, उसका प्रभाव हिन्दी-काव्य पर भी पड़ा । प्रबुद्ध कवि क्रांति-भावना से प्रभावित होकर उसकी काव्यगत अभिव्यक्ति करते रहे । राजनीतिक क्रांति को उद्बुद्ध करने के लिए कवियों ने तत्सम्बन्धी राजनीतिक क्रांति को विचारधाराओं को अपने काव्य में स्वर दिया । गौरव और अधिकार की भावना से अभिभूत राष्ट्रीय-क्रांति की विचारधारारं इस काल में दो रूपों में व्यक्त हुई । हीनता से भरे जन-जीवन में प्राचीन गरिमा की स्मृति जागी । अतः प्राचीन आदर्शों का गौरवपूर्ण अतीत का चित्रण कर इन कवियों ने वर्तमान के प्रति और दायिम, असंतोष उत्पन्न किया । असंतोष से क्रांति की भावना पैदा होती है । गौरवपूर्ण अतीत के चित्रण के साथ ही आदर्श चरित्रों को स्तुति भी हुई । इन आदर्श-चरित्रों ने राष्ट्रीय-चेतना को और अधिक बल दिया ।

राष्ट्रीय-क्रांति को और भी उदीप्त करने के लिए कवियों ने मातृभूमि का देवीकरण भी किया । माता के प्रति मनुष्य की असीम श्रद्धा होती है । उसकी पीड़ा देन्य और बन्धन देखकर मनुष्य सहन नहीं कर पाता । अतः राष्ट्र को माता का रूप देने से उसके प्रति अत्यधिक श्रद्धा भावना बल उत्पन्न होती है और मातृत्व के उदासीकरण से ही देवी-रूप की स्थापना होती है । अतः मातृभूमि के देवीकरण द्वारा भी कवियों ने राष्ट्रीय-क्रांति को उभारा ।

क्रांति-भावना के प्रसार के लिए उसे तीव्र करने के लिए कवियों ने वर्तमान परिस्थितियों का चित्रण भी किया । उन्होंने शासक और शोषित के विषेद को बिताया । शोषितों के हृदय में गौरव और अधिकार की चेतना जगाई । इस चेतना के कारण शोषित वर्ग शोषण, अस्मानता, अत्याचार आदि का विरोधी हो गया । उनमें क्रांति-भावना प्रकट हुई । परिस्थितियों के अनुरूप क्रांति-भावना भी विभिन्न रूपों में चित्रित होती रही । मार्लेन्दु-युग की राजनीतिक क्रांति के विचारों में उन्नता नहीं है । वह करुणापूर्ण अधिक है । उस युग की राष्ट्रीयता समकालीतावादी कह सरकार के सुधारों के लिए समकालीता चाहते थे । डा० केसरीनारायण हुक्ल के अनुसार भी "मार्लेन्दु-युग के साहित्यकारों को सामंजस्यवादी कह सकते हैं" पर

१- साहित्यिक वि काव्यबारा का सांस्कृतिक ज्ञात--डा० केसरीनारायण हुक्ल, पृ० ६६, सं० २००४ वि०

मांगों की पूर्ति न होने और अत्याचार, शोषण की बढ़ती से यह क्रांति-भावना क्रमशः उग्रतर होती गई और द्विवेदी-युगीन के काव्य क्रायावाद-युग के काव्य में यह उग्रतर रूप में प्रकट हुई। प्रगतिवाद युग में यह चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी और १९४७ में स्वतंत्रता के पश्चात् क्रांति की राजनीतिक विचारधाराएं विराम पर आ गयीं।

राजनीतिक विचारधाराओं के साथ ही सामाजिक और धार्मिक क्रांति की विचारधाराएं भी आधुनिक हिन्दी काव्य में अभिव्यक्त हुईं। सामाजिक रुढ़ियों के उन्मूलन के लिए कवियों ने समाज में वर्तमान दोषों का यथार्थ चित्रण किया। कहीं व्यंग्य के माध्यम से कहीं करुणापूर्ण चित्रण द्वारा तो कहीं विरोध द्वारा उन्होंने वर्तमान सामाजिक और धार्मिक रुढ़ियों, कुरीतियों का चित्रण कर, उनके विरुद्ध क्रांति-भावना पुष्ट की।

तत्कालीन समाज में नारी-जाति जो समाज का आधा अंग है, अत्यन्त दीनारस्या में थी। अतः इनके उद्धार के लिए क्रांति-भावना विशेषरूप में प्रकट होती रही। बाल-विवाह, बहु-विवाह, विधवा-विवाह, दहेज, पदां-प्रथा, अशिक्षा आदि सभी के विरुद्ध क्रांति के विचार व्यक्त हुए। मारतेन्दु-युग से प्रगतिवाद-युग तक क्रमशः नारी जाति की स्थिति में विकास होता रहा। इस विकास के क्रमानुसार ही नारी-जाति के लिए व्यक्त क्रांति-भावना भी परिवर्तित होती रही।

नारी-जाति और कुशाकृत के बन्धन से भी समाज पतित हो रहा था। इससे उत्पन्न करुणाजनक परिस्थितियों के चित्रण द्वारा कवियों ने इन बन्धनों का भी उन्मूलन किया। इसी प्रकार धार्मिक परिवर्तन के लिए भी इन्होंने आवाज उठाई। मन्दिरों, पुजारियों में फैले अनाचार का विरोध करने के लिए उनका यथार्थ चित्रण किया। विज्ञान से प्रभावित प्रगतिवाद युग कर्म को मानवीय बरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिए पूर्व आदर्शों के प्रति क्रांतिपरक विचार अभिव्यक्त होते रहे।

शिवव्य-कालीन भारत आर्थिक शोषण से भी उत्पीड़ित था। इस शोषण के विरुद्ध क्रांतिपरक विचारों की काव्यगत अभिव्यक्ति हुई। आर्थिक



उन्नयन के लिए क्रान्ति की आवश्यकता थी। इसके लिए कवियों ने आर्थिक शोषण के विरुद्ध आक्रोश उत्पन्न किया। मारतेन्दु-युग के काव्य में आर्थिक शोषण, आर्थिक विषमता और उसके निवारण के उपाय विशेषरूप से प्रकट हुए। मध्यमवर्ग की जीविका का गंभीर व्यापार था। अंगरेजों की कुटिल नीति द्वारा भारतीय व्यापार को बहुत नुकसान पहुंचा था। अतः इस व्यापारिक नीति का भी चित्रण हुआ। आर्थिक शोषण के लिए अंग्रेजों द्वारा प्रयुक्त दूसरा अस्त्र टैक्स था। इस टैक्स के विरुद्ध भी कवियों ने नारे लगाए। साथ ही आर्थिक शोषण से मुक्ति पाने के लिए कवियों ने 'स्वदेशी' का नारा लगाया।

द्विवेदी-युग तक पूंजीवाद का उदय भी होने लगा था। अतः इस युग के कवियों ने पूंजीवाद का विरोध भी किया। अन्य प्रवृत्तियां पूर्वयुग की तरह ही रहीं। हायावाद-युग में 'स्वदेशी' की मांग अत्यन्त तीव्र हो गई थी। अतः काव्य में भी तत्परक क्रांति - भावना का व्यापक चित्रण मिलता है। प्रगतिवाद-युग में आर्थिक व्यवस्था साम्यवाद से प्रभावित थी। मजदूरों और किसानों में अत्यंत पूर्व केतना थी। अतः साम्यवाद का सम्पोषण काव्य में भी हुआ। साम्यवाद को आधार बना कर आर्थिक शोषण के विरुद्ध क्रांति की भावना प्रस्तुत की गई। मारतेन्दु-युग से प्रगतिवाद-युग तक हिन्दी-काव्य में आर्थिक क्रांति परक विचारों की अभिव्यक्ति होती रही।

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी काव्य में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और आर्थिक क्रांति की विचारधाराएं विभिन्न स्तरों में प्रस्तुत हुईं। इनका रूप युगीन परिस्थितियों के अनुसार ही कहीं निवेदन, प्रार्थना, कहीं त्याग-बलिदान तो कहीं उग्र विरोध का रहा। स्पष्ट है जो भी रहा हो, पर मारतेन्दु-युग से प्रगतिवाद - युग तक क्रांति की सतत अविच्छिन्न धारा हिन्दी-काव्य में प्रवहमान रही।



**प्रमुख सहायक ग्रन्थ-सूची**  
~~~~~

प्रमुख सहायक ग्रन्थ-सूची

हिन्दी

|                                                           |                                            |
|-----------------------------------------------------------|--------------------------------------------|
| अपरा (२००६)                                               | --सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'             |
| आधुनिक कवि (२०१०)                                         | --सुमित्रानन्दन पंत                        |
| आधुनिक हिन्दी काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत<br>(२००४ वि०) | --केशरी नारायण शुक्ल                       |
| आधुनिक हिन्दी साहित्य (१९४८)                              | -- लक्ष्मीसागर वाष्णीय                     |
| आधुनिक हिन्दी साहित्य को भूमिका (१९५२)                    | -- लक्ष्मीसागर वाष्णीय                     |
| इत्यलम (१९४६)                                             | -- हीरानन्द सच्चिदानन्द वात्स्यायन<br>वैजय |
| कांग्रेस का इतिहास (१९३७)                                 | -- पद्मामि सीतारमैया                       |
| क्रांति और संयुक्त मोर्चा (१९४३)                          | -- स्वामी सहजानन्द सरस्वती                 |
| क्रांति का काला कदम (१९५५)                                | -- दादा कर्माधिकारी                        |
| क्रांति की पुकार (१९५४)                                   | -- ठाकुरदास बंग                            |
| क्रांति की राह पर (१९५६)                                  | -- निर्मला देशपाण्डे                       |
| क्रान्तिवाद (१९५७)                                        | -- विश्वनाथ राय                            |
| किसान (१९७८)                                              | -- मैथिलीशरण गुप्त                         |
| लाबी लहरी (१९२६)                                          | -- बुद्धिनाथ का कैरव                       |
| मण देवता (२०००)                                           | -- रामदयाल पाण्डेय                         |
| ग्राम्या (२००८)                                           | -- सुमित्रानन्दन पंत                       |
| मीतिका (१९६३)                                             | -- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'            |
| कर्ता (१९२१)                                              | -- दीनदत्त                                 |
| चन्द्रशुप्त (२००६)                                        | -- जयशंकर प्रसाद                           |
| सायाबाबु शुभ (१९५२)                                       | -- संतनाथ सिंह                             |
| बानुस नारायण (१९२२)                                       | -- माधव शुक्ल                              |
| धीरज के मान (१९४५)                                        | -- शिवमंगल सिंह 'कुमन'                     |

|                                            |                                          |
|--------------------------------------------|------------------------------------------|
| त्रिशूल तरंग (१९२१)                        | -- त्रिशूल                               |
| घरती (१९४५)                                | -- त्रिलोचन शास्त्री                     |
| नवयुग के गान (१९६६)                        | -- जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द                |
| नवीन (२००२)                                | -- गोपाल सिंह नेपाली                     |
| पद्य पुष्पांजलि (१९७२)                     | -- पाण्डेय लौचनप्रसाद शर्मा              |
| पद्य प्रदीप (१९७८)                         | -- गोकुलचन्द्र शर्मा                     |
| पराग (१९२४)                                | -- हसनारायण पाण्डेय                      |
| परिमल (२००७)                               | -- सुर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'           |
| प्रभात फैरी (१९३६)                         | -- नरेन्द्र शर्मा                        |
| प्रभाती (१९४६)                             | -- सोहनलाल द्विवेदी                      |
| प्रलय सृजन (१९४४)                          | -- शिवमंगल सिंह सुमन                     |
| प्रेमघन सर्वस्व (१९६६)                     | -- करीनारायण चौधरी                       |
| बलिपथ के गीत (१९५०)                        | -- जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द                |
| बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली (२००७) संपादक  | -- कावर्मल शर्मा, झारसीदास चतुर्वेदी     |
| बापु और मानवता (१९४५)                      | -- कमला पति शास्त्री                     |
| बेला (१९६३)                                | -- सुर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'           |
| भारत भारती (२००६)                          | -- मेथिलीशरण गुप्त                       |
| भारत गीत (प्रथम संस्करण)                   | -- श्रीधर पाठक                           |
| भारत गीतांजलि (१९४७)                       | -- माधव शुक्ल                            |
| भारत विनय (१९१६)                           | -- श्यामबिहारी मिश्र, सुकदेवबिहारी मिश्र |
| भारतः वर्तमान और भावी (१९५६)               | -- रजनी पामदत                            |
| भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास (१९५२) | -- गुरुमुख निहाल सिंह                    |
| भारतीय स्वातंत्र्य सप्तर (प्रथम संस्करण)   | -- विनायक दामोदर सावरकर                  |
| भारतेन्दु ग्रन्थावली (२०१०)                | -- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र                 |
| भारतेन्दु नाटकावली                         | -- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र                 |
| भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१९५३)               | -- रामबिलास शर्मा                        |
| भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१९५६)               | -- लक्ष्मीसागर बाबूजीय                   |
| भारतेन्दु युग (१९५१)                       | -- रामबिलास शर्मा                        |
| वरण प्यार (१९६३)                           | -- मालतीलाल शुक्ल                        |

मधुलिका

मनोविनोद (१९१७)

मानव (१९४८)

मुकुल (१९४७)

युगपथ (२००६)

युगवाणी (तृतीय संस्करण)

युग-दीप (२००१)

युगाधार (२००१)

राधाकृष्ण ग्रन्थावली (१९३०)

राष्ट्रीय मंत्र (१९२१)

रक्षा (१९३६)

रीति काव्य की भूमिका (१९५३)

लौकोक्ति शतक

विश्व इतिहास की मलक (प्रथम सं०)

शंकर सर्वस्व (२००८)

शांति के नूतन पितृज (१९५८)

संस्कृति के चार अध्याय (१९५६)

स्कन्द गुप्त (२०११)

स्वतंत्र दिल्ली (१९५७)

स्वतन्त्रता की मजकार (१९२२)

स्वर्णश्रुति (२००४)

सामवेदी (१९४६)

हम विमर्षायी जन्म के (१९६४)

हिन्दू (१९८४)

हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव (२०११)

हिन्दी कविता में अनुान्तर (१९५७)

-- रामेश्वर शुक्ल अंचल

-- श्रीधर पाठक

-- भगवती चरण कर्मा

-- सुमद्रा कुमारी चौहान

-- सुमित्रानन्दन पंत

-- " "

-- उदयशंकर मट्ट

-- सोहनलाल द्विवेदी

-- सं०- श्यामसुन्दरदास

-- विश्व

-- रामधारी सिंह दिनकर

-- नौन्द

-- प्रताप नारायण मिश्र

-- जवाहरलाल नेहरू

-- नाथूराम शंकर शर्मा

-- चेस्टर बोल्स

-- रामधारी सिंह दिनकर

-- जयशंकर प्रसाद

-- डा० सैयद अतहर अब्बास रिजवी

-- सं० जीतमल लुणिया

-- सुमित्रानन्दन पंत

-- रामधारी सिंह दिनकर

-- बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

-- मेथिलीहरण गुप्त

-- डा० रवीन्द्र कलाय कर्मा

-- सुधीन्द्र

|                                               |                       |
|-----------------------------------------------|-----------------------|
| हिन्दी साहित्य का इतिहास (२००२ वि०)           | -- रामचन्द्र शुक्ल    |
| हिन्दुस्तान में घुंजो कारवार की उन्नति (१९३४) | -- डी०एच० बकनन        |
| हिम किरीटिनी (१९२२)                           | -- मासनलाल चतुर्वेदी  |
| हुंकार (१९५२)                                 | -- रामधारी सिंह दिनकर |

### अंग्रेजी

|                                                    |                       |
|----------------------------------------------------|-----------------------|
| इंडियाज साइलेंट रिवोल्यूशन (१९२०)                  | -- एफ०बी० फिशर        |
| इंडियन अनरेस्ट (१९१०)                              | -- वेलेन्टाइन शिरोल   |
| इंडियन नेशनल मूवमेंट एण्ड घाट (१९५१)               | -- बी०पी०एस० रघुवंशी  |
| इंडिया-ए नेशन                                      | -- सी बीसेंट          |
| इंडिया इन टूजिसन (१९२२)                            | -- एम०एस० राय         |
| इंडियन नेशनलिज्म (१९१३)                            | -- एडविन बेकिन        |
| इंडोडक्सन टू द हिस्ट्री आफ गवर्नमेंट इन इंडिया     | -- सी०एल० वानन्ध      |
| एकानामिक हिस्ट्री आफ इंडिया इन द विक्टोरियन        | -- आर०दत्ता           |
| ए डिक्शनर आफ रिवोल्यूशन (१९३४)                     | -- जेन ब्रिंटन        |
| एन साइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सेज (संस्करण अलिखित) |                       |
| डिस्कवरी आफ इंडिया (१९४६)                          | -- जवाहरलाल नेहरू     |
| द स्पेकिंग आफ इंडिया                               | -- जे०आर० मैकडोनाल्ड  |
| द इण्डियन स्टूडेंट                                 | -- सुभाषचन्द्र बोस    |
| पोलिटिकल फिलासफी आफ बरविन्दो (१९६०)                | -- बी०पी० वर्मा       |
| यंग इंडिया                                         | -- लालबहादुर शास्त्री |
| राज्य एण्ड ग्रीव आफ इंडियन मिलिटेंट नेशनलिज्म      | -- एम०ए० बन           |
| (१९४०)                                             |                       |
| रिफ्लेक्शन ऑन द रिवोल्यूशन आफ आयर टाउन             | -- हेराल्ड वे० ठासकी  |
| (१९४६)                                             |                       |
| रिवोल्यूशन इन इंडिया (१९४६)                        | -- फ्रांसिस ग्रुवर    |

(उ)

- रीसेण्ट ट्रेण्डस इन इंडियन नेशनलिज्म (१९६०) -- ए०आर० वेसाई  
रीसेण्ट इंडिया (१९३३) . -- स्व०सी०ई०जकारिया  
लीडर शिप एण्ड पोलिटिकल इंस्टीट्यूशन्स आफ इंडिया-- पार्क और टिंकर  
(१९६०)  
माण्टेग्यू वेम्सफोर्ड रिपोर्ट (सं०१९१८)

पत्र-पत्रिकाएं

वाजकल  
नांद  
नासण  
मतवाला  
माथुरी  
योगी  
विशाल भारत  
सरस्वती  
साप्ताहिक हिन्दुस्तान  
सुभा  
हंस  
हिन्दी प्रदीप